

ॐ

परमात्माने नमः

**सम्यग्दर्शनके सर्वोत्कृष्ट
निवासभूत
छः पद का अमृत पत्र**

(श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक ४९३ पर पूज्य भाईश्री
शशीभाई के प्रवचन)



प्रकाशक

वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट

भावनगर

प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान :

□ वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट

५८०, जूनी माणेकवाडी,

भावनगर-३६४००१

फोन : (०२७८) २४२३२०७ / २५१५००५

□ गुरु गौरव

श्री कुन्दकुन्दकहान जैन साहित्य केन्द्र,

पूज्य सोगानीजी मार्ग, सोनगढ़

□ श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान जैन ट्रस्ट

विमलांचल, हरिनगर, अलीगढ़

फोन : (०५७१) ४१००१०/११/१२

□ श्री खीमजीभाई गंगर (मुंबई) : (०२२) २६१६१५९१

श्री डोलरभाई हेमाणी (कोलकाता) : (०३३) २४७५२६९७

अमी अग्रवाल (अहमदाबाद) : (०७९) R-२५४५०४९२, ९३७७१४८९६३

चतुर्थआवृत्ति प्रत : ३१-१२-०७, (श्री कुंदकुंदाचार्यदेव आचार्यपदवी दिन)

प्रत : ५००

पृष्ठ संख्या : ८ + २१२ = २२०

लागत मूल्य : ३०/-

बिक्री मूल्य : २०/-

टाईप सेटिंग :

पूजा इम्प्रेसन्स

प्लोट नं. १९२४-बी,

६, शान्तिनाथ बंगलोझ

शशीप्रभु मार्ग, रुपाणी सर्कल के पास

भावनगर-३६४००१

फोन : (०२७८) २५६१७४९

मुद्रक :

भगवती ऑफसेट

१५/सी, बंसीधर मिल कंपाउन्ड

बारडोलपूरा,

अहमदाबाद

फोन : ९८२५३२६२०२

प्रकाशकीय

इस लघुकाय ग्रन्थ की चतुर्थ आवृत्ति का प्रकाशन करते हुए हमें हर्ष हो रहा है। ग्रन्थ का विषय कृपालुदेव ने सम्यग्दर्शन के निवासभूत ऐसे छः पद कहे हैं, जो कि समस्त मुमुक्षु समाज के लिये परम प्रयोजनभूत हैं। श्रीमद् राजचंद्र आध्यात्मिक साधना केन्द्र, कोबा की शिविर में सन १९९५ के जुलाई में इस अमृत पत्र के उपर स्वाध्याय चला था। जिसमें अडेक मुमुक्षुओं ने अति जिज्ञासा से भाग लिया था। पश्चात् कथित स्वाध्याय पुस्तकारुढ़ हो तो विशाल मुमुक्षु समाज को लाभ मिल सके ऐसी भावना से श्री खीमजीभाई गंगर ने ध्वनिमुद्रित प्रवचनों को अक्षरसः लिखकर दिये थे। जो कि यहाँ पर व्यवस्थित करके प्रकाशित करने में आये हैं। प्रवचन गुजराती में चले थे, जिस का हिन्दी अनुवाद किया गया है।

परम पूज्य भाईश्री द्वारा स्वयं की मौलिक एवं अनुभवपूर्ण शैली से हुए इन प्रवचनों में वाक्य संयोजनार्थ कौंस भरने में आये हैं। एवं जहाँ जहाँ अंग्रेजी शब्द प्रयोग हुआ है वहाँ विषय के अनुरूप हिन्दी में अर्थ देने में आया है। प्रवचन शैली की मौलिकता बनाये रखने और यथार्थरूप से रसास्वादन कर सके इसलिये तदनुरूप प्रवचनों का संकलन करने में आया है। इसके बावजूद भी साहित्यिक दृष्टिकोण से कोई भाषाकीय क्षतियाँ रह गई हो तो पाठकवर्ग को भमा करने के लिये विनती है।

पुस्तक के टाइप सेटिंग के लिये पूजा इम्प्रेसन्स, भावनगर का एवं मुद्रणकार्य के लिये भगवती ऑफसेट, अहमदाबाद का आभार व्यक्त करता है। इसके अलावा जिन जिन मुमुक्षुओं ने एटिटींग

और पुफ रीडिंग में सहयोग दिया है उनका भी आभार मानने में आता है।

अंततः, इस पुस्तक के विषय के अनुरूप सर्व भव्यात्मा सम्यग्दर्शन को प्राप्त हो ऐसी भावना से विराम लेते हैं।

भावनगर

दि-३१-१२-२००७

(श्री कुंदकुंदाचार्य आचार्य
पदवी दिन)

ट्रस्टीगण

वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट

भावनगर



‘सत्संगकी उपासना नित्य कर्तव्य है’ - ऐसी जो सत्पुरुषकी सीख, जीवको अत्यंत हितकारी एवं गिरती वृत्तिको स्थिर रखनेवाली है । वर्तमान दुषमकालमें असत्प्रसंगका घिराव विशेष है । जीव सहज मात्रमें कुसंगकी असरमें आ जाता है कि जिसके कारण दीर्घकाल पर्यंत सेवन किया हुआ सत्संग निष्फलताको प्राप्त होनेमें देर नहीं लगती। आराधनाके लिये तो अपूर्व पुरुषार्थ चाहिये । उसकी निरंतर लगन ही आवश्यक है। (२०५)



मुमुक्षुजीवके लिये ‘सत्संग’ वह अमृत है; जिससे मुमुक्षुकी आत्मरुचि अथवा गुणरुचिको पोषण मिलता है। वर्तमान कालमें असत्संग प्रसंगका घिराव बहुत है, ऐसी परिस्थितिमें अचिंत्य जिसका महत्व है, ऐसे सत्संगका मूल्य किसी भी तरह नहीं हो सके - ऐसा है। प्रतिपक्षमें कुसंग मुमुक्षुके लिये ज़हर है। अगर इससे बचनेमें नहीं आये तो सद्विचारबलका नाश होकर अनेक दोषोंकी परंपरा खड़ी हो जाये। विपरीत रुचिको प्रसिद्ध करनेवाला, कुसंग करनेका भाव कृत-कारित अनुमोदनासे नहीं हो जाये उसकी अत्यंत सावधानी रखनी चाहिये - इस दृष्टिसे किसीका भी संग विचार करके करना चाहिये। इस विषयमें अगंभीरतासे, अविचारीपनेसे प्रवृत्ति बिलकुल होनी नहीं चाहिये। (३०४)

- पूज्य भाईश्री (अनुभव संजीवनी)



‘मैं ज्ञानमात्र हूँ’

□

सुखधाम अनंत सुसंत चही,
दिनरात रहे तद्ध्यान महीं;
प्रशांति अनंत सुधामय जे,
प्रणमं पद ते वरते जयते.

□

पावन मधुर अद्भुत अहो ! गुरुवदनथी अमृत झर्या,
श्रवणो मळ्यां सद्भाग्यथी नित्ये अहो ! चिद्रस भर्या.
गुरुदेव तारणहारथी आत्मार्थी भवसागर तार्या,
गुणमूर्तिना गुणगणतणां स्मरणो हृदयमां रमी रह्यां.

□

हुं एक, शुद्ध, सदा अरूपी, ज्ञानदर्शनमय खरे;
कई अन्य ते मारुं जरी, परमाणुमात्र नथी अरे.

□

सहजात्मस्वरूप सर्वज्ञदेव परमगुरु

□

पत्रांक-४९३

अनन्य शरणके दाता ऐसे श्री सद्गुरुदेवको
अत्यंत भक्तिसे नमस्कार

जो शुद्ध आत्मस्वरूपको प्राप्त हुए हैं, ऐसे ज्ञानीपुरुषोंने नीचे कहे हुए छः पदोंको सम्यग्दर्शनके निवासके सर्वोत्कृष्ट स्थानक कहे हैं -

प्रथम पद : 'आत्मा है ।' जैसे घटपटादि पदार्थ है, वैसे आत्मा भी है । अमुक गुण होनेके कारण जैसे घटपटादिके होनेका प्रमाण है, वैसे स्वपरप्रकाशक चैतन्यसत्ताका प्रत्यक्ष गुण जिसमें है, ऐसा आत्माके होनेका प्रमाण है ।

दूसरा पद : 'आत्मा नित्य है ।' घटपटादि पदार्थ अमुक कालवर्ती है । आत्मा त्रिकालवर्ती है । घटपटादि संयोगजन्य पदार्थ है । आत्मा स्वाभाविक पदार्थ है, क्योंकि उसकी उत्पत्तिके लिये कोई भी संयोग अनुभव योग्य नहीं होते । किसी भी संयोगी द्रव्यसे चेतनसत्ता प्रगट होने योग्य नहीं है, इसलिये अनुत्पन्न है । असंयोगी होनेसे अविनाशी है, क्योंकि जिसकी उत्पत्ति किसी संयोगसे नहीं होती, उसका किसीसे लय भी नहीं होता ।

तीसरा पद : 'आत्मा कर्ता है ।' सर्व पदार्थ अर्थ क्रिया संपन्न है । किसी न किसी परिणाम-क्रियासहित ही सर्व पदार्थ देखनेमें आते हैं । आत्मा भी क्रियासंपन्न है । क्रियासंपन्न है, इसलिये कर्ता है । श्री जिनने उस कर्तृत्वका त्रिविध विवेचन किया है - परमार्थसे स्वभावपरिणति द्वारा आत्मा निजस्वरूपका

कर्ता है । अनुपचरित (अनुभवमें आने योग्य, विशेष सम्बन्धसहित) व्यवहारसे यह आत्मा द्रव्यकर्मका कर्ता है । उपचारसे घर, नगर आदिका कर्ता है ।

चौथा पद : '**आत्मा भोक्ता है ।**' जो जो कुछ क्रियाएं है वे सब सफल है, निरर्थक नहीं । जो कुछ भी किया जाता है उसका फल भोगनेमें आता है, ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव है । जैसे विष खानेसे विषका फल, मिसरी खानेसे मिसरीका फल, अग्निस्पर्शसे अग्निस्पर्शका फल, हिमका स्पर्श करनेसे हिमस्पर्शका फल हुए बिना नहीं रहता, वैसे कषायादि अथवा अकषायादि जिस किसी भी परिणामसे आत्मा प्रवृत्ति करता है उसका भल भी होने योग्य ही है, और वह होता है । उस क्रियाका कर्ता होनेसे आत्मा भोक्ता है ।

पाँचवाँ पद : '**मोक्ष पद है ।**' जिस अनुपचरित व्यवहारसे जीवके कर्मके कर्तृत्वका निरूपण किया, कर्तृत्व होनेसे भोक्तृत्वका निरूपण किया, उस कर्मकी निवृत्ति भी है; क्योंकि प्रत्यक्ष कषायादिकी तीव्रता हो, परन्तु इसके अनभ्याससे, उसके अपरिचयसे, उसका उपशम करनेसे उसकी मंदता दिखायी देती है, वह क्षीण होने योग्य दीखता है, क्षीण हो सकता है । वह बंधभाव क्षीण हो सकने योग्य होनेसे, उससे रहित जो शुद्ध आत्मस्वभाव है, वही मोक्षपद है ।

छठा पद : '**उस मोक्षका उपाय है ।**' यदि कभी ऐसा ही हो कि कर्मबंध मात्र हुआ करे तो उसकी निवृत्ति किसी कालमें सम्भव नहीं है, परन्तु कर्मबंधसे विपरीत स्वभाववाले ज्ञान, दर्शन, समाधि, वैराग्य, भक्ति आदि साधन प्रत्यक्ष है, जिन साधनोंके

बलसे कर्मबंध शिथिल होता है, उपशान्त होता है, क्षीण होता है । इसलिये वे ज्ञान, दर्शन, संयम आदि मोक्षपदके उपाय हैं ।

श्री ज्ञानीपुरुषों द्वारा सम्यग्दर्शनके मुख्य निवासभूत कहे हुए इन छः पदोंको संक्षेपमें बताया है । समीपमुक्तिगामी जीवको सहज विचारमें ये सप्रमाण होने योग्य है, परम निश्चयरूप प्रतीत होने योग्य है, उसका सर्व विभागसे विस्तार होकर उसके आत्मामें विवेक होने योग्य है । ये छः पद अत्यंत सन्देह रहित है, ऐसा परमपुरुषने निरूपण किया है । इन छः पदोंका विवेक जिवको स्वस्वरूप समझनेके लिये कहा है । अनादि स्वप्नदशाके कारण उत्पन्न हुए जीवके अहंभाव, ममत्व भावके निवृत्त होनेके लिये ज्ञानीपुरुषोंने इन छः पदोंकी देशना प्रकाशित की है । उस स्वप्नदशासे रहित मात्र अपना स्वरूप है, ऐसा यदि जीव परिणाम करे, तो वह सहजमात्रमें जागृत होकर सम्यग्दर्शनको प्राप्त होता है; सम्यग्दर्शनको प्राप्त होकर स्वस्वभावरूप मोक्षको प्राप्त होता है । किसी विनाशी, अशुद्ध और अन्य ऐसे भावमें उसे हर्ष, शोक, संयोग उत्पन्न नहीं होता । इस विचारसे स्वस्वरूपमें ही शुद्धता, सम्पूर्णता, अविनाशता अत्यंत आनंदता अंतर रहित उसके अनुभवमें आते हैं । सर्व विभावपर्यायमें मात्र स्वयंकी अध्याससे एकता हुई है, उससे केवल अपनी भिन्नता ही है, ऐसा स्पष्ट - प्रत्यक्ष - अत्यंत प्रत्यक्ष - अपरोक्ष उसे अनुभव होता है । विनाशी अथवा अन्य पदार्थके संयोगमें उसे इष्ट-अनिष्टता प्राप्त नहीं होती । जन्म, जरा, मरण, रोगादि बाधारहित संपूर्ण माहात्म्यका स्थान, ऐसा निजस्वरूप जानकर, वेदन कर

वह कृतार्थ हुआ है, वे सब पुरुष स्वस्वरूपको प्राप्त हुए हैं; आधि, व्याधि, उपाधि और सर्व संगसे रहित हुए हैं, होते हैं; और भविष्यकालमें भी वैसे ही होंगे ।

जिन सत्पुरुषोंने जन्म, जरा और मरणका नाश करनेवाला, स्वस्वरूपमें सहज अवस्थान होनेका उपदेश दिया है, उन सत्पुरुषोंको अत्यंत भक्तिसे नमस्कार है । उनकी निष्कलण करुणाकी नित्य प्रति निरंतर स्तुति करनेसे भी आत्मस्वभाव प्रगट होता है । ऐसे सर्व सत्पुरुषोंके चरणारविंद सदा ही हृदयमें स्थापित रहे !

जिसके वचन अंगीकार करनेपर छः पदोंसे सिद्ध ऐसा आत्मस्वरूप सहजमें प्रगट होता है, जिस आत्मस्वरूपके प्रगाट होनेसे सर्व काल जीव सम्पूर्ण आनंदको प्राप्त होकर निर्भय हो जाता है, उन वचनोंके कहनेवाले सत्पुरुषके गुणोंकी व्याख्या करनेकी शक्ति नहीं है; क्योंकि जिसका प्रत्युपकार नहीं हो सकता, ऐसा परमात्मभाव मानों कुछ भी इच्छा किये बिना मात्र करुणाशीलतासे दिया; ऐसा होनेपर भी जिसने दूसरे जीवको यह मेरा शिष्य है अथवा मेरी भक्ति करनेवाला है, इसलिये मेरा है, इस प्रकार कभी नहीं देखा, ऐसे सत्पुरुषको अत्यंत भक्तिसे वारंवार नमस्कार हो !

सत्पुरुषोंने सदगुरुकी जिस भक्तिका निरूपण किया है, वह भक्ति मात्र शिष्यके कल्याणके लिये कही है । जिस भक्तिको प्राप्त होनेसे सदगुरुके आत्माकी चेष्टामें वृत्ति रहे, अपूर्व गुण दृष्टिगोचर होकर अन्य स्वच्छन्द मिटे, और सहजमें आत्मबोध हो, ऐसा जानकर जिस भक्तिका निरूपण किया है, उस भक्तिको

और उन सत्पुरुषोंके े पुनः पुनः त्रिकाल नमस्कार हो !

यद्यपि वर्तमानकालमें प्रगटरूपसे केवलज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हुई, परन्तु जिसके वचनके विचारयोगसे शक्तिरूपसे केवलज्ञान है, यह स्पष्ट जाना है, श्रद्धारूपसे केवलज्ञान हुआ है, विचारदशासे केवलज्ञान हुआ है, इच्छादशासे केवलज्ञान हुआ है, मुख्य नयके हेतुसे केवलज्ञान रहता है, जिसके योगसे जीव सर्व अव्याबाध सुखके प्रगट करनेवाले उस केवलज्ञानको सहजमात्रमें प्राप्त करने योग्य हुआ, उस सत्पुरुषके उपकारको सर्वोत्कृष्ट भक्तिसे नमस्कार हो ! नमस्कार हो !

अहो !

सर्वोत्कृष्ट शांत रसमय सन्मार्ग-

अहो !

उस सर्वोत्कृष्ट शांत रसप्रधान मार्ग के
मूल सर्वज्ञदेव; -

अहो !

उस सर्वोत्कृष्ट शांतरस को जिन्हों ने
सुप्रतीत कराया ऐसे परमकृपालु सद्गुरुदेव-
इस विश्व में सर्वकाल आप जयवंत रहे,
जयवंत रहे।

- श्रीमद् राजचंद्र

ॐ

परमात्मने नमः

❖ सम्यग्दर्शनके सर्वोत्कृष्ट
निवासभूत
छः पदका अमृत पत्र ❖

प्रवचन - १

दि-२८-७-१९९६ सुबह

श्रीमद् राजचंद्र वचनामृत पत्रांक - ४९३ । पत्रका शीर्षक है "अनन्य शरणके देनेवाले ऐसे श्री सद्गुरुदेवको अत्यंत भक्तिसे नमस्कार ।" शब्दार्थ सरल है । भावमें सद्गुरुदेवको अत्यंत भक्तिसे, आश्रयभूत-अनन्य आश्रय देनेवाले गिनकर, परम उपकारी मानकर उनको अत्यंत भावसे-भक्तिभावसे नमस्कार करने योग्य है।

इस पत्रमें, पत्रका विषय क्या है ? उसे कृपालुदेवने प्रथम वाक्यमें स्पष्ट किया है । "जो शुद्ध आत्मस्वरूपको प्राप्त हुए हैं, ऐसे ज्ञानीपुरुषोंने नीचे कहे हुए छः पदोंको सम्यग्दर्शनके निवासके सर्वोत्कृष्ट स्थानक कहे हैं "

यह पत्र सभी मुमुक्षुओंको उपकारी है। मुमुक्षुको मुमुक्षुताकी भूमिकासे आगे बढ़कर सम्यग्दर्शन प्राप्त करके मोक्षमार्गमें प्रवेश करनेका है। इतनी प्रक्रियासे गुजरनेके लिये यह छः पदका यथार्थ ज्ञान/यथार्थ समझ उपकारी है। किसके द्वारा कहे गये हैं यह छः पद ? शुद्धात्मस्वरूपको प्राप्त हुए हैं - ऐसे (ज्ञानीपुरुषोंने)। शुद्धात्म स्वरूपको प्राप्त करना, प्राप्त करना-माने अनुभव करना। (ज्ञानीपुरुषों) अनुभवको / आत्मानुभवको आत्मस्वरूपकी प्राप्ति कहते हैं।

“सर्व जीव छे सिद्ध सम” यानी सभी जीव सहजात्मस्वरूप - सिद्धस्वरूप है, परन्तु बेभानपना के कारण, स्वयंके स्वरूपकी भ्रांतिके कारण, भ्रांतिवश - प्राप्त होने पर भी अप्राप्त समान है और जीव संसारमें दीन-हीन, दुःखी होकर परिभ्रमण कर रहा है, यह बात स्पष्ट है।

जिन्होंने शुद्धात्म स्वरूपका अनुभव किया, अनुभव करके जिन्होंने प्रतिपादन किये (हैं) वह ऐसे ही प्रतिपादन नहीं किये हैं। किसी ग्रंथको पढ़करके, किसी व्याख्यानको सुनकरके, कोई धारणा करके प्रतिपादन किया हो - ऐसा नहीं है, बल्कि स्वयं अपना अनुभव करके; यह छः पदकी जो संकलना है, जो देशना है - वह सभी ज्ञानीयोंने प्रकाशित की है।

आप कहेंगे कि ऐसी व्यवस्थित बात शायद दूसरे ज्ञानीयोंके द्वारा स्पष्ट देखनेको नहीं मिलती, परन्तु कृपालुदेव (श्रीमद् राजचंद्रजी) जो लिखते हैं - वह बात यथार्थ है। ज्ञानीपुरुषोंने इस छः पदको कहा है; सभी ज्ञानीयोंने अपनी - अपनी शैली में कहा है। शैली सभीकी भिन्न भिन्न होती है। शैली माने, कहनेकी पद्धति सभीकी अलग-अलग होती है, परन्तु तत्त्व तो एक ही होता है। सभी ज्ञानीजन

एक ही तत्त्वका प्रतिपादन करते हैं, शुद्धत्मस्वरूपका प्रतिपादन करते हैं- (और) वह भी अनुभव करके करते हैं और अनुभव करनेकी कार्यपद्धतिभी कहते हैं, वह भी अनुभव करके ही कहते हैं ।

आत्मा एक वस्तु है, एक पदार्थ है (और) जिसके अपने गुणधर्म हैं । सभी आत्माएं समान जातिके पदार्थ होनेसे सभी ज्ञानीयोंको उसका एक जैसा ही अनुभव होता है । भिन्न-भिन्न प्रकारका अनुभव नहीं होता । और उसका (आत्माका) अनुभव करनेकी कार्यपद्धति - वैज्ञानिक होनेके कारण एक ही प्रकारसे सबको अनुभव होता है, भिन्न-भिन्न प्रकारसे अनुभव नहीं होता ।

“एक होय त्रण काळमां परमारथनो पंथ” (आत्मसिद्धिशास्त्र) फिरभी कहनेकी शैली, कहनेकी पद्धति सभी आचार्योंकी, सभी ज्ञानीयोंकी भिन्न-भिन्न देखनेमें आती है । भले ही कथनशैली भिन्न-भिन्न हो फिरभी तत्त्व जो है, उसके साथ हम लोगोंका सम्बन्ध है । शैली वह सुगमताका साधन है, और सभी ज्ञानियोंकी शैली सुन्दर ही है । अनुभवकी सुन्दरता प्रत्येक ज्ञानीकी शैलीमें झलकती है । अतः किसी भी ज्ञानी की शैली की तुलना करना हमारा विषय नहीं है । वह अनअधिकृत चेष्टा है, हम हर एक ज्ञानी की शैलीकी सुन्दरताका और शैलीकी मौलिकताका लाभ लें, आनन्द लें वही हमारा कर्तव्य है ।

अनेक ग्रंथोंके स्वाध्याय करते हुए इस बातका अवश्य अनुभव होता है कि कोई भी ज्ञानी या कोई भी आचार्यदेवकी शैलीसे (हम) प्रभावित होते हैं (और) हमारे आत्माको हमारी योग्यता अनुसार अवश्य लाभ मिलता है, हमारे पर उनका उपकार होता है - और वही अनुभव करने योग्य है । किसीकी भी शैलीकी तुलना करने लगना अपना कार्य नहीं है और वह अपनी शक्तिसे बाहरकी बात है, ऐसा

भी समझना योग्य है । हम उनकी शैली की सुन्दरताका और मौलिकताका अनुभव करके लाभ लें - वही जरूरी है ।

कृपालुदेवकी शैलीसे हम सब परिचित हैं; इतना ही नहीं परन्तु हम प्रभावित (भी) हुए हैं और अत्यंत भक्तिपूर्वक उनके वचनामृतोंका हम स्वाध्याय (भी) करते हैं । उनकी वचनशैलीके बारेमें कुछ कहना, वह छोटे मुँह बड़ी बात करने जैसा है । (उनकी शैली) असाधारण है, अलौकिक है और आत्माका अनुभव करनेके लिये (उसमें निमित्तत्व है) ।

आत्मानुभव वह गहन विषय है, वचनातीत है, मनातीत है, विकल्पातीत है । “जितना ज्ञानमें आता है उतना मनमें नहीं आता” - कृपालुदेव लिखते हैं “...और मनमें आता है उतना वचनमें नहीं आता” और “वचनमें आता है उतना लिखनेमें नहीं आता” फिरभी कृपालुदेव जैसे समर्थ पुरुषोंने अपने ग्रंथोंमें, अपनी कथन रचनामें चतर्कित शक्य हो उतना इस विषयको शब्दगोचर किया है । (अमुक अंशमें) कथंचित् शब्दगोचर किया है । वचनातीत कहते हुए भी कथंचित वचनगोचर किया है ।

पात्र जीव इतने अंशसे भी आगे बढ़ सके और अनुभव तक पहुँच सके ऐसा निमित्तत्व (उनके) वचनयोगमें रहा है । अनुभव भले ही पूरा-पूरा कहनेमें-लिखनेमें व्यक्त नहीं हो सकता हो, फिरभी उनके सामर्थ्य की जितनी अभिव्यक्ति हुई है उतनी पात्र जीवोंको निमित्त (रूप) होती है और अपनी पात्रतासे उस विषयकी गहराईमें जाकर उनके (मूल) अनुभव तकका लाभ ले सकते हैं, (लाभ) हो सकता है और ऐसा निमित्तत्व कृपालुदेवकी वाणीमें रहा है । अतः यह वाणी भी हमारे लिये पूज्य है । आत्माको उपकारी होती है इसलिये यह वाणी भी पूज्य है ।

(जब कि) पूज्यताका गहन कारण यह है कि आत्मा जो है - वह सर्वज्ञ स्वभावी है, और सर्वज्ञ स्वभावको स्पर्शती हुई निकलती हुई - यह वाणी है । उनकी वाणी ऊपर-ऊपर से नहीं आयी है । उसका Background (पार्श्वभूमि) सर्वज्ञ स्वभाव है । इसलिये पं. राजमल्लजीने समयसार कलशटिकाके दूसरे कलशमें उस वाणीको सर्वज्ञ अनुसारिणी कहा है । प्रथम कलशकी टीका करते हुए उन्होंने ऐसा कहा है कि एक आत्मा ही पूज्य है, बाकीके कोई द्रव्य पूजनीय नहीं है क्योंकि बाकीके पांचो द्रव्य तो अचेतन हैं (और) अचेतन पूज्य नहीं है । पुनः दूसरे कलशमें कहते हैं कि वाणी पूज्य है । तब स्वयं ही प्रश्न उठाते हैं कि आप तो कहते हो की अचेतन पूज्य नहीं होता, और यहाँ कहते हो की यह सरस्वती है, वाणी है वह सरस्वती है । जिनवाणी है उसे आप पूज्य कहते हो तो थोड़ा स्पष्टिकरण हो सके तो अच्छा होगा । (तब कहते हैं) कि (यह वाणी) सर्वज्ञ स्वभाव अनुसारिणी है । स्वयंके निज सर्वज्ञ स्वभावको अनुसरते हुए उत्पन्न हुई यह वाणी है । अन्य जीवोंको भी आत्मगुण एवं आत्मस्वभाव प्रगट होनेमें उपकारी होती है अतः उसकी पूज्यताका तीनों काल सनातन जिनमार्गमें स्वीकार करनेमें आया है । और वह यथार्थ है ऐसी कृपालुदेवकी वाणीका आजसे इस शिविरमें हम स्वाध्याय शुरू करते हैं । यह छः पद जो है वह सम्यग्दर्शनके रहनेके सर्वोत्कृष्ट स्थानक हैं । सम्यग्दर्शन कहाँ रहता है ?

यह छः पदका जिसे (जिस जीवको) यथार्थ रूपसे स्वीकार हो वहाँ (उस आत्मामें) सम्यग्दर्शन आकर निवास करता है । हर एक के निवास करनेका स्थान अपने-अपने योग्य होता है, यह समझानेकी जरूरत नहीं है । सम्यग्दर्शनको निवासके लिये यह छः पदको यथार्थ रूपसे समझकरके परिणमनमें लाना जरूरी है ।

समझना वह विचार कक्षाका विषय है और परिणमन करना वह उससे आगे बढ़कर आचरणका विषय है । अमल करनेका विषय है । अगर मात्र समझनेमें संतुष्ट हो जायें तो उसका अमल करना, उसका आचरण करना वह बात छूट जाती है - अतः उसकी सार्थकता नहीं रहती, समझ निरर्थक हो जाती है ।

पहले तो 'समझना' वह भी हम लोगोंको थोड़ा कठिन पड़ता है; इसलिये (कठिन पड़ता है) कि गैरसमझ के (कारण) बहुत उलटे अभिप्राय अंदर भर रखे हैं, स्वीकार कर रखे हैं, कचरा बहुत भरा है । उसे साफ करनेमें थोड़ा समय जाता है, बादमें समझना होता है । वह समझना भी दो प्रकारसे होता है । यद्यपि (जो) समझमें आता है वह बराबर समझमें आता है फिरभी उसमें दो प्रकार होते हैं । एक आत्मलक्षी समझ है और दूसरी आत्मलक्ष बिनाकी समझ होती है, उसे परलक्षी समझ या परलक्षी ज्ञान कहनेमें आता है ।

“सब शास्त्रनके नय धारि हीये, मत मंडन खंडन भेद लिये;
(वह साधन बार अनन्त कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो)“

ऐसा जो कृपालुदेवने (यमनियम.....पद) में लिखा है, वह परलक्षी शास्त्रज्ञानसे हुई प्रवृत्ति है । यह (जीव) मतके मंडन खंडनमें जायेगा; कोई भी अभिप्राय बना लेगा; अपनी समझ-कल्पनाके मुताबिक उसके उपर जोर देगा और इसके अलावा दूसरे अभिप्रायके विषयमें निषेध करके मंडन खंडनमें चला जायेगा । उस प्रकारके शास्त्रज्ञानमें शास्त्रीय अभिनिवेश हो जाता है । अतः ज्ञानमार्गमें शास्त्रका अध्ययन करनेवाले मुमुक्षु आत्माओंको एक अनुशासनके रूपमें इस बातका स्वीकार करने योग्य है कि मुझे कभी भी परलक्षी शास्त्रज्ञान या शास्त्र अध्ययन नहीं करना है ।

जैसे अपने स्वाध्याय हॉलमें एक अनुशासन है कि यहाँ शान्ति बनाकर रखनी चाहिये, शोर-गुल नहीं कर सकते, यह एक सामान्य अनुशासन है । हमें अगर इतनी भी समझ नहीं हो तो यहाँ बैठनेकी पात्रता हमारेमें नहीं है । हम स्वाध्याय हॉलमें बैठनेके लायक नहीं है । इसी तरहसे, ऐसे ही प्रकार एक अनुशासन है यह तो एक दृष्टांत है... सिद्धांत तो दूसरा लेना है, (कि) अगर शास्त्र हाथमें लेना हो या श्रवण करने बैठना हो (तो आत्मलक्षपूर्वक बैठना है) । यह (श्रीमद् राजचंद्र वचनामृत) शास्त्र है । कृपालुदेवके वचनामृत वह आगम है । उनके एक एक शब्दमें अनन्त आगम रहे हैं । तो ऐसे ही नियमबद्ध होकर कि मुझे यह शास्त्रका स्वाध्याय और अध्ययन आत्माके लक्षपूर्वक करना है, श्रवण करना है, चितन करना है, चर्चा करनी है, प्रश्न करना है - जो कुछ भी करना हो (वह सब) आत्मलक्ष्यसे करना है । अनुशासनसे गिरा तो उसे लाभ होनेके बजाय नुकसान हुए बिना नहीं रहेगा ।

अतः यह छः पदका स्वाध्याय करते वख्त हम एक मर्यादामें आये (कि) मेरे आत्माको लक्षमें रखते हुए मुझे इन वचनामृतोंका स्वाध्याय करना है । अन्य प्रकारसे स्वाध्याय बिलकुल नहीं करना चाहिये, ऐसे नियमबद्ध होकर आत्मलक्षी स्वाध्याय करना जरूरी है ।

प्रथम पद - "आत्मा है"

कृपालुदेवने दो शब्द लिये हैं । 'आत्मा है' यानिकि आत्माका अस्तित्व है, मौजूदगी है ।

सम्यग्दर्शनका विषय क्या है ? क्योंकि इस पदका अनुसंधान सम्यग्दर्शनके साथ है, सम्यग्दर्शनका कार्य क्या (है) ? उसका विषय क्या है ? (कि) स्वरूप अस्तित्वको श्रद्धामें स्वीकार करना वह (है) । आत्माके अनन्त गुणोंमें दर्शन-ज्ञान और चारित्र - श्रद्धा, ज्ञान और

चारित्र्य ये तीन मुख्य गुणोंकी प्रवृत्ति है । दूसरे गुण निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धसे उसका अनुसरण करते हैं । उसमें भी कहीं वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे श्रद्धाकी प्रधानता है तो कोई एक वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे ज्ञानकी प्रधानता है, तो कोई एक वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे आचरणकी प्रधानता है । (और) उसमें भी ज्ञानकी प्रधानताका स्वीकार इसलिये करनेमें आया है (कि) ज्ञानपूर्वक श्रद्धान होता है और ज्ञान-श्रद्धान पूर्वक आचरणका प्रारम्भ होता है ।

इस विषयको श्री अमृतचंद्राचार्य महाराजने समयसारकी १७-१८ गाथामें लिया है । श्री कुन्दकुन्द स्वामीने मूल सुत्रमें भी यह बात की है । प्रथम तो जीवराजाको जानना, फिर उसका श्रद्धान करना और बादमें उसका आचरण करना ।

जबकि सम्यग्दर्शन उत्पन्न होते ही - उसी समय आत्माका स्वसंवेदनरूप आत्मज्ञानका परिणमन होता है, (और उसी) समय स्वरूपकी उपयोगकी स्थिरतारूप, लीनतारूप सम्यक्चारित्र्य की भी उत्पत्ति होती है । शास्त्रभाषामें उसे स्वरूपाचरण चारित्र्य कहनेमें आया है । उसी समय सम्यक्पुरुषार्थकी भी उत्पत्ति है (और) उसी समय सम्यक् अपूर्व आनन्दकी - आत्मानन्दकी (भी) उत्पत्ति है तथा आत्माकी सुख-शान्ति और तृप्ति भी होती है, नरकमें हो तो भी । अन्य, संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवसे नीचेकी दशावाले जीवोंको यह उपलब्धि नहीं होती । सातवीं नारकमें भी अपूर्व आनन्द आता है; जो कि समझमें आये ऐसा गुण है, क्योंकि इसके परिणमनमें वेदन है । अनन्त गुणोंमें जितने गुण विभाव रूपसे परिणमते थे, वे सभी आंशिकरूपसे स्वभावरूपसे परिणमित हो (जाते हैं) । (अतः कृपालुदेवने कहा कि) 'सर्व गुणांश ते सम्यक्त्व' ऐसे सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके समकालमें सभी गुणोंकी (सम्यक्) उत्पत्ति होती है ।

यहाँ अपना विषय चलता है - सम्यग्दर्शनका कार्य किस प्रकारसे है और उसका विषय क्या है ? सम्यग्दर्शनका विषय है "है पना" । आत्माका "है पना", आत्माकी मौजुदगीपन ।, (आत्माका) अस्तित्वपना । श्रद्धा अस्तित्वका ग्रहण करती है । इसलिये कृपालुदेवने पहला पद लिया है "आत्मा है" । श्रद्धा कैसे करनी ? ज्ञान पूर्वक करनी । ज्ञान कैसे करना ? समझ करनी ।

"जैसे घटपटादि पदार्थ हैं..." दृष्टान्तमें बाह्य पदार्थ घट, कपड़ा आदि पदार्थ हैं जैसे आत्मा भी है । जैसे दूसरे पदार्थोंकी मौजुदगी है जैसे आत्माकी भी मौजुदगी है । और वह हैयाती सम्यग्दर्शनका विषय है । श्रद्धा अस्तित्वको ग्रहण करती है, बस उतना ही कार्य श्रद्धाका है । आत्माका 'अस्तित्व' वह श्रद्धाका विषय है और उस अस्तित्वको ग्रहण करना वह श्रद्धाका कार्य है ।

अब दृष्टान्तको स्पष्ट करते हैं "अमुक गुण होनेके कारण जैसे घटपटादि होनेका प्रमाण है" किस तरह प्रमाण लिया ? वैज्ञानिक पद्धतिसे - क्योंकि वह-उन पदार्थोंके गुण होनेके कारण उन पदार्थोंका होनेका प्रमाण है । गुणोंसे उसकी हैयातीका स्वीकार किया है । गुण है वह उसका स्वभाव है । (और) किसी पदार्थमेंसे उसके स्वभावकी कमी किया जाय, (वैसे) हो तो नहीं सकती, परन्तु कल्पना है - तो पदार्थ शून्य हो जाय, फिर पदार्थमें कुछ रहता नहीं । क्यों ? (कि) उसका गुण स्वभाव वही उसका सर्वस्व है । "...वैसे स्वपरप्रकाशक चैतन्यसत्ताका प्रत्यक्ष गुण जिसमें है, ऐसा आत्माके होनेका प्रमाण है ।" आत्माके अस्तित्वका प्रमाण देकर इस तरह स्वीकार करना । प्रमाण माने साबित करना । साबित करके स्वीकार करना ।

कैसे साबित करना ? स्वपरप्रकाशक ऐसी चैतन्यसत्ता । आत्मा

जो चैतन्य पदार्थ है याने चैतन्यरूपसे जिसका अस्तित्व है, उसमें स्वपरप्रकाशकपनेका गुण है, स्वभाव है, शक्ति है ।

२५० साल पहले एक ज्ञानीपुरुष हो गये जिन्होंने 'अनुभवप्रकाश', 'चिद्विलास' ऐसे ग्रंथ लिखे हैं । अध्यात्मके और सिद्धान्तके दूसरे छोटे छोटे ग्रन्थ लिखे हैं । बहुतसे ग्रंथ लिखे हैं उनमेंसे चिद्विलास में एक प्रकरण लिखा है । लेखक है - ज्ञानीपुरुष पंडित श्री दीपचंदजी कासलीवाल (साहेब) । श्री दीपचंदजी साहबने बहुत ही सूक्ष्म सिद्धांतोंकी बातें चिद्विलास ग्रंथमें लिखी है । एक प्रकरणमें लिखा है 'एक गुणको अनन्त गुणका रूप है'; अब कृपालुदेवने यहाँ सत्ताका, मौजूदगीका स्वीकार करनेके लिये चैतन्यपना लिया है । विषयका अनुसंधान Reference To Context (विषय के अनुसार) कैसे करना ?

आत्मामें चैतन्यपना - वह एक गुण है । चैतन्यकी स्वपरप्रकाशक शक्ति जो है वह एक गुण है । एक Seperate (अलग) गुण है । हर एक गुण स्वतंत्र है और असहाय है, यह बात श्री बनारसीदासजीने अपनी रहस्यपूर्णचिट्ठी परमार्थ वचनिकामें कहा (कि) प्रत्येक गुण स्वतंत्र है और असहाय है, फिरभी सभी गुणोंके निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धभी सिद्धान्तमें हैं और हर एक गुणको तथा एक गुणको अनन्त गुणका रूप है, यह इसका वैज्ञानिक स्वरूप है । जैन दर्शनका उपदेश केवल उपदेशके रूपमें नहीं है बल्कि विज्ञानकी नींव पर, विज्ञानके आधारपूर्वक, यह उपदेश है । विश्वके सारे धर्मोंमें जैन दर्शनका सर्वोत्कृष्टपना होनेका यह एक महत्वपूर्ण कारण है ।

वैसे वेदान्त (दर्शन) के सिवाय इतनी तत्वकी फिलसुफी (सिद्धांत) जैन दर्शनको छोड़कर अन्य कहीं भी नहीं है । वेदान्तमें हजारों ग्रंथ हैं । फिरभी इस जगतमें दो जैन नहीं है । कृपालुदेवके

शब्दोंमें कहे तो कोई दूसरा जैन नहीं है । ऐसा सर्वत्कृष्टपनाका उन्होंने स्वीकार किया है और स्थापित किया है, प्रतिपादन किया है । उसका कारण यह है कि जो अनन्त सर्वज्ञ हुए, जिनेन्द्र परमात्माएं हुए, वे सभी सिद्धालयमें बिराजमान हैं । अनन्तकालमें अनुक्रमसे हुए ऐसे जो जिनेन्द्र अनन्त सर्वज्ञ परमात्माएं (वे सभीने) एक सेकन्डके असंख्यातवे भागमें यानीकि एक समयमें तीनकालके तीनोंलोकको जाना और एक परमाणु जितने सूक्ष्म पदार्थके अनन्त गुणधर्मोंको जाना (उस तरह) जैसे कि उनका ज्ञान उसमें प्रवेश कर जाता हो या प्रवेश करके जानता हो वैसे जाना अतः कुछ अनजाना नहीं रहा । प्रवेश करनेका अर्थ यह है कि कुछ अनजाना नहीं रहता उस अपेक्षासे सर्वव्यापकपना लिया है क्योंकि ज्ञान सर्वत्र पहुँच जाता है । अतः पदार्थके विज्ञानकी सुक्ष्म गुणधर्मोंकी बातें जैनदर्शकी बराबरीमें दूसरे कोई अन्य दर्शनमें देखनेको नहीं मिलती हैं; आज भी नहीं और कभी भी (नहीं) और इसलिये उपदेशका आधार भी वही (विज्ञान) बना है ।

कृपालुदेवने दो प्रकारके बोधकी बात की है - उपदेशबोध और सिद्धांतबोध । उपदेशबोधका विस्तार वेदान्त आदि दर्शनमें भी देखनेको मिलता है । वहाँ बहुत विस्तार देखनेको मिलता है, जैनदर्शनमें भी उसका बहुत विस्तार है । सवाल यह उठता है कि उस उपदेशबोधमें टिककर रहना किस आधार पर हो ? उपदेश अच्छा लगता है, सुनना अच्छा लगता है और जीवको भावना भी होती है कि, इस उपदेशके अनुसार मेरा परिणमन भी होना जरूरी है - होना चाहिये; हो तो अच्छा, और मैं (उसके लिये) प्रयत्न (भी) करू । उपदेशबोधका असरसे कुछ एक गुण प्रगट (भी) होते हैं । सरलता आती है, नम्रता आती है, मध्यस्थता आये, जितेन्द्रीयता

आये, परन्तु इन परिणामोंमें टिकना किस आधार से हो ? टिकनेके लिये सिद्धान्तबोधका जो पुरकपना है वह चाहिये । कृपालुदेवने स्पष्ट किया है - वह सिद्धान्तका परिणमन होने के लिये कारणभूत ऐसा उपदेशबोध - उसका परिणमन हुए बिना कभी किसीको सिद्धान्तबोध परिणमित नहीं हो सकता । इस हेतुसे पत्र ५०६में प्रतिपादन हुआ है । परन्तु इसका जो एक पहलु है वह ऐसा है कि उपदेश है (वह) सिद्धान्तबोधके आधार बिना टिक नहीं सकता (क्योंकि) वह वैज्ञानिक आधार है । क्यों ? कि आखिरमें (जीवको) निर्विकल्प होना है ।

अपनी car (गाड़ी) ५० की.मी. की नोर्मल स्पीड से चलती हो, और एकही रफतारसे चले तो एक घंटेमें ५० की.मी. के निर्धारित स्थल पर पहुँच जाये । इसके पहले हमें विकल्प नहीं आयेगा कि क्यों अभी हमारा निर्धारित स्थल नहीं आया ? क्योंकि हमें उसकी वैज्ञानिक समझ है कि जो स्पीड है वह (घंटेमें) ५० की.मी. की है अतः एक घंटेमें ५० की.मी. की दूरी पर पहुँच सकेंगे । अतः पंद्रह मिनट बाद विकल्प नहीं आता है कि क्यों अभी हम पहुँचे नहीं ? इस विषयमें हम निर्विकल्प रहते हैं कि एक घंटा होगा तभी पहुँचना होगा उसके पहले इस स्पीडसे नहीं पहुँचा जाता । इस तरह अनेक बाह्य पदार्थोंके साथ हमारे परिणाम जूड़ते हैं - संग करते हैं । और इस संगके कारणसे असंगता प्रगट नहीं होती है । हमारा जो परपदार्थके साथ Attachment (लगाव) है उसका निर्विकल्प Detachment (लगाव शुन्य) होना, यह वैज्ञानिक समझ के बिना नहीं हो सकता । उसकी वैज्ञानिक समझ होना जरूरी है । इस दृष्टिसे ऐसा कहते हैं कि जैनदर्शन वह कोई अंधश्रद्धाका मार्ग नहीं है - अंधश्रद्धाका संप्रदाय नहीं है । सिर्फ

कोई रूढ़ि-रिवाज़का विषय नहीं है । हमारे आचार्योंने, श्री कुन्दकुन्द जैसे महान आचार्योंने धर्मकी परिभाषा ही वैज्ञानिकरूपसे की है । “वत्थु सहावो धम्मो” धर्म क्या है ? मंदिरमें जाके पूजा करें उसे धर्म कहा ? ऐसा नहीं कहा । शास्त्रों पढ़े इसलिये धर्म हुआ, ऐसा नहीं कहा । लाख रुपिया दानमें दिया सो धर्म हो गया ऐसा भी नहीं कहा । जिनमंदिर बनवाया सो धर्म हुआ ऐसा भी नहीं कहा । धर्मकी परिभाषा वैज्ञानिकरूपसे की । कितनी विशाल परिभाषा है !! “वत्थु सहावो धम्मो” । वस्तुका जो स्वभाव है वही वस्तुका धर्म है । और उस वस्तुका स्वभाव प्रगट हो वही वस्तुका धर्म है । और उसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र मुख्य है ।

अतः यहाँ अपना विषय - सम्यग्दर्शन प्रगट होनेके हेतुसे सम्यग्दर्शन कहाँ निवास करता है ? हमारी चर्चा पहले स्थानकी चल रही है कि “आत्मा है” उसकी मौजूदगीका स्वीकार करना । और इस मौजूदगीका स्वीकार करनेका प्रमाण देते हुए कृपालुदेव हमें ऐसा समझाते हैं कि, तुम्हारी जो चैतन्य सत्ता है मैं...मैं...मैं...मैं...मैं... रूपसे तुझे मौजूदगीका स्पष्ट भास होता है - तुझे Feel (अनुभव) होता है कि ‘मैं हूँ’ । “मैं नहीं हूँ” ऐसा लगता है तुझे ? नहीं तो, “मैं हूँ” ऐसा लगता है । हां ! उतनी बात जरूर है कि भ्रांतिगतरूपसे (माने) देहात्मबुद्धिसे मैं शरीरवाला हूँ (ऐसा लगता है) और भ्रांतिसे मैं जो जो राग व विकल्प करता हूँ (तब-तब) मैं ऐसा हूँ (ऐसा लगता है), ऐसा जो अनुभव और ऐसा जो स्वीकार; ऐसी जो मान्यता व श्रद्धा है उसे मिथ्याश्रद्धा व मिथ्याज्ञान कहते हैं । परन्तु चैतन्यसत्ताके स्वीकारको सम्यग्दर्शन कहते हैं कि जो चैतन्यसत्ता रागादि व देहादिसे रहित है - उसका स्वीकार करने की बात है । अतः अस्तित्वका स्वीकार करना और यह अस्तित्व

वह भी चैतन्यका रूप है । फिरसे, "आत्मा है" (माने) आत्माके अस्तित्वका स्वीकार करना - प्रतीति करना वह सम्यग्दर्शनका कार्य है । परन्तु यह अस्तित्व चैतन्य सत्तावाला है - यह उसकी विशेषता है ।

अस्तित्व तो छयों द्रव्योंमें-सबमें हैं । अस्तित्व गुण सामान्य है । और जब अस्तित्व गुण सामान्य है तो यहाँ पर स्व-पर की एकता जो हो रही है, कि जिसके कारण अज्ञान व मिथ्यात्व है - उसको अलग करने के लिये भिन्न चैतन्य सत्ताका स्वीकार होना जरूरी है । और भिन्न सत्ताका स्वीकार कब हो ? (कि जब) उसका कोई विशेष गुण हो, कोई विशेष लक्षण हो तभी उसकी भिन्नताका स्वीकार होगा । अतः (उस चैतन्य) सत्ताको Specify (उल्लेख) करना जरूरी है । तो ही उसका यथार्थ स्वीकार होगा वरना कथनमात्र स्वीकार तो है ही ।

"मैं हूँ", "मैं हूँ" (ऐसे परमें) अहंकार करनेमें कोई कसर नहीं छोड़ी है । मैं शरीरवाला हूँ (उसमें) फिर रूपवान हूँ , या कुरुप हूँ ऐसा होता है । (मैं) रागवाला हूँ उसमें भी इतना अच्छा रागवाला हूँ, कितना सुन्दर भाव आता है, इतना (सुन्दर) राग आता है । फिर आगे चले तो आती है वाणी- इतना सुन्दर बोल सकता हूँ, इतना सुन्दर आवाज है । ये सब अनात्मतत्व है । फिर तो सिलसिला बहुत लंबा है । मैं पैसेवाला हूँ, गाड़ीवाला हूँ, सगे - सम्बन्धीवाला हूँ, सत्तावाला हूँ - ऐसे बहुत लंबी जंजाल है । परन्तु अन्दरसे (चैतन्यसत्तासे) च्युत हुआ इसलिये वह जंजालमें फस गया । और जितना आगे गया उतना ज्यादा दुःखी हुआ ।

आज हम लोग जो स्वाध्याय कर रहे हैं, इस स्वाध्याय शुरु करनेके पिछे हमारा कौनसा Motive (आशय) - हमारा क्या हेतु

(है), (उसे) हमें समझनेमें स्पष्टरूपसे लेना चाहिये; (समझमे) होना चाहिये । और यह Motive (आशय) है - आत्मिक सुख-शान्तिकी प्राप्ति करना वह । जबकि सभी जीवोंको - समस्त जीव समुदायको सुख-शान्तिका ही प्रयत्न है । परन्तु विपरीत प्रयत्न होनेसे सुखके बजाय दुःखकी प्राप्ति करता है । यहाँ परभी सुख प्राप्ति का हेतु ही तो है । सम्यग्दर्शन होते (ही) सुख, शान्ति व आनन्दकी प्राप्ति होती है । अतः हमलोग सम्यग्दर्शनको चाहते हैं क्योंकि उसकी प्राप्ति सम्यग्दर्शनपूर्वक ही होती है । और उसका (सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिका) यथार्थ उपाय क्या ? उस उपायमें सबसे पहले - प्रथम पदमें स्वयंकी शुद्धचैतन्यसत्ताका श्रद्धामें स्वीकार करना वह है । (वह) चैतन्यसत्ता स्वपरप्रकाशक होने के कारण उसका गुण प्रत्यक्षताको प्राप्त हुआ है । जहाँ प्रत्यक्षता होती है वहाँ अन्य प्रमाणकी अपेक्षा (जरूरत) नहीं रहती - आवश्यकता नहीं होती; अतः दूसरे प्रमाण देनेकी कोई जरूरत नहीं रहती ।

बहुत ही संक्षेपमें केवल अढ़ाई पंक्तिमें, कृपालुदेवने यह पदका प्रतिपादन किये हैं । क्योंकि आत्मा है वह प्रत्यक्ष है । स्व-पर प्रकाशकपनेके कारण वह प्रगटरूपमें है; और वह अत्यंत प्रगटरूपमें है, क्योंकि वह (आत्मा) स्वयंको भी जानता है व अन्य पदार्थोंकी सत्ताको भी जाहिर करता है, जानकर जाहिर करता है । अगर आत्मामें परप्रकाशकपनेकी शक्ति नहीं होती तो यह आत्माके सिवा जगतके अन्य पदार्थोंकी खबर भी नहीं होती - प्रसिद्धि भी नहीं होती । दूसरा, अनादिसे जो उलटा (विपरीत) परिणमन हो रहा है वह परसत्तामें स्वसत्ताके स्वीकारसे हो रहा है यह भूल है । यह श्रद्धाकी भूल हो रही है । (और) फिर श्रद्धागुणके परिणमनकी विशिष्टता भी इस जगह समझना आवश्यक है । आत्मामें श्रद्धा,

ज्ञान, चारित्र, आनन्द आदि जो गुण है, वे सभी गुणोंकी परिणमनकी कोई विशिष्ट प्रकारकी परिस्थिति है । स्वभावसे वैज्ञानिक परिस्थिति ही ऐसी है । ईन तीनों गुणोंकी परिस्थिति स्वाध्याय के समय समझना जरूरी है । उसमें जब श्रद्धागुणका विषय चलता है - सम्यग्दर्शनका विषय चलता है तब उसकी परिणमन करनेकी रीत क्या है ? उसे भी हम थोड़ा समझ लें ।

श्रद्धागुण जिसे पकड़ता है (अर्थात्) जहाँ परिणमन करने लगता है वहाँ पूरी शक्तिसे वह काम करता है । अधूरी शक्तिसे रह काम नहीं करता है । उलटी (विपरीत) श्रद्धाभी पूरी शक्तिसे काम करती है, उसमें कोई अंश नहीं पड़ता । आधा श्रद्धा उलटी रहे और आधा सुलटी भी हो ऐसा नहीं बनता है । उलटी भी पूरी और सुलटी हो तो सुलटी भी पूरी । या तो मिथ्या या तो सम्यक् । सम्यक् व मिथ्या वह उसकी (श्रद्धागुणकी) जाति है (अभी) यह मिथ्याश्रद्धा अपने अनन्त बलसे उलटी परिणमन करते रहनेके कारण उसे सुलटी करनेमें भी ताकत बहुत चाहिये । और जब सुलटी होगी तब अनन्त शक्तिसे सुलटी होनेवाली है, क्योंकि सम्यक्त्व पूरा का पूरा प्रगट हो जाता है । यहाँ पर जो सम्यक्त्व प्रगट हुआ वही सम्यक्त्व सिद्धदशामें रहनेवाला है । सम्यक्दर्शन, सम्यक्दर्शन ही रहनेवाला है । फिर दूसरे गुणकी अपेक्षासे उसकी भिन्न भिन्न (तारतम्यता) डीग्री के मुताबिक अलग अलग नाम दिये गये हैं, परन्तु सम्यक्पना तो सम्यक्पना ही रहता है । अवगाढ़, परम अवगाढ़ व क्षायिक ये सभी की अपेक्षा अलग-अलग है । हमें उसका विस्तारका अभी प्रसंग नहीं है । परन्तु सम्यक्त्व है वह तो:

बाहिर नारक कृत दुःख भोगे, अंतर सुखरस गटागटी,

मोहे सम्यग द्रगधारिकी रीति लगी है अटापटी ।।

बाहरमें ऐसा दिखे कि नरकका जीव कितना दुःख भोगता है, परन्तु सम्यग्दर्शन होता है तब अंतरसुख को घटक-घटक पीता है । एक ज्ञानीके पदकी यह रचना है ।

अतः सातवीं नरकके सर्वोत्कृष्ट तीव्र दुःखका उल्लंघन कौन कर सकता है ? (कि) सम्यग्दर्शनकी शक्ति । वहाँ भी वह (जीव) सुखका अनुभव करता है । सम्यग्दर्शन प्रगट होता है उसी क्षण उस दुःखोंका अनुभव उसे नहीं होता है । उसका उपयोग दुःख पर नहीं है, क्योंकि दुःख तो 'ये मुझे है' ऐसे मनके कारण है । फिरसे, दुःखतो 'ये मुझे है' ऐसे मनके कारण है । भिन्न पड़ते हुए ज्ञानियोंको तो उसकी भिन्नताका अनुभव होता है । और इस विषयको कृपालुदेवने पत्रांक-९१३ में बहुत ही सुन्दर रीतसे प्रकाशित कीये हैं । जैसे कि, अशाताका काल और उसमें भी तीव्र अशाताके काल में, उस समयको उन महापुरुषोंने अधिक कल्याणकारी समझे हैं । अधिक कल्याणकारी कहो कि, अधिक आनन्दकारी कहो एक ही बात है ।

हमारे एक आचार्य समन्तभद्रचार्य हुए । उन्होंने रत्नकरण्ड श्रावकाचार - एक आचारका ग्रंथ लिखा है । चरणानुयोगका ग्रंथ है । उसमें अंतमें एक मृत्यु महोत्सव अधिकार लिखा है । दुनियामें यह बात सुननेको नहीं मिले । दुनियामें तो मृत्युका नाम लिया तो वह बात ही अशुभ गिननमें आती है, ऐसी चर्चा ही नहीं करनी चाहिये । ऐसी कोई बात सुननेको भी नहीं चाहेगा । मृत्यु की बात सुननेको, करनेको भी कोई नहीं चाहता । ऐसी चर्चा मत करो, दूसरी कोई भी बात करो । परन्तु यहाँ अलौकिक मार्गमें तो बात भी सब अलौकिक ही है । क्योंकि उस वख्त, ज्ञानी जो

होते हैं उन्हें खयाल आ जाता है, कि आयुष्य पुरा होनेकी तैयारी है ।

देखीये न ! सौभाग्यभाईको ! Death Bed (मुत्यु शय्या) पर है (तब) वृद्धावस्था है, शरीर अशक्त हो चुका है, सात-आठ महिनोंसे बुखार उतर नहीं रहा है फिरभी सम्यग्दर्शन होते ही जवानी आ गई । उनके वचनमें Power (जोर) कितना है !! यह सम्यग्दर्शनका Power है । अभी केवलज्ञान लूंगा ऐसा कहने लगें । वहभी यहाँ सोते हुए, संघयण (संहनन) नहीं है और ऐसी परिस्थिति है । अभी तो साधु दशा नहीं आयी है । फिरभी केवलज्ञानके गुंज आने लगते हैं - उतना जोश आता है । सम्यग्दर्शन की शक्तिभी अनन्त है । और वह गुण पुरा का पुरा खुला हुआ होनेसे सभी गुणोंमें उसका निमित्त-नैमित्तिक रूपसे - सर्वगुणांशरूपसे शुद्धि - यथासंभव शुद्धि उत्पन्न हो जाती है । और मोक्षमार्गमें वह मूल गुण है । "दंसण मूलो धम्मो" धर्मका मूल दर्शन (श्रद्धा) है । दूसरा सूत्र कुन्दकुन्द आचार्यने दिया "चरित्तं खलु धम्मो" (प्रवचनसार गाथा - ७) चारित्र वास्तवमें धर्म है - परन्तु मूलमें श्रद्धा है वह धर्मका मूल है । मूल जिसका मजबूत (ऐसा पैड़) वह चाहे जैसे तुफानमें भी गिरेगा नहीं । वह पैड़ कैसे भी तूफानमें गिरेगा नहीं । इस विषय पर तो पूरा कथानुयोग लिखा गया है ।

रामचंद्रजीने कितने - कितने आलाप - विलाप किये !! परन्तु क्षायिक सम्यग्दर्शन होनेसे व तद्भव मोक्षगामी होनेसे सिद्धालयमें पधारे । किसी समय सम्यग्दर्शन छूटा नहीं था । अनेक प्रसंगोकी उलटफेर हुई । ज्ञानीयोंको, मुनियोंको अनेक प्रकारके कठिन उदय आते हैं (परन्तु) जिसका मूल मजबूत होता है वह पैड़ कभी गिरता नहीं, ऐसा सम्यग्दर्शन होता है । वह आत्माका अनन्त शक्तिसे

परिणमन करनेवाला एक महान गुण है, मूल गुण है । और यह नीवकी बात होनेसे - मोक्षमार्गकी नीव की बात होनेसे, यहाँ पर इस पत्रमें कृपालुदेवने उसके निवासके स्थानकभूत मुख्य-मुख्य पहलुओंकी चर्चा की है । इस विषय पर हम आगेके स्वाध्यायमें विस्तारपूर्वक सोचेंगे । समय समाप्त होता है ।



हे जीव, त्रिलोकनाथ जैन परमेश्वरकी प्रदत्त निधि हाथ लगी है, जिससे शाश्वत कल्याणका उपाय सहजमात्र में प्राप्त होकर, अभी ही परमशांतिका अनुभव हो सके ऐसा है, तो फिर किस कारणको लेकर उसकी उपेक्षा होवे ? या उपेक्षा करनी चाहिये ? (श्रद्धेय पू. भाईश्री)

अहो, संतोका जीवन परमात्मपदको अंतरमें लिपटके रहे हैं, चिपक गये हैं इसलिये बाहर आना जरा भी सुहाता नहीं, रुचता नहीं । फिर भी अनिवार्यपने अंशतः बाहर आ जाते हैं । वहाँ देखो कुदरतकी रचना, कुदरतकी लीला । वाणीकी रचना स्वयं हो जाती है । जिससे अन्य सुपात्र जीव संसार समुद्र तीर जाते हैं । स्वानुभूतिमें से भंग पड़ने पर, जो बाह्य प्रवृत्ति हुई उससे भी महा परमागम जैसा उमदा फल जिसके निमित्तसे उत्पन्न हुआ, उनकी आराधना अचिंत्य और अलौकिक महाआश्चर्यकारी परमोत्कृष्ट ही होवे न ? (श्रद्धेय पू. भाईश्री)

प्रवचन - २

दि-२८-७-१९९६, दोपहर

श्रीमद् राजचंद्र वचनामृत । पत्रांक ४९३ चल रहा है । ज्ञानीपुरुषोंने सम्यग्दर्शनके निवास स्थानके उत्कृष्ट स्थानरूप से छः पदको कहे हैं । यह छः पदकी रचना पूज्य श्री सौभाग्यभाई की बिनंतीसे महाकाव्यके रूपमें - शास्त्ररूपमें "आत्मसिद्धिशास्त्र" में प्रसिद्ध हुई है । चलता हुआ वर्ष आत्मसिद्धिशास्त्रका शताब्दी वर्ष है । और हम सब इस शताब्दी वर्ष में आत्मसिद्धिशास्त्रकी महिमा करते हैं । उनके द्वारा उस शास्त्रमें जो परमार्थ रखा है, प्रतिपादित किया है उसकी महिमा करते हैं और साथमें उसके रचयिता पुरुष उनका भी बहुमान, भक्ति, महिमा हम करते हैं ।

ये छः पद महाकाव्यके रूपमें प्रसिद्ध हुए उसके पहले यह पत्र कृपालुदेवने लिखा है । अतः आत्मसिद्धिशास्त्र का विषय पद्यरूपसे प्रसिद्ध होने के पहले गद्यरूपमें उन्होंने लिखकर भेजा था । और यह बात स्वयंके ज्ञानमें पहलेसे ही है, ऐसा उनके आगेके वचनामृतों परसे भी समझा जा सकें ऐसा है । सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके हेतु यह छः पदकी यथार्थ समझ तो होनी ही चाहिये । परन्तु सम्यग्दर्शनकी भूमिकामें आनेसे पहले मुमुक्षुकी जो कइ - एक (उसके पहलेकी) भूमिकाएं है, उसके सम्बन्धित निर्देशन कृपालुदेवने पत्रांक - २५४ में दिया है ।

अगर किसी मुमुक्षुको दृढ मुमुक्षुता, मोक्षाभिलाषा, मोक्षकी कामना, मात्र मोक्षअभिलाष जीवनके ध्येयके रूपमें, आदर्शके रूपमें, लक्ष्यके रूपमें निश्चित होती है, निर्धारित होती है (तब) निर्धारके कारणसे दृढ मुमुक्षुता उत्पन्न होती है । तब वह मुमुक्षु स्वच्छन्दके अभाव हेतु अपने चलते हुए परिणामोंमें अपक्षपात रूपसे अपने दोषों का अवलोकन करता है । और (तब) स्वच्छंदकी यथाशक्ति हानि होती है । इसके पश्चात भी तीन प्रकारके दोष है (१) इस लोककी अल्प भी सुखेच्छा (२) सत्पुरुषके प्रति परम विनयकी कमी और (३) पदार्थका अनिर्णय - माने पदार्थके निर्णयका अभाव है, अनिर्णय है । ये तीन प्रकारके दोषका अभाव करनेके बाद सम्यग्दर्शनको प्राप्त करनेके योग्य होता है ।

सम्यग्दर्शन - वह परिभ्रमण करते हुए जीवको प्राप्त होनेवाली अपुर्व दशा है । जीवने कभी इसे प्राप्त नहीं की है । जिसको प्राप्त करनेसे जीव निर्वाणपदको अवश्य - अवश्य अल्प समयमें प्राप्त करता है, ऐसा सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके लिये कृपालुदेवने २४वे वर्षमें मुमुक्षुताके क्रमके पत्र - २५४ में प्रतिपादित किये हैं । उसके बाद २७वे वर्षका यह पत्र चलता है । उसके पहले भी उन्होंने एक विशेष बात किये हैं । किसी भी जीवको यह मोक्षअभिलाष भी कहाँसे प्रगट होती है ? और जब प्रगट होती है तब (जीवके) परिणाम कैसे होते हैं ? वह उन्होंने पत्र-१२८ नंबरका पहले लिखें हैं कि जिसमें परिभ्रमणकी चिंतना किस प्रकारकी होती है ? और इस चिंतनाके फलस्वरूप मोक्षअभिलाष, मोक्षका ध्येय किस प्रकार दृढ परिणामसे उत्पन्न होता है ? उस दृढताका निर्देश १२८ नंबरके पत्रमें उनके स्वयंके शब्दोंमें जबरदस्त मुमुक्षुताकी नीवका विषय (देखनेको) मिलता है ।

वहाँ यह नीव कितनी मजबूत होती है ! निर्वाणपद तो इमारतकी आखरी मंजिल है; उसके बाद आगे जानेका नहीं है, परन्तु वे सभी मंजिल जिसके आधार पर रहती है वह आधारभूत नीव दृढ़ मुमुक्षुताकी है । ऐसी दृढ़ मुमुक्षुता प्रगट हुए बिना आगेकी कोई बात बनती नहीं है । अथवा वास्तवमें मुमुक्षुको आत्मकल्याणके लिये दिशासुझ भी नहीं आती है ।

यह (दिशासुझ) एक महत्वपूर्ण विषय है, क्योंकि धर्मके क्षेत्रमें, धर्मके क्षेत्रमें आये हुए जीव कुछ न कुछ धार्मिक क्रिया, धार्मिक अनुष्ठान, धार्मिक आचरण सभी कोई करते हैं । परन्तु सही दिशासुझ किसीको ही आती है । और यह दिशासुझ आनेके लिये कृपालुदेवने बहुत कृपा किये हैं, बहुत उपकार किया है । उस विषयमें भी उन्होंने बहुत ही स्पष्ट, अत्यंत स्पष्ट मार्गदर्शन दिये हैं । वह मार्गदर्शन उन्होंने दो पत्र द्वारा दिये हैं । एक पत्र है ८६ नंबरका व दूसरा पत्र है १९५ नंबरका । १९५ नंबरके पत्रमें तो बहुत ही स्पष्ट निर्देश है कि "जिसे मार्गकी इच्छा उत्पन्न हुई है..." देखें, हम कृपालुदेवके ही शब्दोंमें - पन्ना - २६० में कि - "जिसे मार्गकी इच्छा उत्पन्न हुई है, उसे सब विकल्पोंको छोड़कर इस एक विकल्पको वारंवार स्मरण करना आवश्यक है ।"

जिस आत्माको मोक्षमार्गकी (प्राप्ति) की इच्छा हुई हो, परिभ्रमणसे - जन्ममरणसे छूटनेकी इच्छा उत्पन्न हुई हो वह धार्मिकक्षेत्रमें (धार्मिक क्रियाओंका) अनेक विकल्प करता है । उसे उन सभी विकल्पोंको छोड़कर नीचे लिखा है - इस विकल्पको सबसे पहले स्मरण करना आवश्यक है ।

"अनंतकालसे जीवका परिभ्रमण हो रहा है फिरभी उसकी निवृत्ति क्यों नहीं होती ? और वह क्या करनेसे हो ? " इस वाक्यमें

अनन्त अर्थ समाया हुआ है । वाक्य एक है, दो टुकड़ेमें, परन्तु उसके अन्दर अनन्त अर्थ समाहित है । इसमें अनन्त अर्थ समाहित है, इसकी प्रतीति तब आयेगी कि जब वह जीव चिंतनामें आयेगा । **“और उस वाक्यमें कही चिंतना किये बिना...”** या हुए बिना **“उसके लिये दृढ़ होकर तरसे बिना मार्ग की दिशा भी अल्प भान नहीं होता;”** चिंतना विशेष होने पर वेदनामें परिणमित होगी (और) वेदना तीव्र होने पर छटपटाहट में परिणमित होगी । वह चिंतनाके आगे-आगेके, उपर-उपरकी Degree (मात्रा) के परिणामके Stage (भूमिका) है । और ऐसा हुए बिना **“मार्गकी दिशाका अल्प भी भान नहीं होता”** मार्गका तो भान नहीं होता, परन्तु उसके पहले जो दिशासुझ आती है, उसका वर्तमानमें अल्प भान भी नहीं होता । **“पूर्वमें हुआ नहीं और भविष्य कालमें भी नहीं होगा ।”** अर्थात् हमारे अनुभवसे यह बात कहते हैं । अतः अगर किसी जीवको दिशासुझका प्रश्न, समस्या, बैचेनी पैदा हो कि, मुझे किस दिशामें आगे बढ़ना है ? उसको सबसे पहले परिभ्रमणकी छटपटाहटमें आना जरूरी है । तीनों काल-भूत, वर्तमान व भविष्य की बात ले ली है । (यह) सिद्धांतिक बात है । तीनकालमें इसके बिना मार्गकी दिशाकी अल्प भी सुझ नहीं आती । **“इसलिये आप सभीको यही खोजना है ।”** किसीको कहनेमें बाकी नहीं रखा । सभी मुमुक्षुओंको कृपालुदेवकी यह आज्ञा है, ऐसा स्पष्ट होता है । अतः यह सोच लेना जरूरी है कि हमने इस परिभ्रमणकी चिंतनाकी छटपटाहटमें प्रवेश किया है या नहीं ? या वह (प्रवेश) करनेसे पहले ही हम दूसरे विकल्पोंमें उलझ गये हैं कि यह साधन करें या ऐसा साधन करे व वैसा साधन करें ।

साधन अनेक होने परभी साधन का क्रम है यह बात विस्मरण

करने जैसी नहीं है । कोईभी कार्य (उस) कामकी सुव्यवस्थापूर्वक होता है । जब तक उस कार्यकी सुव्यवस्थामें नहीं चले व अपनी मनघडंत प्रवृत्ति करे, जिसे धार्मिकक्षेत्रमें स्वच्छन्द कहा है, और उस स्वच्छन्दसे कोई भी साधन करें, तो उससे आत्माको कोई लाभ नहीं होगा । परन्तु ज्ञानीपुरुषकी आज्ञा पर चलना जरूरी है । हमें उस क्रमकी समझ नहीं हो, यह बात हो सकता है, परन्तु ऐसे महान ज्ञानीपुरुषों अपने अनुभवसे कोई एक बात अति स्पष्ट शब्दोंमें कह गये हैं, उसके उपर हमारा लक्ष्य व ध्यान जाना चाहिये ।

यह तो स्वयंके प्रयोजनका विषय है कि मेरा आत्मकल्याण कैसे हो ? जिन परिणामोंसे खुदका कल्याण होता हो या अकल्याण होता हो उसकी सुझ खुदको ही नहीं हो (तो) उन परिणामों के विवेकमें उस जीवका प्रवेश कैसे हो सके ? **“इसलिये आप सभीको यही खोजना है, उसके बाद दूसरे क्या जानना ? वह मालुम होता है ।”** इसके पहले हमने जान लिया हो कि यह करना चाहिये - ऐसा करना चाहिये या वैसा करना चाहिये । परन्तु वास्तवमें इसके पहले जो बात निश्चयरूपसे (जिसे समझना है वह बात) समझने - जाननेमें नहीं आयी है ऐसा स्वीकार कर लेना चाहिये व प्रथम ही इस भूमिकामें (दूसरे) सब विकल्पों से छूटकर (छोड़कर) प्रवेश होना चाहिये ।

यह परिभ्रमणकी चिंतना कैसी होती है ? उसका नमुना १२८ नंबरके पत्रमें शुरुके चार पेराग्राफमें (पंक्ति) है कि, जो महावैराग्यको उत्पन्न करता है । इस तरह दूसरे स्तरमें जीवका वैराग्यमें प्रवेश होता है । वेदनापूर्वकके वैराग्यसे परिभ्रमणके नाशकी - जन्ममरणके नाशकी व मोक्षका जो ध्येय, जो लक्ष्य, जो अभिलाषा उत्पन्न हुई - यह किसीभी कीमत पर शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त करनेकी जिज्ञासा व भावनामें

प्रवेश हुआ (तब उस जीवको अन्दरसे ऐसा आता है) कि चाहे जो हो, चाहे जितने प्रकारके दुःख, आधि, व्याधि, उपाधि, उपसर्ग, परिषह आ पड़ो (परन्तु) यह करना ही है - करने पर ही छूटकारा है । (उसके) बिना हे जीव ! किसीभी प्रकारसे तेरा छूटकारा हो ऐसा नहीं है । ये जो कृपालदेवके शब्द है यह स्पष्टरूपसे सूचित करते हैं कि, ऐसी मजबूत नीव डाले बिना आगेके परिणामोंका स्तर आना शक्य नहीं है ।

हम लोग जब आजके स्वाध्यायमें सम्यग्दर्शनके निवासस्थानका विचार करनेके लिये सामुहिकरूपसे इकट्ठे हुए हैं, तब सम्यग्दर्शन तक पहुँचनेके क्रमके विषयको भी कृपालुदेवके वचन अनुसार, अनन्त ज्ञानीयोंका एक ही मार्ग है उसके अनुसार, उस क्रमको समझ लेना जरूरी है । और इस क्रमसे प्रवेश नहीं हुआ हो तो प्रवेशपूर्वक आगे बढ़ना है - व्यवस्थितरूपसे आगे बढ़ना है । इतना विचारणीय रहा कि और उस तरह आगे बढ़ना हुआ हो तो यह भी जाँच कर लेनी चाहिये कि, कहाँ तक पहुँचे हैं ?

उपरकी हरएक ऊँची से ऊँची जो आत्मकी अवस्थाएं है वे सभी अवस्थाएं क्रमसे आती है । जिनेन्द्रके मार्गमें अनादि अनन्त साधनाके क्रमकी एक सुव्यवस्था प्रसिद्ध है । जिनमार्गके सम्बन्धमें १४ गुणस्थानका निरूपण अनादि-अनन्त है । इसमें कोई फेरफार किसी भी कालमें नहीं होता ।

केवलज्ञान आदिकी जो मोक्षकी अवस्था है वह अवस्था मुनिदशाके सद्भावपूर्वक होती है । क्रममें पहले मुनिदशा आती है । केवलज्ञान उत्पन्न होनेके लिये यह पूर्व शर्त है । Subject To Condition (नियमबद्ध) केवलज्ञान उत्पन्न होता है; (वह) कोई वैसे ही उत्पन्न नहीं हो जाता । मुनिदशा जो है वह सम्यग्दर्शन के बिना किसीको

सच्ची भावलिंगी मुनिदशा हो नहीं सकती । भले ही मुनिदशाके योग्य बाह्यत्याग, २८ मूलगुण, पंचमहाव्रत, समिति, गुप्ति आदिका जिनागमके अनुरूप, जिनोक्त आज्ञा के अनुरूप व्यवहार हो तो भी वह बाह्य व्यवहार है । छट्टे-सातवें गुणस्थानके अनुरूप शुद्धिविशेष सम्यग्दर्शन बिना किसीको प्राप्त नहीं होती । अतः शास्त्रमें मुनिके द्रव्यलिंगी व भावलिंगी ऐसे दो भेद हैं । जहाँ भावलिंग प्रगट नहीं हुआ है वहाँ मात्र द्रव्यलिंगी मुनिका निर्देश है । और ऐसी जो (भावलिंगी) मुनिदशा है वह सम्यग्दर्शन बिना नहीं होती । (और वह) सम्यग्दर्शन भी पदार्थ निर्णय बिना नहीं होता ।

जैसे इस क्रमको कृपालुदेवने पत्रांक २५४ में प्रतिपादित किया है वैसा ही क्रमका दूसरा ७५९ नंबर का पत्र है । वहाँ सम्यग्दर्शनका क्रम ऐसे लिया है, कि परमार्थ निर्विकल्प आत्मस्वरूपकी जो प्रतीति है वह पारमार्थ सम्यग्दर्शन है । उसमें स्वानुभव है और उसके पहले परमार्थकी स्पष्ट अनुभवांशसे प्रतीति - ऐसा दूसरा समकित जिसको २५४ पत्रांकमें पदार्थनिर्णय कहा है उसकी प्राप्ति होती है । यह पदार्थनिर्णयमें स्वरूपकी पहचान का विषय है । पहचानका तो बहुत लम्बा प्रकरण है और जैसे इस पदार्थनिर्णयके बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता वैसे पदार्थकी पहचान भी सत्पुरुषकी पहचानके बिना नहीं होती । पत्रांक ७५९ में उसे प्रथम समकित कहा है । जैसे ही सत्पुरुषकी पहचान हुई कि उनके प्रति जो परम विनयकी न्यूनता थी उसकी पूर्ति होती है । और मुमुक्षुको सत्पुरुषमें परमेश्वरबुद्धिरूप परम धर्म प्रगट होता है । पहचान बिना परमेश्वरबुद्धि नहीं आती ।

यह प्रश्न थोड़ा जटिल है । शास्त्रोंको पढ़े हुए विद्वानोंको भी उलझनमें डाले ऐसा (प्रश्न) है । क्योंकि सत्पुरुषका आत्मज्ञानका

गुणस्थान चौथा गुणस्थान है । अविरत है व बाहरमें इसका कोई चिन्ह (लक्षण) देखनेको नहीं मिलता (तो फिर) उनमें परमेश्वरबुद्धि कैसे लाये ? आये ? हमलोग तो अभी कृपालुदेवको स्वीकार करते हैं, बहुत अच्छी बात है । परन्तु उनकी मौजुदगी (उपस्थिति) में जैसे एक २७-२८ वर्षका आजका लडका गिना जाता है, अपने यहाँ होते हैं न ३० सालके ! २५-२७ सालकी उम्रवालेको हम लडका ही कहते हैं, उस उम्रमें (वे) बंबई की दूकानमें बहुत बड़े पैमानेमें व्यापार धन्धा करते थे, यह जितनी पेढीयां चलती थी उसके वे प्रबन्धक थे, सर्वेसर्वा थे, छोटी उम्रमें विशेष प्रज्ञाके कारण लौकिक विद्या भी उनकी असाधारण थी और अलौकिक विद्या तो हमारा हृदय व मस्तक दोनों झुक जाय ऐसी थी । इस लिबासमें, इस भेषमें व इस उम्रमें उन्हें ऐसे महानपुरुषके रूपमें स्वीकार करना - यह पहचान के बिना संभवित नहीं है । पहचान नहीं हो तो किसी भी (महापुरुषके रूपमें) स्वीकार करना वह आसान बात नहीं है, इसके लिये जीवकी योग्यता चाहिये । इस योग्यताका निर्देश हमने कलकी चर्चामें किया था ।

जिसका हमने आधार लिया था वह पत्रांक है ६७४ नंबरका है, कि सत्पुरुषकी या वीतरागकी सच्ची पहचान कैसी योग्यता पूर्वक होती है ? अतः उस पहचान के हेतु भी योग्यताकी आवश्यकता है । और यह सभी प्रकारकी उपर-उपरकी दशाकी योग्यताका मूल कहाँ पडा है ? (कि) परिभ्रमणकी वेदनामें पडा है । कृपालुदेवने नीवका (पत्थर) वहाँ डाला है ।

इस तरह महापुरुषोंके मार्ग पर हम चलें तो अवश्य ही अवश्य सुगमतासे, अगमअगोचर ऐसे मार्गमें सुगमतासे चलनेके लिये शक्तिमान बन सके । वरना अनेक प्रकारके धर्मसाधन करने पर भी हमारा

अनन्तकाल अभी तक बीता है । ऐसा नहीं है कि पिछले अनन्तकालमें हमने धर्मसाधन नहीं किया है । हमारी उत्पत्तिके कालका तो कोई अंत नहीं है । पिछले अनन्तकालमें हमने धर्मसाधन नहीं किये हो ऐसा तो नहीं है । **“वह साधन बार अनन्त कियो”** परन्तु ज्ञानीपुरुषके मार्ग पर, ज्ञानी पुरुषकी आज्ञा अनुसार चलना है उतना निर्धारमें पक्का होना चाहिये और उसी तरह चलना चाहिये ।

एक सामान्य दृष्टांत लें कि एक देढ़ ईचका स्क्रु घुमाकर खुल जाता है । जिसे हमलोग स्क्रु कहते हैं । उसे लकड़ेमें फिट किया है और उसे बाहर निकालना हो तो अगर (उंगलियोंसे) उसे खींचे तो खींच-खींच कर थक जाये व उंगली कट जाय (परन्तु) स्क्रु बाहर नहीं निकलेगा । भले ही हमारी ताकत भेंसाको धक्का देकर गिरा देनेकी हो और धक्का देवें तो भेंसा गिर भी जाय; परन्तु दैढ़ ईचका स्क्रु निकालना हो तो उंगलियोंसे नहीं निकले । यद्यपि हम पक्कड़ ले तो भी वह स्क्रु निकालना मुश्किल है क्योंकि उसके पेंचमें लकड़ी भरा हुआ है । बल्कि अगर स्क्रु - ड्रायवरसे उसे घुमानेमें आये तो सेकंडोमें स्क्रु निकल जाये, वरना पुरा दिन महेनत करो तो भी निकलना मुश्किल है । छोटेसे इस काममें भी उसकी सुव्यवस्था है । उसका नियत साधन है, उसकी प्रक्रिया है । तो अनादिसे चले आ रहे ऐसे संसारका हमे क्षय करके संसारके सभी प्रकारके जन्म-मरणादिक पीड़ाके, अकस्मातके, बाधाके, टेन्शनके इत्यादि सभी दुःखोंका अभाव करके निर्वाणपदकी प्राप्ति करनेका महान कार्य करना है, तो उसकी सुव्यवस्थाका विचार किये बिना - गांवके लोग जैसे सड़क पर चलनेके बजाय इधर-उधर चलते हैं, वैसे चलने जायेंगे तो इस मार्गका पता लगे ऐसा नहीं है । अभी तक प्राप्त नहीं हुआ इसका भी कारण यही है

ऐसा दिखता है ।

इस बात पर, इस विषय पर, इस मुद्दे पर कृपालुदेवका बहुत वज़न है । और उसका निर्देशन उन्होंने ७८३ नंबरके पत्रमें किया है । पू. सौभाग्यभाईका देहांत होनेके पश्चात उनके परिवार पर यह पत्र लिखा गया है । परन्तु परिवारवाले को वह पत्र लिखनेसे पहले उनको सौभाग्यभाईका जो स्मरण आया है, उसमें इस स्मरणके वचनमें अंगुली निर्देश किया है कि सौभाग्यभाईमें विशेषता क्या थी ?

एक तो उनकी मुमुक्षुदशा, दृढ़ मुमुक्षुता (तो) थी ही तथा ज्ञानीके मार्गके प्रति उनका अद्भूत निश्चय । देखिये । कितना Specify (स्पष्ट) किया है कि मुझे ज्ञानीके मार्ग पर चलना है । सौभाग्यभाईको शास्त्रोंका ज्ञान ज्यादा नहीं था । वे कोई विद्वान नहीं थे, पंडित नहीं थे । एक छोटे से गाँवके साधारण व्यक्ति थे, रुड़-कपास का सीजनल (मौसमका) व्यापार था । जो लोग झालावाड़के होंगे उन्हे पता होगा । मैं झालावाड़ का हूँ, उस तरफ का हूँ, इसलिये मालुम है । बारिस वहाँ बहुत कम आती है और कम बारिसमें खेतमें कपास, गेहूँ, चना होते हैं । सौभाग्यभाई कपासका सीजनल व्यापार करते थे । परन्तु एक सुझ आ गई थी । होनहार भी अच्छा था तो कोई सत्पुरुषको खोजते थे । खोजते खोजते उनके भाग्ययोगमें या महाभाग्य कहें, कृपालुदेवका पत्ता लग गया । (तो) निश्चय कर लिया कि वे कहीं उसी मार्ग पर चलना है । मेरी इच्छासे, मेरी मति - कल्पनासे, मुझे ठीक लगे ऐसे अब नहीं करना है ।

यह विषय पहले २०० नंबरकी वचनावलीमें २४ वे वर्षमें आ गया है । उस वचनावलीको पढ़कर उन्हें (सौभाग्यभाईको) बहुत चित्त प्रसन्नता हुई है । वचनावली लिखी थी तो मणीभाईके (सोभाग्य

भाई का लड़का) लिये, परन्तु सौभाग्यभाईको भी उतना ही प्रमोद हुआ है । उस विषयमें सौभाग्यभाईका निर्णय कैसा था ? कृपालुदेवके ज्ञानमें सौभाग्यभाई कैसे थे ? उसका स्मरण करके उन्होंने यहाँ दिखाया है । ज्ञानीकी आज्ञाकारितामें रहनेका यह एक बहुत बड़ा गुण है । आज्ञा बाहर गया तो माथा पटक पटक मरे (तो भी) मार्ग पर चढ़ नहीं सकता । पत्रांक २०० वचनावलीमें लिखते हैं 'ज्ञानीकी आज्ञाका आराधक अंतर्मुहूर्तमें भी केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है ।'

“आणाए धम्मो आणाए तवो ।” १९४ नंबरके पत्रमें कहा ऋषभदेव भगवानसे लेकर अंतिम केवली जंबुस्वामी तक के जितने केवली हुए, उन सभीको यही उपदेश मिला था, यही उपदेश प्राप्त हुआ था । उस बात पर कृपालुदेवका कितना वज्रन है ? यह इस पत्रको देखते हुए अपने सबके बीच प्रसिद्ध है ।

ये सभी पूर्वभूमिकाओंकी अपेक्षा रखते हुए यह छः पदके पत्रको हमें समझनेका है । वैसे ही सीधा कोई काम हो जाय कि चलो ! यह तो छः पदकी बात है, और हमारी बुद्धि तो ऐसे ६०० पद हो तो भी समझ ले ऐसी है । क्योंकि हमलोग व्यापारी लोग है न ! बनियाके हाथमें धर्म आया है । वेपारी लोग जो ओटोपार्टसका व्यापार करते हैं, एक मोटर पार्टस का व्यापार करे तो उसमें दस हजार आइटम होती है । दूकानमें दस हजार आइटमका व्यापार करनेवालेको ६ बात समझनेमें कितनी देर लगे ? बुद्धि - शक्ति है । जो शक्ति क्षयोपशम ज्ञानमें है, भले ही वह बाह्यज्ञान है फिर भी किसी न किसी क्षेत्रमें वह अवश्य अपना काम करता ही है । अतः छः पद समझना वह कोई बड़ी बात नहीं लगे, फिरभी योग्यता जो है वह बड़ी बात है ।

छः पद सिर्फ क्षयोपशमज्ञान गोचर कर लें तो सम्यग्दर्शन हो जाय, ऐसी कोई बात नहीं है । यह छः पद (यथार्थ) समझनेमें, योग्यता पूर्वक समझें तो (ही) सम्यक्दर्शन होता है, यह बात उसके गर्भमें पड़ी है । इतना ही यहाँ विचार करनेके हेतुसे इतना समय स्वाध्याय (शुरु) करनेके पहले लिया है ।

अब जो प्रथम पदकी चर्चा चल रही है उस विषयमें थोड़ा विशेष विचार करते हैं । “**आत्मा है**” उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है । क्या कहना चाहते हैं ? (कि) घटपटादि पदार्थ जैसे समव्यावहारिक प्रत्यक्ष ज्ञानमें हैं, जिसे हम आँखोंसे देख सकते हैं (कि) यहाँ घड़ा पड़ा है, यहाँ हमारे वस्त्र पड़े हैं वैसे इस दृष्टांत अनुसार “**आत्मा है**” उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है, चैतन्य सत्ता की हैयाती है । चैतन्यसत्ताका प्रत्यक्ष गुण - चैतन्यसत्ताका प्रत्यक्ष गुण माने स्वभाव । चेतनामें प्रत्यक्षपना वह एक उसका गुण है । कल जो भेदज्ञानकी चर्चा चली थी उसमें (देखें स्वानुभूतिप्रकाश अंक ५ से ७-१९९७ तक) भेदज्ञानका अंतिम Stage (भूमिका) प्रत्यक्षताका लिया था कि वेद्य-वेदक भावमें चैतन्यसत्ताका प्रत्यक्ष गुण समझमें आता है । यह तो सम्यग्दर्शन (प्रगट) हो उसकी बात है न ? भेदज्ञानपूर्वक - स्वानुभव पूर्वक सम्यग्दर्शन होनेमें, प्रत्यक्षता उसमें क्या है ? (प्रत्यक्षताका क्या Role (भाग) है ?)

अतः कृपालुदेवने एक शब्द रख दिया । उसके गर्भमें बहुत सी बातें पड़ी है, कि स्वयंकी जो चैतन्यसत्ता है उसका प्रत्यक्ष प्रमाण -(उसकी) हैयातीका प्रत्यक्ष प्रमाण हमारे पास उसकी प्रत्यक्षता चैतन्यसत्ता खुद है । दूसरेसे उसका क्या प्रमाण दें ? आत्माकी हैयाती प्रत्यक्ष है और वह प्रत्यक्षता संवेदनसे है । वेदन बिना - ज्ञानवेदन बिना प्रत्यक्षता समझमें नहीं आ सकती है । वेदन कहो

या अनुभव कहो । ज्ञानमें रहा हुआ, ज्ञानमें परिणमता हुआ जो ज्ञानवेदनपना वहाँसे प्रत्यक्षता समझमें आती है । और वहीं से अस्तित्व ग्रहण होता है ।

आत्मा एक अरूपी पदार्थ होनेसे इन्द्रिय ज्ञानगोचर नहीं है । इन्द्रियज्ञानमें जो जो पदार्थ ज्ञानगोचर होते हैं, वे सब बाह्य उपयोगसे, बहिर्मुख उपयोगसे हम जान रहे हैं और वे रूपी पदार्थ है । अतः पुद्गल पदार्थका हमें जो ज्ञान होता है उसमें भी अरूपी जड़ पदार्थका ज्ञान नहीं होता है बल्कि रूपी जो एक जड़ पुद्गल है उसका अनेक विध प्रकारके पर्यायोंका ज्ञान पांचो इन्द्रिय द्वारा होता है । बादमें उसका विशेष विचार मन द्वारा होता है, परन्तु प्रथम मतिज्ञान पांच इन्द्रियों द्वारा परिणमन करता है । यहाँ आत्मा कोई रूपी पदार्थ नहीं होनेसे (और) स्वयं ही अरूपी पदार्थ होनेसे, अरूपी चैतन्यसत्ताकी हैयाती-उसका अस्तित्व स्वयंको ही कैसे ग्रहण हो ? यह एक बड़ी समस्या है । उसका समाधान यह है कि इन्द्रियज्ञानसे तो (वह) जाननेमें आयेगा ही नहीं । अतः भौतिक पदार्थको जिस तरह हमलोग जान रहे हैं और कोई वैज्ञानिक भी भौतिक पद्धतिसे उसकी शोध करनेका प्रयत्न करे तो (भी) आत्मा नामका पदार्थ उसे समझमें आये ऐसा नहीं है या उसका अस्तित्वको ग्रहण कर सके ऐसा नहीं है । यहाँ पर तो निज अस्तित्व की बात है, दूसरे आत्माओंके अस्तित्वका तो सवाल ही नहीं है । सम्यग्दर्शनमें श्रद्धाको निज अस्तित्वकी पकड़ आती है । अतः उस निज अस्तित्वको जानना है । (अब सवाल यह है कि) उसे किस तरह जानना ?

(आत्माकी) हैयातीका प्रत्यक्ष प्रमाण है । स्व-पर प्रकाशक ऐसी चैतन्यसत्ता है और इस चेतनामें लीन होना, वेदन करना, अनुभव करना ऐसा एक अनुभव करनेका गुण है । और वह वेदनसे ग्रहण

होता है । स्वयंके वेदनसे ही चैतन्यसत्ताका ग्रहण होता है, अन्यथा दूसरा कोई प्रकार निज अस्तित्वको ग्रहण करनेका नहीं है ।

निर्णयरूप - पहचानरूप- भास्यमानरूप उसका प्रथम अनुभवांश पदार्थके निर्णयमें, दूसरे समकित का प्रकार ७५१ पत्रका सार है । और उसका साक्षात्कार जब सम्यग्दर्शन व शुद्धोपयोगकी उत्पत्ति होती है तब होता है । इस विषयको कुन्दकुन्दआचार्यदेवने व अमृतचंद्राचार्यदेवने समयसारकी १४३ व १४४ - कर्ताकर्म अधिकारकी अंतिम दो गाथाओंमें स्पष्ट किया है, कि आत्मसाक्षात्कार, सम्यग्दर्शन व सम्यक्ज्ञान ऐसा नाम किसको दिया जाये ? कि स्वरूपका प्रतिभास, स्वरूपका निश्चय होनेके पश्चात भी एक निश्चय नयका पक्ष उत्पन्न होता है और उस निश्चयनयके पक्षसे अतिक्रांत पक्षातिक्रांत होकर जो निर्विकल्प शुद्धोपयोग होता है, तभी जीवको सम्यग्दर्शन व सम्यक्ज्ञान ऐसी संज्ञा मिलती है, वहाँ तक सम्यग्दर्शन व सम्यक्ज्ञानकी संज्ञा देना योग्य नहीं है । परिणाम चाहे कितने (उत्कृष्ट) हो, और बाह्याचरण (भी) चाहे कितना (उत्कृष्ट) हो (तो) भी इस (निर्विकल्प शुद्धोपयोगकी) भूमिकाको ही सम्यग्दर्शन ऐसा नाम मिलता है । इस सैद्धांतिक बातको आचार्यदेवने वहाँ रखी है ।

यहाँ पर उस भूमिकामें, उस पदमें पहुँचनेके लिये "आत्मा है" (अर्थात्) आत्माका अस्तित्व जो ग्रहण होता है, वह आत्माके प्रतिभासके कालमें होता है - आत्माकी पहचानके कालमें होता है । और इसी विषयका स्पष्ट निर्देश कृपालुदेवके शब्दोंमें (देखें) । व्याख्यानसार - १ का २२० नंबरका वचनामृत है । पन्ना है ७६० । "आज तक आत्माका अस्तित्व भासित नहीं हुआ । क्या कहते हैं इसमें ? कि आज तक माने अनन्तकालसे लेकर वर्तमान दिन जो

चल रहा है वहाँ तक स्वयंके अस्तित्व ही भासित नहीं हुआ । "आत्मा है" उसके उपर विषय चल रहा है (अतः) Reference To Context (विषय के अनुसंधानमें) मिलान कर लेना है "आत्मा है" वह आत्माका अस्तित्व है "है पना" अस्तित्वको सुचित करता है, जाहिर करता है । तो मेरा अस्तित्व मुझे भासित हुआ है कि नहीं भासित हुआ है ? आजदिन तक (तो) भासित नहीं हुआ "अस्तित्व भासित होनेसे सम्यक्त्व प्राप्त होता है" सम्यग्दर्शनके निवासस्थानका एक पहेलु चल रहा है । छः पदमें से एक पद चलता है । अस्तित्व भासित हुआ हो तो "अस्तित्व वह सम्यक्त्वका अंग है ।"

क्या कहा ? कारण है, ये शब्द कृपालुदेवको कम पड़े हैं । वैसे तो पूर्व पर्याय होनेसे उसको दूसरा समकित कहा है । और कारणमें कार्यका उपचार करके यह बात की है । इस बातको ७५१ पत्रांकमें कृपालुदेवने स्पष्ट किया है, परन्तु यहाँ उन्हें कारण शब्द कम पड़ा है, इसलिये 'अंग है' ऐसा कहा । वह तो अंग (है) । अद्भुत बात है । (मुमुक्षु) इस क्रममें आये, बादमें सम्यग्दर्शन होता है । अस्तित्व भासित हो - अस्तित्व ग्रहण हो, फिर सम्यग्दर्शन आता है । (अस्तित्व) वह सम्यग्दर्शनका अंग है ।

"अस्तित्व अगर एक बार भी भासित हो तो वह दृष्टिकी माफिक नजराता है" जैसे नजरबंदीमें होता है, वैसे । और जब नजरबंदी होती है (तब) "और नजरानेसे आत्मा वहाँसे खिसक सकता नहीं" यह स्वरूपनिश्चयका बहुत गहरा प्रकरण है कि ऐसा क्या भासित हुआ कि आत्मा वहाँसे खिसक ही नहीं सकता ? (कि) आत्मामें अनन्त सुखका सागर भासित होता है । फिर वहाँसे वह कैसे खिसक सके ?

देखिये ! हमारे जीवने सुखकी प्राप्तिके लिये क्या-क्या नहीं किया सो कहें ? हमारा सुखका निश्चय पुद्गलमें है, इसलिये इसके लिये हमने क्या-क्या नहीं किया ? भले ही हमारा वह उलटा निश्चय है - विपरीत निश्चय है परन्तु इस उलटे निश्चय का अनुसरण करके (हमने) क्या क्या नहीं किया है ? जो जीव कतलखाना लगाकर बैठा है वह भी भौतिक सुखकी प्राप्तिके लिये बैठा है व जो जीव सामान्य चनालाइ, मूँगफली का व्यापार करता है वह भी सुखकी प्राप्तिके लिये करता है और पचास हजार करोड़की कोई Industry (उद्योग) लगाता है तो वहभी सुखकी प्राप्तिके लिये ही लगाता है । नौकरी करता हो वह (भी) सुखकी प्राप्तिके लिये । जिसमें हमने सुख माना है उसके पीछे जानकी बाजी लगानेको हम तैयार हैं । व्यापारके हेतु चालीस हजार फिटकी ऊँचाई पर प्लेनमें उड़ते हैं । पता नहीं है क्या ? कि प्लेन टूटे तो एक हड्डी भी हाथमें नहीं आये । और कहाँ टूटे उसका कोई भरोसा नहीं है फिर भी ऐसा साहस - ऐसा जोखिम क्यों लेते हैं ? सुखकी प्राप्तिके लिये । सुख प्राप्तिके लिये (इस) जीवने इतने सारे प्रयत्न किये हैं जिसका कोई हिसाब नहीं है । ऐसे इस दरिद्री जीवको सुख नहीं मिला है । सुखके अभावसे ऐसे दरिद्र हुआ है । दीन-हीन होकर जिन पुद्गलोंमें सुखकी गंध भी नहीं है उन पुद्गलोंके पास सुखकी भीख माँग रहा है । अनन्त कालसे दीन-हीन होकर भटक रहा है । ऐसे इस जीवको अपने अन्तरमें उछलता हुआ सुखका समुद्र भासित होता है । अस्तित्व ग्रहणमें यह सब भरा है, फिर आत्मा वहांसे कैसे खिसके ?

क्योंकि इस आत्माके अस्तित्वमें "सिद्ध समान सदा पद मेरो" "सर्व जीव छे सिद्ध सम" अस्तित्व ग्रहणमें स्वयंका सिद्धपद भासित

होता है । प्रत्यक्ष अंशमें - परमार्थकी स्पष्ट अनुभवांशसे प्रतीति होती है । जो दूसरा समकित लिया है (कृपालुदेवने उसे दूसरा समकित कहा है) वह स्पष्ट अनुभवांशसे होता है । अनुभवमें प्रत्यक्षताका अंश है । यहाँ उसे विश्वास आता है कि "मैं ऐसा साक्षात् सिद्धपद स्वरूप हूँ, मैं कोई संसारका पामर प्राणी नहीं हूँ" । (ऐसी सब) कल्पनाएं, सब निश्चय पलटकर एक नया स्वरूप निश्चय - पदार्थ निर्णय उत्पन्न होता है । और तब आत्मा वहाँसे खिसक नहीं सकता । "यदि आगे बढ़ें तो भी पैर पीछे पड़ते हैं, अर्थात् प्रकृति जोर नहीं पकड़ती । क्रोध, मान, माया, लोभ ऐसी चार प्रकृति है, उसके परिणाम बादमें तीव्ररूपसे नहीं आते । मंदरूपसे ही आते हैं, जोर नहीं कर सकते क्योंकि उसके अभाव-स्वभावरूप अपना स्वरूप प्रतिभासित हुआ है ।

अरे ! "एक बार सम्यक्त्व होनेके बाद वह पड़े तो भी फिर ठिकाने पर आ जाता है ।" अतः पुनः समकित की प्राप्ति करता है । समकित होनेके बाद (भी) मिथ्यात्व आने की संभावना है, जब तक क्षायिकपना नहीं आ जाता तब तक समकितमें उपशम व क्षयोपशम दोनों समकित ऐसे हैं कि (अगर) रुचि पलट जाय - पुद्गल सुखकी रुचि हुई तो जीव मिथ्यात्व में आ जाता है । परन्तु वह वापिस समकितमें आयेगा, आयेगा और आयेगा ही । और उसका कारण मूलमें अस्तित्व का भास्यमान होना वह है ।

इस बातकी गहराईमें - गर्भमें एक कारण लिखा है । उसमें इसके गर्भमें एक ऐसी बात है कि जब ऐसा अस्तित्व भासित होता है - पदार्थनिर्णय होता है - "आत्मा है" ऐसा जब भास्यमान होता है (तब स्वभावके संस्कार डल जाते हैं) । बुद्धिमें तो अभी भी हमें समझमें आता है और हम स्वीकार करते हैं । क्योंकि एक

तो कृपालुदेवके वचनामृत हैं, हमें उनके उपर श्रद्धा है व बुद्धिसे भी यह सम्मत हो सके ऐसी बात है । परन्तु इतना काफी नहीं है ।

पारमार्थिकरूपसे अस्तित्वका जो भासित होना है - वह पदार्थ निर्णय तकका विषय है । और जब वह अस्तित्व भासित होता है तब एक ऐसी घटना बनती है कि, यदि समकितसे पड़े तो भी समकितको ले आये । वह घटना कौनसी ? वह घटना है स्वरूप विषयक स्वभाव के संस्कार । जब किसी जीवको स्वयंका अस्तित्व भासित होता है, यानी अपना जो स्वरूप है वह ज्ञानमें भास्यमान होता है (तबसे स्वरूपकी अत्यंत रुचि जागृत हो जाती है) । भास्यमान हो और विचारमें आये उसमें फर्क इतना है कि मात्र उसके सम्बन्धित विचार होता है उसमें "मैं ऐसा हूँ" ऐसा लगता नहीं है । विचारमें आता है परन्तु उसकी असर पड़कर लगता नहीं है और भास्यमान होनेमें लगने लगता है कि "मैं मनुष्य नहीं हूँ" बल्कि "मैं एक सिद्धसम-सिद्ध स्वरूपी आत्मा हूँ" । इस तरह स्वयंके विषयमें पुरा निश्चय बदल जाता है । यह Feling Stage (अनुभव दशा) का विषय है मात्र Thinking Stage (विचार दशा) का नहीं है । जब लगने लगता है तब उसे भास्यमान हुआ ऐसा कहे, और जब वह भासित होने लगता है तब आत्मस्वरूप जितना अनंत महिमाबन्त है इतनी महिमा भी ज्ञानमें प्रतिभासित होती है । और वह महिमा-वह स्वरूप का अत्यंत महिमा स्वरूपकी रुचिको जागृत करता है । ऐसी जो स्वरूपकी रुचि, अर्थात् अत्यंत रुचिके कालमें उस आत्माको स्वभावके संस्कार डल जाते हैं । यह संस्कार शाश्वत ऐसे आत्मास्वरूप के होनेके कारण कभी इसका नाश नहीं होता ।

किसी जीवके साथ ऐसी भी घटना घटती है कि, यहाँ तक पहुँचे और सम्यग्दर्शन होनेके पहले ही आयुष्य पूर्ण हो जाये, पदार्थ निर्णय हो जाय, मुमुक्षुकी भूमिकामें आगे बढ़ता बढ़ता निर्णय तक पहुँचे ; अतः पत्राँक २५४में जो आखरी पद लिया "पदार्थ निर्णय" वहाँ तक पहुँच जाय, स्वभावके संस्कार डल जाये परन्तु आयुष्य पूरा हो जाये, परन्तु (फिरभी) दूसरे ही भवमें संस्कारवश जीव अल्प प्रयाससे स्वरूपस्थितिको प्राप्त करता है । जो अभ्यास अति परिश्रमसे हो सके वह जब अल्प परिश्रमसे हो जाय तब समझना कि कोई पूर्व संस्कार लेकर जीव आया है । पूर्व संस्कारी जीवको निसर्गज सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है ।

तत्त्वार्थसूत्रमें भगवान उमास्वामीने सम्यग्दर्शन की उत्पत्तिके दो प्रकार लिये (कहे) है । निसर्गज व अधिगमजवा । सम्यग्दर्शन निसर्ग से भी उत्पन्न होता है व अधिगम यानीकि निमित्तके सदभावमें भी उत्पन्न होता है । सच्चे वीतरागी देव-गुरु-शास्त्र व सत्पुरुषके निमित्तसे सम्यग्दर्शन होता है वह अधिगमज सम्यग्दर्शन है । और पूर्व संस्कार के कारण सत्पुरुषके असदभावमें या मुनियों केवलीके माने सजीवनमूर्तिके अभावमें भी सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति मात्र संस्कारी जीवोंको होती है । क्योंकि पूर्वकालमें उसे सजीवनमूर्तिके योगमें वह बीजज्ञान मिला है । वह सम्यग्दर्शनका बीज है अतः पदार्थ निर्णयको 'बीजज्ञान' भी कहते हैं । और वह बीजज्ञान कृपालुदेवने सौभाग्यभाईको दिया था (और) उसके बाद वे सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुए थे ।

यह बीजज्ञानकी प्राप्ति कभी निष्फल नहीं जाती है । यह बीज कभी निष्फल नहीं जाता क्योंकि शाश्वत ऐसे आत्माके स्वभावके संस्कार भी शाश्वत है । और एक भवमें नहीं तो दूसरे भवमें और उसमें भी आयुष्य बहुत अल्प हो तो तीसरे भवमें (जीव सम्यग्दर्शको

प्राप्त हो जाता है), वरना तिर्यचमें भी कैसे पाए ? संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच प्राणी (कैसे पाएं) ? हमारे शास्त्रों यह बात स्पष्ट करते हैं कि वहाँ भी सम्यग्दर्शन है और आज भी ढाई द्वीपके बाहर पंचम गुणस्थान तक जाते हैं । तिर्यच श्रावक होते हैं । स्वयंभूरमण समुद्रमें जलचर प्राणी के रूपमें असंख्य सम्यक्द्रष्टि व श्रावक हैं । उन (सभीने) एक बार स्वभावके संस्कार ग्रहण किये हैं । मिथ्यात्व अवस्थामें वहाँ चले गये (परन्तु) वहाँ भी संस्कार जागृत होकर कोई भी शास्त्र (या) सत्पुरुषके सजीवनमूर्तिके सद्भाव बिना भी (सम्यग्दर्शन) प्राप्त करते हैं । ऐसा उसका महत्वपूर्ण स्थान हैं और उस स्थानमें सम्यग्दर्शन निवास करनेवाला है । अतः कृपालुदेवने बहुत ही महत्वपूर्ण विषय दो ही शब्दोंमें प्रतिपादित किया है । “**आत्मा है**” । इस “**आत्मा है**” इसके उपर एक ग्रंथ लिखना हो तो लिख सकते हैं । शब्द दो ही है परन्तु इतनी बात उनके ढाई पंक्तिके वचनामृतमें प्रमाण है - प्रत्यक्ष प्रमाण है - ऐसा कहकर स्थापित की है । विषय विस्तार होने योग्य है परन्तु आजका हमारा समय समाप्त होता है कल विस्तार पूर्वक लेंगे ।



अगर जीवको प्रत्यक्ष ज्ञानीपुरुषके समागम और आश्रयकी भावना नहीं वर्तती हो तो, शुद्ध अंतःकरणसे आत्महित करनेकी इच्छा नहीं है ऐसा सिद्ध होता है । या तो प्रत्यक्षरूपसे जीव संसार परिभ्रमणसे भयभित नहीं हुआ । स्वच्छन्दसे प्रवर्तनेका वहाँ अभिप्राय है । (श्रद्धेय पू. भाईश्री)

प्रवचन - ३

दि-२९-७-१९९६ सुबह

श्रीमद राजचंद्र वचनामृत । पत्र ४९३ चलता है। सम्यक्दर्शन के निवासभूत सर्वोत्कृष्ट स्थानक ऐसे छः पदका प्रतिपादन कृपालुदेवने इस पत्रमे किया है। सम्यक् दर्शन आत्मा को स्वीकार करता है, ग्रहण करता है। इसलिये कृपालुदेवने प्रथम पद "आत्मा है" । ऐसा लिया है। सम्यक्दर्शनको पानेकी ज्ञानी पुरुषकी यह योजना है। जो भी काम है योजनाबद्ध काम है। ऐसे-वेसे नहीं है, मन चाहे वैसा नहीं है, बल्कि यह काम योजनाबद्ध है। उपर उपरसे दो शब्दोका यह वाक्य ऐकदम सादा व सामान्य दिखे, परन्तु ऐसा होने पर भी उसमे जो रहस्य है, विषयकी जो गंभीरता व गहराई है, वह असामान्य (अलौकिक) है।

अनादिकालसे भावभरण करता हुआ यह आत्मा, भावमरण क्यों करता है ? कि अपने अस्तित्वका स्वीकार नहीं करता है इसलिये । मृत्यु क्या है ? जीवनका अभाव वह मृत्यु । मृत्युको हम क्या कहते हैं ? कि भाई वह जिंदा नहीं है । वैसे ही अवस्थामें, फिर मिथ्यात्वके प्रकार भले ही असंख्य हो, परन्तु उसका Common Factor (सभी में मौजूद) जो है, वह अपने अस्तित्वका अस्वीकार है । असंख्य प्रकारके मिथ्यात्वके सामान्य ध्वनिमें अपने अस्तित्वका अस्वीकार है, और इसलिये भावमरण है । भावमें अस्वीकार है इसलिये भवमरण

है ।

“**आत्मा है**” फिर जैसा है वैसा लेनेका है, वरना जैनदर्शनके अलावा जितने भी आस्तिक्य दर्शन है, वे आत्माका स्वीकार तो करते हैं परन्तु जैसा है वैसा स्वीकार नहीं करते । अतः यहाँ इतनी बात विशेष ली है “**स्वपर प्रकाशक ऐसी चैतन्यसत्ता का प्रत्यक्षगुण**” प्रत्यक्ष स्वभाव ऐसा जो आत्मा, ऐसा अस्तित्वका धारक जो आत्मा, उसका जो स्वीकार, उसे “आत्मा है” ऐसा कहनेमें आता है । और इस तरह जैसा आत्मा है वैसा स्वीकार करनेमें आये तब यह दो ही शब्दोंका वाक्य स्वयंके मरणका नाश करके, (अर्थात्) भाव मरणका नाश करके, आत्माको जीवित करता है ।

समयसार परिशिष्टमें आचार्यश्री अनेकांतके १४ कलश लिखे हैं उसमें ऐसा कहते हैं कि, ऐसे अनेकांतको प्राप्त होनेसे सम्यक्दृष्टि जीता है व कोई भी एकांतवादको ग्रहण करनेवाला मिथ्यादृष्टि भावमरणको प्राप्त करता है । वह पशु बनता है - ऐसा लिखा है । अतः तिर्यच गति में जाता है । एकांत करनेवाला तिर्यचगतिमें जाता है - ऐसी अपेक्षा है । ‘आत्मा है’ व ‘आत्मा नहीं है’ - दोनोंमें जीवन-मरण जितना फर्क है । यहाँ पर कृपालुदेव हमें दो शब्दोंमें संजीवनीका मंत्र देते हैं । सजीवन करते हैं । अपना जीवन वह कोई जीवन नहीं था । क्योंकि उसमें क्लेश व दुःख (है) । स्वयंके अस्तित्वका अस्वीकार एक भयंकर अपराध (है) । अटारह पाप स्थानकोमें मिथ्यात्वका सबसे बड़ा पाप (है) । ऐसी स्थितिमें मुरदेकी तरह मरते-मरते जीनेवाले जीवको यहाँ जीवत करते हैं । ऐसा इस मंत्रमें बल है । मंत्रका बल होता है न ! इस मंत्रमें वैसा बल है । यह ‘**आत्मा है**’ (ऐसा कहते ही) यह आत्मा - जैसे मुरदा बैठ जाये, इस तरह जीवित हो जाय, ऐसा (Power)

(बल) इस मंत्रमें है ।

यथार्थरूपसे मुमुक्षुता ग्रहण करके, वह मुमुक्षुता वर्धमान होकर उसकी उत्तम कक्षा पर पहुँचती है तब सम्यग्दर्शनकी समीपता होती है । कृपालुदेवके वचनामृतोंमें व सर्व ज्ञानीपुरुषोंके वचनामृतोंमें एक मुख्य बात - ध्यानमें लेने योग्य ऐसा एक मुख्य आशय यह है कि, वे जो भी बात करते हैं, जो कुछ भी कहते हैं, जो कुछ लिखते हैं, उसमें मुमुक्षुजीव दर्शनमोह का पराभव कैसे करें, ऐसी योजनाका एक प्रकार होता है ।

जैनदर्शनकी वर्तमान परिस्थिति को देखें तो मुख्य तीन बड़े संप्रदाय चल रहे हैं । उसमें कोई क्रियामार्ग पर व्रत, तप, उपवास आदि मार्ग पर, (तो) कोई भक्तिमार्ग पर - पूजा, भक्ति आदिमें, व कोई ज्ञानमार्ग पर माने शास्त्र अध्ययनमें प्रवृत्ति करते हुए संप्रदाय के धार्मिक लोग देखनेमें आते हैं । उसमें और ज्ञानीके मार्गमें फर्क क्या है ? विचार करने लायक यह है कि हम लोग भी पहले इसमें थे । (पहलेसे) जैन संप्रदायमें जिसका जन्म हुआ है उनकी बात है । हमारी बात नहीं है, क्योंकि ऐसा सद्भाग्य हमें प्राप्त नहीं हुआ था बल्कि जो जैन कुलमें जन्में हुए हैं, उन्हें तो शुरुसे ही जन्मसे ही 'णमो अरिहंताणं', 'णमो सिद्धाणं' ऐसे मंत्र मिलने शुरु हो जाते हैं । हम जैसेको तो ढुंढने निकलना पड़ता है । सत्य है तो कहां है ? सब जगह माथा मारें (तब) पता लगाते, लगाते लग जाता है कि, यहाँ सत्य है, (और) तभी उसके पीछे लग जानेका मन होता है ।

यह जो परम सत्य है उसकी प्राप्तिकी योजना ज्ञानीपुरुषके लक्ष्यमें होती है । कृपालुदेव ४६६ पत्रांकमें लिखते हैं, (छट्टे पेरोग्राफ में) कि "जीव अपनी कल्पनासे मान लें कि ध्यानसे कल्याण होता

है या समाधिसे या योगसे या ऐसे-ऐसे प्रकारसे, परन्तु उससे जीवका कोई कल्याण नहीं होता । जीवका कल्याण होना तो ज्ञानीपुरुषके लक्ष्यमें होता है, और उसे परम सत्संगसे समझा जा सकता है । इसलिये वैसे विकल्प करना छोड़ देना चाहिये” - माने ऐसे साधन करनेके विकल्प करना छोड़ देना । कितनी सुन्दर आज्ञा की है । ज्ञानीपुरुषके लक्ष्यमें होता है, इस बातमें क्या है लेकिन ? ऐसी कौनसी बात है जो कि ज्ञानीपुरुषके लक्ष्यमें होती है ? क्या ज्ञानी ऐसा कहते हैं कि आपको पुजा - भक्ति नहीं करना है ? क्या ज्ञानी ऐसा कहते हैं कि आपको शास्त्र नहीं पढ़ना है ? क्या ज्ञानी ऐसा कहते हैं कि आपको व्रत, नियम, संयमका पालन नहीं करना है ? ऐसा थोड़ी कहते हैं ! और वह सब तो हम करते ही हैं फिर उसमें फर्क क्या है ? यह बात समझने योग्य है । रहस्य इस बात का है कि वह जो कुछ अपने आप, अपनी कल्पनासे, जो भी साधन करता है उसमें ज्ञानगुणकी पर्यायका ज्ञानके क्षयोपशमरूपसे परिणमन होता है व चारित्रगुणकी पर्यायका चारित्रके क्षयोपशमसे परिणमन होता है, तो भी दोनोंकी जाति मिथ्या रहती है । चारित्रका क्षयोपशम होने पर कषाय मंद होता है । और जीव द्रव्यलिंगी तक मुनिदशाके निरातिचार २८ मूलगुणका पालन करे तो भी व्यर्थ जाता है, और कोई ज्ञानके क्षयोपशमवाला अंग पूर्वका - ११ अंगका अभ्यास करे तो भी व्यर्थ जाता है और शास्त्रोंके अनुसार हमारा जीव यह दोनों प्रकार अनंतबार कर चुका है । अभी तो हम इसका सहस्त्रांश भी नहीं करते हैं ।

अब विचार तो यह करना चाहिये कि क्या करनेका रह जाता है कि तिर्यच भी सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है और अंगपूर्व (व) इतना चारित्र पालन करनेवाला भी (सम्यग्दर्शन) प्राप्त नहीं करता है ।

तो इस बातका कोई ऐसा Centre Point (मध्य बिंदु) होना चाहिये कि जो छूट जाता है, इतना करने पर भी (कुछ छूट जाता है) । और यह योजना ज्ञानीपुरुषके लक्ष्यमें है । यह योजना इस प्रकारसे है कि ज्ञानीपुरुषका जो भी उपदेश है वह दर्शनमोहका पराभव करनेवाली योजनावाला होता है । और इस योजनाके निर्देशको, कृपालुदेवके वचनामृतके आधारसे हमने स्वाध्यायमें लिया था जिसकी संक्षेपमें पुनरुक्ति करता हूँ ।

पत्रांक १९५ में उन्होंने प्रवेशद्वार बतलाया कि तीनोकालमें अपने जीवका अनंत परिभ्रमण हो रहा है । उसकी चिंतना (होनी चाहिये) व यह कैसे मिते ? उसकी ऐसी चिंतनापूर्वककी छटपटाहट आये बिना मार्गका तो नहीं (बल्कि) मार्गकी दिशाका भी अल्पांशमें भान नहीं होता है । आप सबको यही खोजना है । उसके बाद दुसरा क्या करना ? यह समझमें आता है । जबकि हमें उसके पहले जो कुछ समझमें आ गया अर्थात् हम उसको पहले करने लग गये । क्या करना चाहिये ? वह इस (चिंतना व छटपटाहट) हुए बिना हमारी बुद्धिमें समझमें आ गया और हम करने भी लग गये । ज्ञानीपुरुषकी आज्ञा बाहर जाकर यह प्रवृत्ति की है । जिसे ज्ञानीपुरुष स्वच्छन्द कहते हैं जो कि मुमुक्षुकी दशामें या धार्मिक मनुष्यकी दशाका सबसे बड़ा दोष है - महादोष है । अनेक दोषोंको आमंत्रण देनेवाला दोष है ।

अतः उसके बाद उन्होंने फिर २५४ पत्र लिया । उसमें मुमुक्षुता - दृढ़ मुमुक्षुता - मात्र मोक्ष अभिलाष प्रगट होती है । वह प्रगट होनेसे जीवको अपने चलते हुए दोषोंका अवलोकन करनेकी वृत्ति हो जाती है । वहाँसे फिर स्वच्छन्दकी हानि होने के बाद जगतके पदार्थोंमें अल्प भी सुखेच्छा रहे या कहीं न कहीं (सुखेच्छाका)

अभिप्राय चोरी छिपे रह जाता है । ज्ञानीपुरुषकी पहचान नहीं होनेके कारण शास्त्र - वांचन करके गुणस्थानका नाप निकालता है कि चौथे गुणस्थानवालेकी भक्ति, उन्हें परमेश्वररूपसे कैसे भजें ? परमेश्वर तो १३ वें गुणस्थान में बिराजते हैं । इतनी सादी गिनती तो समझनी चाहिये न ! और उसमेंभी अविरतिको कैसे परमेश्वरके रूपमें देखना ? कठिन काम है थोड़ा । परन्तु परम सत्संगसे समझमें आये और पहचान होने पर समझमें आये ऐसा विषय है । तब तक बुद्धिगोचर होकर शायद नहीं भी समझमें आये, परन्तु फिरभी उस भूमिकामें आये बिना पदार्थ निर्णय हो ऐसा नहीं बन सकता ।

प्रथम सत्पुरुषकी पहचान वह पहला समकित है । स्वरूपकी पहचान (है) वह दूसरा समकित (है) । और परमार्थ निर्विकल्प सम्यक्त्वके कारणभूत इन दोनों समकितकी क्रमसे प्राप्ति होने पर परमार्थ निश्चय सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होती है । इसके अलावा सम्यग्दर्शनके अनुसंधानकी दूसरी कोई योजना काममें आये ऐसी नहीं है । ऐसी (यह) योजना सत्पुरुषके लक्ष्यमें होती है । और जो कोई मुमुक्षुजीव कैसी - कैसी, विध-विध प्रकारकी अयोग्यता - योग्यताकी मिश्र परिस्थितिमें खड़ा है उसका माप करना ज्ञानीपुरुषको आता है । अतः परम सत्संगके दौरान यथार्थ मार्गदर्शन द्वारा वह जीव जहाँ खड़ा है वहाँसे उसे उपर उठाते हैं और आगे बढ़ाते हैं, ऐसी एक (परिस्थिति) है । अतः इसका सारांश व तात्पर्य लें तो यह है कि, दर्शनमोहको कैसे मारना ? बलवान से बलवान प्रकृति दर्शनमोहकी है ।

“कर्म अनन्त प्रकारना, तेमां मुख्य आठ,

तेमां मुख्ये मोहनीय हणाय ते कहुँ पाठ ।”

(आत्मसिद्धिशास्त्र - गाथा- १०२)

(आठ प्रकृतिमें) दर्शनमोह मुख्य है । जिनेन्द्रदेवके सन्मार्गकी सुन्दरता यह है कि, साधक सबसे पहले कर्मकी सेनाका, अनन्त कर्मकी सेनाका जो राजा है उसको ही मारता है, फिर दूसरे (सब) कर्मों भागने लगते हैं । वैसे तो करणानुयोगके शास्त्रोंके अनुसार मिथ्यात्व अवस्थामें १२१ कर्म प्रकृतिका कर्मबंध होता है । वैसे तो मुख्यरूपसे १४८ कर्मप्रकृति गिननेमें आती है परन्तु आठ (कर्म प्रकृति) के भेद प्रभेदसे २७ प्रकृतितो सम्यक्दृष्टिको ही बंधती है । मिथ्यादृष्टिका उसमें chance (अवसर) नहीं है । तीर्थकर आदि प्रकृति व उसके नाम कर्मकी प्रकृतिके जो भेद है; ऐसे शुभयोगके परिणाम मिथ्यदृष्टिको नहीं होते । १२१ कर्म प्रकृतिमें से सम्यग्दर्शन होते ही ४१ प्रकृति विच्छेद जाती है । और ८० प्रकृति जो बाकी बची उनका क्षय पाँचवे गुणस्थानसे लेकर १३ वे तक क्रमशः होता है । अतः कोई गुणस्थानमें सात जाती है तो किसीमें छः जाती है, तो किसीमें ९ जाती है इस तरह ८० प्रकृतियोंका क्षय होता है । मार्गकी सुन्दरता यह है कि सबसे बड़ा दूश्मनका राजा मरता है (तब) सैन्य भागने लगता है । और राजाके साथ उनके २१ सामंत भी मरते हैं । मोक्षमार्गकी प्रथम सीड़ी पर पैर रखते ही ऐसा विजय होता है ।

करणानुयोगके शास्त्रोंमें अमुक जगह आध्यात्मकी बहुत सुन्दर बातें आती है । भगवान नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ती हुए । उन्होंने गोमट्टसार नामका करणानुयोगका महान ग्रंथ लिखा है । दिगम्बर साहित्यका वह प्रसिद्ध ग्रंथ है । षट्खण्डागम, धवल, जयधवल व महाधवल इत्यादिसे भी गोमट्टसारकी प्रसिद्धि बहुत है । उन महान ग्रंथोंका अभ्यास करनेके लिये बहुत ही क्षयोपशम चाहिये । इस गोमट्टसार पर पंडित श्री टोडरमलजी साहबने 'सम्यक्ज्ञान चंद्रिका'

नामके विस्तार से टीका लीखी है संस्कृतमें टीका लिखी है । यह टीका लिखते - लिखते उन्होंने एक महत्वपूर्ण बात की है कि, जब कोई भी जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है तब पहले पाँच लब्धिको प्राप्त होता है । लब्धि माने एक प्रकारकी योग्यता । इन पाँच लब्धिमें से चार प्रकारकी लब्धि तो अनेक बार आई है परन्तु पाँचवी जो करणलब्धि है, जो कि सम्यग्दर्शनकी अंगभूत कारण होने से पाँचवी करणलब्धि संप्राप्त होने पर अनंतर समय में (कोई समय का अंतर पड़े बिना) सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हो जाती है । इस पाँचवी लब्धिमें एक अपूर्वकरण है । करणलब्धिमें तीन करण लिये हैं । उसमें एक बीचका अपूर्वकरण है । वह विशुद्धिके अपूर्व परिणाम है परन्तु केवलीगम्य परिणाम है । जब कोई साधक मुमुक्षुको उसकी प्राप्ति होती है तब (श्री टोडरमलजी साहबने) टीका करते हुए ऐसा कहा कि भगवानने उन्हें) जिन कहा है । क्या कहा है ? सम्यग्दर्शन होनेमें अभी (बस) थोड़ा समय ही बाकी है, थोड़ी मिनिटो नहीं बल्कि थोड़ा 'समय' बाकी है, (फिरभी) उन्हें जिन कहा है । एक बार उस टीकाको देखा (है) और वहाँ उन्होंने (खुदने) प्रश्न उठाया है कि आप क्यों उन्हें जिन कहते हो ? अभी तो सम्यग्दर्शन होनेमें थोड़ा समय बाकी है । तो कहते हैं आत्माभिमुख परिणाम हो रहे हैं, सम्यग्दर्शनकी अति समीपता है । यह समझमें आ सके ऐसी बात होने पर भी जो मार्मिक बात किए हैं वह यह किए हैं कि "वह (जीव) जिनत्वको प्राप्त हुआ है इसलिये हम उन्हें जिन कहते हैं" ऐसा उत्तर दिया है वहाँ ।

कहना क्या है ? जिनत्व क्या है ? जिनपना क्या है ? कि जिसके कारण उन्हें जिन कहते हैं ? यहाँ क्यों इस बात को ली है, पता है ? कि कृपालुदेवने (समकित की प्राप्तिकी योजनामें)

सत्पुरुषमें परमेश्वरबुद्धिकी एक स्थापना की है । इसलिये ली है । क्या कारणसे उन्हें परमेश्वर कहा जाय ? कोई कारण है ? अभी तो व्यापार-धंधा करते हैं, व घर पर स्त्री और बच्चे हैं, सबको दिखे ऐसी बात है । ऐसा कैसे बने ? उन्हें परमेश्वर कैसे माने ? तो कहते हैं कि उसके पहले (भी) शास्त्रकारोंने जिन कहा है । करणलब्धिमें आया हुआ जीव है । सम्यक्प्रकारसे जिसने विषय कषायको किसी भी अंशमें जीता (है) । सम्यक्त्व प्राप्त होनेसे उन्हें जिन कहनेमें आता है ।

सम्यग्दर्शन अकेला तीन कालमें किसीको नहीं होता है । कई लोगोंको ऐसी मान्यता है कि श्रद्धा हो गई माने सम्यग्दर्शन हो गया (परन्तु) ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शनके परिणामोंके साथ सम्यक्ज्ञानके परिणाम व सम्यक्चारित्र के परिणाम अविनाभावी है । होता है, होता है, और होता है । कृपालुदेवने तो 'सर्व गुणांश वह सम्यक्त्व" ऐसा सूत्र हमें दिया है । अतः दूसरा विचार करनेकी जरूरत नहीं है । इस तरह वहाँ आचरणकी, आत्माके आचरणकी प्राप्ति (है) । शुद्धोपयोग स्वरूपमें स्थिर होने से (स्थिरताकी प्राप्ति होती है) । स्थिरता व अस्थिरता चारित्रगुणकी पर्याय होनेसे सम्यक्चारित्रको - स्वरूपाचरण चारित्रको सम्यक्दृष्टि प्राप्त होते हैं । अतः सम्यक् प्रकारसे उन्होंने आचरण भी प्राप्त किया है व विषय कषायको अमुक अंशमें जीते है, इसलिये उनको जिन कहते हैं । और जिनको परमेश्वर कहनेमें क्या हर्जा है ?

यह तो बात हुई बुद्धिकी गिनती की । हम लोग सभी बुद्धिजीवी मनुष्य हैं । हमारा उपजीवन जो है, लौकिक जीवन है उसे शारिरीक परिश्रम करके नहीं बल्कि बुद्धिके परिश्रमसे हम चलाते हैं । (यद्यपि) चलता तो है, पूर्वकर्मके योग अनुसार, परन्तु निमित्त उसका है ।

शारीरिक परिश्रम निमित्त नहीं है (परन्तु) बूद्धिका परिश्रम निमित्त है । अतः बुद्धिमें बैठे ऐसी थोड़ी बात होनी चाहिये, परन्तु उससे और थोड़ा आगे चलना होगा, कि सत्पुरुषकी वाणीमें भले ही मुमुक्षु अज्ञान दशामें है, ज्ञानकी प्राप्ति नहीं है फिरभी ऐसे जीवको मोक्षमार्ग प्राप्त हो ऐसा निमित्तत्व रहा है । ऐसा निमित्तत्व तीन स्तरके सजीवनमूर्तिमें होता है । यद्यपि भूतकालमें हुए महात्माओंको उसमें नहीं लेना है, वर्तमानमें जो सजीवनमूर्ति हो उसे लेना है । उन्होंने 'सजीवनमूर्ति' को Common Factor (सामान्यतः) में लिया है । एक तो जैन सर्वज्ञ परमात्मा, वीतरागदेव, जैन परमेश्वर, उनकी दिव्यध्वनिमें निमित्तत्व रहा है । (दूसरे) निर्गृथ भावलिंगी मुनिराज, आचार्य, उपाध्याय, साधु कोई भी हो उनकी वाणीमें यह निमित्तत्व रहा है, जिनकी वाणीमें यह निमित्तत्व रहा है जो कि तीनोंमें Common Factor (सामान्यतः) है । तीनों सजीवनमूर्तियोंमें वह Common Factor (सामान्यतः) है । कोई भी एक सजीवनमूर्तिका योग बने, तो उनकी वाणीसे मोक्षमार्ग प्राप्त होता है । अब आप ही कहो कि, जो मोक्षमार्गको प्राप्त होता है वह अधूरा बचता है कि पूरा का पूरा बचता है ? पूरा का पूरा बचता है । जो सर्वज्ञदेवकी वाणीसे मोक्षमार्ग पर चलने लगा वह संसारसे पूरा का पूरा बचनेवाला है । और जो सत्पुरुषकी वाणीसे सम्यग्दर्शनको प्राप्त हुआ वह भी पूरा का पूरा बच जायेगा । तो फिर जैसे सर्वज्ञका अनन्त उपकार मानते हैं, वैसे सत्पुरुषका अनन्त उपकार माननेमें अन्यथा क्या है ? यह एकदम न्यायसिद्ध बात है । यह बात न्यायप्राप्त है । पूरा का पूरा बचा है, और वह भी अनन्त दुःखसे व अनन्त जन्म-मरणसे बचा है, इसलिये अनन्त लाभ हुआ है । अनन्तगुण लाभ हो उसके बदलेमें अनन्तगुनी उपकार बुद्धि आये उसमें गलत क्या है ? उसमें अनुचित क्या है ? उसमें

आगे - पीछे, कम-ज्यादा तोलना कहाँ है ? क्या ! जैसे कोई तूलना कम-ज्यादा कर दी हो ? कि जैसे कोई अतिशयोक्ति कर दी हो ? ऐसा कुछ है क्या ? ऐसा कुछ नहीं है, परन्तु जिसके आत्मा पर उपकार होता है उसे ही वह समझमें आता है, और उसे ही परमेश्वरबुद्धि आती है । यह तो बात हुई Feeling Stage (अनुभव अवस्था) की । पहले जो बात कही वह तो अंकोंकी गिनती करके बुद्धिसे समझने की बात है । परन्तु मात्र बुद्धिसे समझ ले उसे ऐसा भाव प्रगट नहीं होता । समझमें आता है तब हमारे से इस बातका अनादर तो नहीं होता है इतना देखनेका रहता है । समझ वालेको इतना फायदा है कि, ऐसी बात आती है तब इसका अनादर नहीं हो जाय ।

एक मुमुक्षुने प्रश्न उठाया था । कृपालुदेवने एक जगह लिखा है, पत्रका नंबर तो याद नहीं है, कि १४ गुणस्थान जाननेका विषय है । भाईश्री ! इसका अर्थ क्या होता है ? इतना मुझे पूछा था । इसका अर्थ ऐसा है कि १४ गुणस्थान मुताबिक हम पहली कक्षामें पढ़े हैं इसलिये १४ तकके अंक तो हमें आते हैं, १०० अंक जैसे पढ़ते है वैसे । परन्तु वैसे यहाँ देखना नहीं है, कि उपरके गुणस्थानवाले की ज्यादा महिमा करना और नीचे के गुणस्थानवालेकी उसके प्रमाणमें तोल कर करके कम महिमा करना (यहाँ ऐसे नहीं लेना चाहिये) । उसने सत्पुरुषमें परमेश्वरबुद्धि स्थापित की है । ऐसा परमेश्वर तुल्य बहुमान आये तो उसमें गुणस्थानके सिद्धांतोंकी गिनती Side Track में (एक तरफ) रह जाती है । ऐसी गिनती यहाँ नहीं करनी है । वह तो सिर्फ जाननेका विषय है । उपासना करनेमें तो चौथे गुणस्थानवाले सत्पुरुषमें परमेश्वरबुद्धि कब आती है ? कि जब आत्माके उपर उपकार होता है तब आती है । अनन्त

उपकार जब होता है तब वह आये बिना नहीं रहती और उसे ज्ञानीपुरुषोंने मुमुक्षुका परमधर्म कहा है ।

जैसे परिभ्रमणकी चिंतना हुए बिना (क्रम) प्रवेश नहीं होता वैसे सत्पुरुषमें - सजीवनमूर्तिमें परमेश्वरबुद्धि आये बिना पहला समकित नहीं होता । क्योंकि आज्ञारुचि व स्वच्छन्द निरोध भक्ति और उनके वचनकी प्रतीति तथारूपमें नहीं आ सकती है । पहला समकित नहीं आया हो, उसे दूसरे समकितकी अपेक्षा रखना वह मात्र कल्पना है, भ्रमणा है, उसके सिवा कुछ भी नहीं है ।

ऐसे एक, जिसे ज्ञानीपुरुष कहें, या भगवान पुरुष कहें, उन्होंने हमें यह एक मंत्र दिया है कि "आत्मा है"। स्व-पर चैतन्यसत्ताका प्रत्यक्ष स्वभाव तेरी ज्ञानवेदना की धारामें प्रगट है । इस लक्षणसे तू लक्ष्य तक पहुँच जा । जिन्दा हो जायेगा, कैसा हो जायेगा ? जिन्दा हो जायेगा । 'है' और 'नहीं है' इसमें बहुत बड़ा आघात-प्रत्याघात आता है । Practilly देखिये आप ।

एक आदमी सो गया हो और उसमें ही आयुष्य पूरा हो जाता है । सुबह होने पर जगे नहीं तो ऐसा लगता है कि क्यों अभी तक जगा नहीं ? जैसे सोते हो वैसे ही सोते हुए दिखनेमें आये । 'है' ऐसा आभास है । वास्तवमें आयुष्य समाप्त हो चूका है, परन्तु शरीरकी स्थिति देखने पर 'है' ऐसा आभास है तब तक कोई प्रत्याघात नहीं आता । परन्तु जैसे ही आवाज दिया और नहीं उठा तो पासमें जाकर हिलाया कि ऐसा कैसे बने ? आवाज देने पर भी नहीं उठे ऐसा कैसे बने ? हिलाकर देखा तो जवाब नहीं दिया । मूँह ढल गया । सिर घूमा लिया । 'नहीं है' इतना खयाल आया - भास हुआ कि तुरंत आभास छूटकर जोरसे प्रत्याघात आता है । अभी शरीर युं का युं पडा है, दिखावमें खास कोई फर्क नहीं

पड़ा है परन्तु 'है' और 'नहीं है' उसमें बहुत बड़ा अंतर है । कितना (अंतर है) ? जीवन - मरण जितना है । यहाँ पर हम संजीवनी मंत्रका सदुपयोग करके जीवित हो ऐसी निष्कारण करुणासे कृपालुदेवने यह प्रथम पदका प्रतिपादन किया है । अब दूसरा पद लें ।

दूसरा पद है "आत्मा नित्य है" एक शब्द ज्यादा लिया है । यह पदके प्रतिपादनमें "आत्मा है" उतना यथावत् रखकर "आत्मा नित्य है" ऐसा प्रतिपादन किया है । और इस प्रतिपादनको Support (पुष्ट) करनेके लिये उन्होंने Logic (न्याय) भी दिया है, न्याय भी दिया है । कि जैसे "घटपटादि पदार्थ अमुक कालवर्ती है । आत्मा त्रिकालवर्ती है । घटपटादि संयोगजन्य पदार्थ है ।" क्योंकि व मुल पदार्थ नहीं है; वे संयोगजन्य पदार्थ है । संयोगका वियोग निश्चित है । "आत्मा स्वाभाविक पदार्थ है" आत्मा कोई संयोगसे, तत्वके मिश्रणसे उत्पन्न हुआ पदार्थ नहीं है, स्वाभाविक पदार्थ है । "क्योंकि उसकी उत्पत्तिके लिये कोई भी संयोग अनुभव योग्य नहीं होते " किसी भी प्रकारके संयोगसे आत्मा नामके जीव नामके नये पदार्थकी उत्पत्ति कर सके, ऐसा अनुभव कहीं पर भी नहीं हो सकता । ऐसा कुछ कर भी नहीं सकते और अनुभव भी नहीं हो सकता । वरना तो आत्मा बना बनाकर अनुभव करने लगे परन्तु ऐसा कभी नहीं बन सकता ।

"किसी भी संयोगी द्रव्यसे चेतनसत्ता प्रगट होने योग्य नहीं है" आत्मा है, उसका जो अस्तित्व है, आत्माके अस्तित्वको नया बना सके, घड़ सके, रचना कर सके या और कुछ कर सके ऐसा कभी नहीं बन सकता । ऐसा अभी तक नहीं बना है और अंध विश्वाससे ऐसा मानना भी नहीं चाहिये कि, भविष्यमें कोई बनायेगा

तो ? इस विज्ञानको समझनेवालेको ऐसा अंधविश्वास नहीं होता है । विज्ञान है वह अंधविश्वासको नहीं मानता । "इसलिये अनुत्पन्न है ।" स्वाभाविक होनेसे अनुत्पन्न है ।

"असंयोगी होनेसे अविनाशी है, क्योंकि जिसकी उत्पत्ति किसी संयोगसे नहीं होती, उसका किसीमें लय भी नहीं होता ।" इतना Logic (न्याय) कोई भी सामान्य समझवाले मनुष्यको भी बुद्धिगम्य होकर इसका स्वीकार हो सके ऐसा है ।

कृपालुदेवके वचनोंकी विशेषताका विचार करते हुए उनके प्रति बहुमान वृद्धिगत हो जाय ऐसा है । जैसे - जैसे विचार करें, जैसे-जैसे उनके वचनोंका परिचय करनेमें आये, वैसे वैसे उनके प्रतिकी बहुमानकी Degree (मात्रा) बढ़ती चली जाय ऐसा है । विशेषता यह है कि वे सादी (सरल) भाषामें प्रतिपादन करते हैं, न्यायसे समझाते हैं कि जिससे सामान्य आदमी भी समझ सकता है । कोई ज्यादा शास्त्र को नहीं पढ़े हो, शास्त्राभ्यास नहीं हो तो भी समझ सकता है । चौथी कक्षा तक पढ़ा हो ऐसा गाँवका गवाँर आदमी भी समझ सकता है । अनपढ़ आदमी भी समझ सके ऐसी बात है । और रहस्य उतना भरा है कि बड़े बड़े विद्वानोंको भी हाथ नहीं लगे और खो जाय ऐसा है । भाषा सादी, समझमें आये ऐसी और रहस्य उसमें गंभीर से गंभीर, और इतना गंभीर कि इसका परमार्थ है कि, जो वहाँ तक पहुँचे उसका संसारसे छूटकारा हो जाय । अरे ! निवेड़ा आ जाय ऐसी विशेषता उनके वचनोंमें हैं । तो हम थोड़ा उसका इस पहलूसे विचार करें ।

शब्दार्थ व भावार्थ समझमें आये ऐसा है इसलिये हम उसके लिये ज्यादा समय नहीं लेंगे । और अगर ज्यादा समय लेंगे तो हमारी समयकी मर्यादाके कारण पूरे पत्रके स्वाध्यायके लिये समय

नहीं रहेगा । इतना लक्षमें रखते हुए यहाँ दूसरे मंत्रको पारमार्थिक दृष्टिकोणसे थोड़ा विचारमें ले ले । छः के छः सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेके ही मंत्र हैं ।

“आत्मा नित्य है” इस बातको कृपालुदेवने क्यों लिया ? आत्मामें तो बहुतसी विशेषताएँ हैं । विचार करने लायक एक प्रश्नको ले ले कि आत्मामें अनंत गुणधर्म हैं, उसमेंसे इन छः पदकी रचनामें “आत्मा नित्य है” ऐसा क्यों लिया ? विचार करना पड़े ऐसा प्रश्न जरूर है, बुद्धिवाले को तर्क हो सकता है । जैसे आत्मामें अनंत गुण, उसमें स्वभाव होने पर भी प्रथम मंत्रमें आत्माको चैतन्यसत्तावाला Define (निर्देश) किया है । Specify (उल्लेख) किया है । तो उसका कारण यह है कि (आत्माको) पहचाननेके लिये दूसरा कोई लक्षण या दूसरा कोई धर्म काममें नहीं आता ।

इसका बहुत ही सुन्दर Logic (न्याय) पंडित जयचंद्रजीने श्री समयसारजीकी गाथाएं व कलशके उपर जो भावार्थ लिखे हैं उसमें शेष के ४१५ गाथाके उपर श्री अमृतचंद्राचार्यकी टीकाके बाद जो कलश है, जो कि क्रमसे २४६ नंबरका है, उस कलशके भावार्थ में बहुत अच्छा Logic (न्याय) दिया है । कि यह (समयसार) शास्त्रमें आचार्योंने आत्माको ‘ज्ञानमात्र’ ही क्यों कहा ? आत्मामें तो अनंत गुणधर्म है और कोई भी गुण छोटा-बड़ा हो ऐसा तो है नहीं । सभीकी अपनी-अपनी अनंत शक्तियाँ हैं । फिरभी ‘ज्ञानमात्र’ कहने के पीछे परमार्थ क्या है ? रहस्य क्या है ? आत्माकी पहचानके लिये एक ही गुण काममें आये ऐसा है । उसके अलावा बहुभाग दूसरे गुण तो साधारण है व कुछ एक असाधारण है पर ज्ञान (गुण) एक (ही) ऐसा स्वपरप्रकाशक होनेसे उसके द्वारा आत्मा की पहचान हो सकती है । और उसकी चर्चा श्री अमृतचंद्राचार्यदेवने

परिशिष्टमें उठाई है । वह तो विस्तारवाला विषय है अभी हम उसे वहीं समाप्त करके कृपालुदेवकी विचक्षणता का विचार करते हैं । पहले मंत्रके प्रतिपादनमें उन्होंने, आचार्योंने व ज्ञानीयोंने जो अनुभवसिद्ध बातें लिखी है, वह बात स्वयंने भी लिखी है । और दूसरे मंत्रकी जो बात है उसमें दूसरे अनंत गुणधर्मोंको छोड़कर नित्यता को लिया है ।

नित्यता व अनित्यता वह धर्म है । नित्यता है वह द्रव्यका धर्म है, और अनित्यता है वह पर्यायका धर्म है । According To Science (विज्ञानके अनुसार) आत्मा नामका जो पदार्थ है उनके जो त्रिकाली गुण व शक्तियां हैं वे उनके कायम रहने वाली Properties (सम्पत्ति) हैं । Properties Of The Substance.साइन्स की परिभाषामें उसे क्या कहते हैं ? Properties Of The Substance - वस्तुकी संपत्ति, Property माने संपत्ति जो कि कायम वैसी की वैसी Intact रहती है । अनंतकाल पर्यंत केवलज्ञानका इस्तेमाल हो तो भी सर्वज्ञ शक्ति वैसी की वैसी ही रहती है । (कोई हानि नहीं)उसमें कोई फर्क नहीं पडता । No Depreciation.

इसके अलावा आत्माका जो बंधारण है - द्रव्य, गुण, पर्यायात्मक, प्रवचनसारकी ९३ नंबरकी गाथाकी व्याख्या के अनुसार - प्रवचनसारके ज्ञेयतत्त्व प्रज्ञापनकी यह पहली गाथा जो ९३ नंबरकी है उसमें पदार्थको द्रव्य, गुण, पर्यायात्मक (कहा है) । आत्माका बंधारणीय रूपसे (Constitution Of The Substance) प्रतिपादन किया है । कु न्दकुन्दाचार्यदेव वहाँ एक पारमार्थिक बात करते हैं । "पज्जयमूढा ही परसमया ।" पर्यायमूढ वह परसमय है । द्रव्य, गुण, व पर्याय उसमें तीसरा पद पर्याय है । पर्यायकी बात करते हुए पर्यायमूढ वह परसमय है (ऐसा कहा है) ।

अब हम science विज्ञानको देखें तो विज्ञानके विद्यार्थी को जैन दर्शनमें बहुत मजा आये ऐसा है, क्योंकि उसका प्रतिपादन ही वैज्ञानिक है । द्रव्यके अनन्त गुण है व धर्म हैं । हर एक गुणके भी अनन्त धर्म है व पर्यायके भी पर्यायाश्रित अनन्त धर्म हैं । उन धर्मोंको Characters (विशेषता) कहनेमें आता है । विज्ञानकी भाषामें उसे Characters (विशेष धर्म) कहते हैं । सादी भाषामें जिसे हम धर्म कहते हैं । धर्म इसलिये कि वे भावको धारण करते हैं । अब नित्यता जो है वह द्रव्य, गुणका धर्म है, पर्यायका धर्म नहीं है । पर्यायका धर्म अनित्य है । सापेक्षरूपमें लें तो द्रव्य, गुणका धर्म नित्य है व पर्यायका धर्म अनित्य है । पर्याय नित्य नहीं है । कोई भी पर्याय नित्य नहीं है । केवलज्ञानकी पर्याय समय...समय..समय...समय...होकर सादि अनन्तकाल वर्तती है । है तो एक सरीखी, परन्तु समय...समय...की ही पर्याय है ।

यहाँ पर कृपालुदेवने भी द्रव्य, गुणको अनन्त धर्मोंमें से नित्यताको क्यों लिया है ? कि प्रवचनसारकी ९३ वी गाथामें 'पर्याय मुढ़ ते परसमय' कहा है । परसमय माने अन्यमतवाला । यहाँ समय माने मत । स्व-समय वह जिनमत है और पर-समय वह अजैन मत है । भगवान के अभिप्रायसे जुदा पड़नेवाला जीव है । जिनेन्द्र परमेश्वरके, जैन परमेश्वरके अभिप्रायसे - मतसे अलग पड़नेवाला जीव वह अजैन । तो कहते हैं कि पर्याय मूँढ़ माने क्या ? कि संसारमें प्रत्येक जीव जो कि मिथ्यादृष्टि हैं उन सबका Common Factor (सामान्य स्वरूप) "मैं नहीं हूँ" - अतः अपने त्रिकाली अस्तित्वका स्वीकार नहीं है । तो फिर वे अपने स्वरूपका स्वीकार कैसे करते हैं ? "आत्मा है" ऐसा स्वीकार तो करता है । तब कहते हैं कि मैं पर्याय जैसा व पर्याय जितना हूँ, तथा जितना अनुभव करता

हूँ उतना, व उतना ही अपनेको स्वीकार करता हूँ । अपने त्रिकाली अस्तित्वको ग्रहण किये बिना अनित्य अस्तित्वको ग्रहण करनेवाला जीव पर्याय मूँढ़ - महा मूँढ़ है । अतः द्रव्यदृष्टि वह सम्यक्दृष्टि और पर्यायदृष्टि वह मिथ्यादृष्टि ऐसा हमारा आध्यात्मिक सिद्धान्त है ।

सिद्धान्त बोधके पाँच भेदका विचार करने लायक है । चारों अनुयोगमें, उस अनुयोगके अनुसार चार प्रकारके सिद्धान्त है । करणानुयोगमें करणानुयोगके चरणानुयोगमें चरणानुयोग के द्रव्यानुयोगमें द्रव्यानुयोगके प्रथमानुयोग में प्रथमानुयोगके सिद्धान्त है । उसके अलावा उन चारों अनुयोगमें अध्यात्म होने के कारण अध्यात्मके अपने भी कुछ सिद्धान्त है और उस सिद्धान्तोकी कक्षा सर्वोत्कृष्ट हैं । और चारों अनुयोगमें उसकी संकलना है । गणधरदेवने उनको संकलित करते हैं । और अध्यात्म को चारों अनुयोगका Extract (नियोड) मक्खन कहें तो ऐसा ही है और हमें उसको निकालना चाहिये । वह निकालनेका विषय है, मक्खन तो छाछ को विलोकर निकालनेकी चीज है ।

“माखण था सो विरला खाया, छाशे जग भरमाया,

अबधू नट-नागरकी बाजी, क्या जानें ब्राह्मण-काजी”

यह हिन्दु-मुसलमानका विषय नहीं है । आनंदघनजी कहते हैं कि जैनोंके (सिद्धान्तोका) विषय कोई विशिष्ट प्रकारका है । ऐसा जो मक्खन है वह परमार्थ तत्त्व, अध्यात्मतत्त्व है । और इस छः पदमें कृपालुदेवका जो भी मार्मिक उद्बोधन है वह अध्यात्म के दृष्टिकोणसे (View Point) से है । “आत्मा नित्य है” ऐसा क्यों लिया ? दूसरे कोई पर्याय धर्मकी बात नहीं करते हुए द्रव्य, गुणके अनन्त धर्मासे नित्यता की बातें क्यों की ? चर्चा तो हमारी यह

चलती थी ।

पर्यायमूढ (जीव) अनित्यतामें मूँढ़ हो चूका है उसे वहाँसे बाहर निकालकर सम्यग्दर्शन - द्रव्यदृष्टि करानी है इसलिये, अनित्यताके अनुभवको छुड़वानेके लिये (नित्यताकी बात ली है) । अनित्यताका सर्वस्वरूपसे अनुभव करता हुआ जीव कैसी-कैसी भूल करता है ? मात्र विभाव पर्याय जितना ही आत्माको मानता है । क्योंकि स्वरूपको चूका है न ! इसलिये पूरा विभावमें आया । अपने स्वरूपको चूका, नित्य स्वरूपको चूका इसलिये पूरा का पूरा विभावमें आया है । अतः जितनी विभाविक पर्यायें होती है उसमें अपनत्व करता है । इसलिये राग-द्वेष-मोह इत्यादि कर्मजनित ऐसी जो मनुष्य, तिर्यच, देव, नारकी उसमें जो पुरुष, स्त्री, नपुंसक लिंग आदि जो भी कर्मजनित अवस्थाएँ है उसमें मैं ऐसा हूँ, इतना ही हूँ ऐसा अनुभव करता है । और जैसे ही देहका संयोग छूटता है, मनुष्य आयु पूरा होता है तब कैसा रोना-धोना शुरु होता है ? यह किसीको समझानेकी जरूरत नहीं है । सभीको प्रत्यक्ष अनुभवगोचर है । अतः जीव पर्यायदृष्टि होनेसे परसमय-मूँढ़ व मिथ्यादृष्टि है ऐसा जो श्रीगुरुका कहना है, ऐसा जो श्रीगुरुका वचन है, उस वचनको हमें अपने अनुभवसे स्वीकार करना है । क्या हमें ऐसा अनुभव होता है ? अगर होता है तो उतना और मात्र उतना ही हम आत्माको मानते हैं । जब-जब जैसा राग, जैसा विकल्प होता है, जैसा विभाव होता है तब उतना का उतना, पूरा का पूरा तल्लीन हो जाता है ।

त्रिकाल अस्तित्व धारण करनेवाले ऐसे आत्माको एक समयकी पर्यायमें कितनी घुटनका अनुभव होता होगा !! हम पांच या छः फिट लंबे हो और हमें ढाई फिटकी छोटी पेटीमें बंध कर दें

(तो कितना घुटन महसूस हो ?) ये देखो न ! कई बार ट्रेनमें भीड़में थोड़ेसे फंस जाते हैं तब कितनी अकुलाहट होती है ? जब ऐसा है तो त्रिकाल जिसका अस्तित्व है उसे एक समयकी पर्यायमें बंध होना पड़े तो उसकी क्या दशा हो ? अतः ज्ञानीपुरुषोंने कहा है कि, मिथ्यात्व अवस्थामें अनन्त दुःख है । परन्तु जीवको उसकी आदतसी हो चुकी है । और जीवकी सहन करनेकी शक्ति भी अनन्त है इसलिये पता नहीं लगता परन्तु है तो अनन्त दुःख यह बात गणितसे भी नक्की हो सकती है ।

अपना अस्तित्व त्रिकाल होने पर भी समय समयके अस्तित्वमें अपनत्व करता हुआ यह जीव, और वह भी विभाव पर्यायमें अपनत्व करता हुआ यह जीवको अनादिसे इस तरह परिणमन करनेकी आदत सी हो चुकी है, उसे कृपालुदेव वहांसे उठाते हैं ।

फिरसे मूल मूद्दे (Point) पर एकबार ध्यान खिंचता हूँ । यह सब बातें दर्शनमोहको मारने के लिये हैं । एक एक बातका अगर यथार्थरूपसे स्वीकार हो तो फर्क क्या पड़ेगा हमारेमें ? हमारी साधनामें हमें क्या लाभ होगा ? कि दर्शनमोहका अनुभाग टूटेगा । अनुभाग माने फलदान शक्ति । अनुभाग शास्त्रिय शब्द है । दर्शनमोहकी जो ताकत है अनन्त संसारमें परिभ्रमण करानेकी उसके उपर प्रहार होता है । वह कमजोर होता है, वह बीमार पड़ता है और फिर मरता है । कोई भी शक्तिशाली आदमीको सीधा नहीं जीत सकते बल्कि योजनाबद्ध रूपसे मारना हो ते पहले उसे कमजोर ही करना पड़े - बादमें ही मरेगा । यह एक बौद्धिक स्तरका विषय है । ज्ञानीयोंकी भी यही योजना है ।

दर्शनमोहकी मंदतामें पदार्थ निर्णय होता है और दर्शनमोहके अभावमें सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होती है । यह सिद्धांत दर्शनमोहको

अनुसरते हुए हैं । अतः ज्ञानीयोंके उपदेशकी, ज्ञानीयोंके वचनोंकी, ज्ञानीयोंकी योजनाकी यही विशेषता है कि, संसारमें परिभ्रमण करते हुए जीवको पहले दर्शनमोह कैसे मिटे ? इसके लिये उसकी समय व शक्तिका खर्च कराते हैं । यहाँ पर इस तरह दर्शनमोह को कमजोर करके मारे वहाँ तक ले जानेकी कृपालुदेवकी योजना है । क्योंकि मुमुक्षुजीवके पास, संसारीजीवके पास, बहुत ही मर्यादित शक्ति व बहुत ही मर्यादित समय है । ५०० रुपियेकी तन्हखा वाला अगर ४०० रुपियेके जुते सिलवाये तो रोटीकी तकलीफ पड़ जाय । एक महीना ५०० रुपियेमें कैसे निकालना ? उसको तो ४० रुपियेके चंपल पहनना वाजिब है, कि जिससे ४६० रुपियेमें (महिना भर) रोटी तो खा सके ।

इस तरह जो मुमुक्षु आत्मा है उसके पास शक्ति भी बहुत कम है क्योंकि शक्तिका तो चतुर्थ गुणस्थान के पीछे गुण प्रगट होने के बाद तैयारी होता है । अभी तो उसके पास बहुत मर्यादित शक्ति है । उसको दूसरे-दूसरे रास्ते पर चढ़ानेका काम मूलसे जिसको ज्ञान नहीं है ऐसे धार्मिकक्षेत्रमें (उपदेशक कहलानेवाले) जीव करते हैं । ज्ञानी ऐसा नहीं करते हैं । ज्ञानी उसका दर्शनमोह कैसे कटे वह देखते हैं । उसका दर्शनमोह कहाँ तीव्र होता है ? उसका वह अभ्यास (प्रयोग) करके बताते हैं और वहाँसे उसको छुड़ाते हैं । वह तो व्यक्तिगत मार्गदर्शनका विषय हुआ । अभी यहाँ पर तो समष्टिगत मार्गदर्शन चल रहा है ।

सभी जीव पर्यायदृष्टिवाले हैं । पर्यायमें मूँढ़ हुए हैं । पर्यायके अंदर फंसे हुए हैं, रुके हुए हैं । और "आत्मा नित्य है" ऐसा कहते हुए उसकी पर्यायबुद्धिके उपर प्रहार कर रहे हैं । उसके मिथ्यात्व पर प्रहार करते हैं । कहाँ प्रहार करते हैं ? कि मिथ्यात्व

पर, दर्शनमोह पर प्रहार किया है । अतः यह दूसरे पदका परमार्थ है वह मिथ्यात्वको तोड़नेके लिये एक महामंत्रके रूपमें है । इस तरह कृपालुदेवने स्वयं Logic (न्याय) तो दिया है । इसमें उनके प्रतिपादनकी गंभीरता व पारमार्थिक दृष्टिकोण क्या है ? इतना ही हम विशेषरूपसे विचार करें, विचार कर सकें व ग्रहण कर सकें तो अवश्य ही हमें उस दिशामें आगे बढ़नेकी सुझाव आ सकती है । इस तरह "आत्मा नित्य है" यह दूसरे पदका परमार्थ है । तीसरे पदका स्वाध्याय दोपहरके स्वाध्यायमें करेंगे । अभी समय समाप्त होता है ।



परमार्थको पानेमें जीवको अपार अंतराय है। कोई भी भूमिकामें निर्विघ्नरूपसे आगे बढ़नेमें सत्संग जैसा दूसरा कोई साधन नहीं है। इसलिये सत्पुरुषके संगको अपूर्व जानकर आराधन करना और सत्पुरुषके वियोगमें शुद्ध अंतःकरणसे मात्र परमार्थको चाहनेवाले ऐसे सच्चे मुमुक्षुओंके संगमें रहना, जिससे असत्संगसे बच सके। इस कालमें सत्पुरुषका संग तो अत्यंत दुर्लभ है, परन्तु मोक्षार्थीका संग भी दुर्लभ जानकर, उसका उपकारीपना जानकर, दासत्वभावसे रहना। ऐसा दासत्व स्वीकारना वह परमार्थ प्राप्तिकी परम योग्यता का द्योतक है। ज्ञानीपुरुष भी ऐसे अभिप्राय का सेवन करते हैं जो मोक्षार्थीको बोधका निमित्त है। परसंगके योगसे जीव भूला हुआ है वह विस्मृत करने योग्य नहीं है। (श्रद्धेय पू. भाईश्री)

प्रवचन - ४

दि-२९-७-१९९६ दोपहर

श्रीमद् राजचंद्र वचनामृत । पत्रांक ४९३ चल रहा है । सम्यग्दर्शनके निवासके सर्वोत्कृष्ट स्थानक जो छः पद (है उसमें) दूसरे पदका स्वाध्याय चल रहा है । “आत्मा नित्य है” आत्मा नित्य है, आत्माका जो नित्य स्वरूप है, वह द्रव्य स्वरूपसे आत्मा नित्य है । पर्यायसे आत्मा अनित्य है, और द्रव्यसे आत्मा नित्य है । अनादिकी जो पर्यायदृष्टि है उसका इसमें निषेध है और द्रव्यदृष्टि करानेका इसमें सीधा आदेश है । आत्मा नित्य है इसकी प्रतीति अगर अंतरसे आये तो जीवके परिणाममें कितना फायदा व कितने कितने बदलाव आजाय ! यह भी थोड़ा विचार करने योग्य है ।

जब आत्मा नित्य है तो आत्मामें रही गुण सम्पत्ति भी नित्य है और आत्माकी जो गुण सम्पत्ति है वह तो आत्माके सामर्थ्य रूप है । अतः आत्मा नित्य है, अनादि - अनन्त नित्य है तो उसका सामर्थ्य भी अनादि-अनन्त नित्य हुआ और इसलिये सामर्थ्य भी अनन्त है । इस प्रकार सामर्थ्य की अनंतता की प्रतीति उसमें आती है । स्वयंका अनन्त सामर्थ्य विद्यमान है, तीनों कालमें भी विद्यमान है, ऐसे स्वयंके अनन्त सामर्थ्यकी विद्यमानताका आधार, अनित्य पर्यायें व अनित्य संयोगोके आधारसे उत्पन्न हुई आधारबुद्धिका, सुखबुद्धिका अभाव करता है । और इसके कारण संयोगोके फेरफारसे या शरीरके

आवागमनसे जो दुःखकी उत्पत्ति होती थी वह बंध हो जाती है । चाहे कितनी विस्तारवाली बात हो, तत्त्वज्ञानका विस्तार तो बहुत है, इसलिये चाहे कितनी विस्तारवाली बात हो आखिरमें हमारा प्रयोजन तो हमारे सुख-दुःख के साथ है ।

अतः हमारे प्रयोजनका यहाँ अनुसंधान करे तो अनित्य पदार्थोंके आधारसे जो कुछ हमें दुःख होता है (उसका कारण) अनित्यतामें नित्यता स्थापित कर रखी है, वह है । जब कि वास्तविकरूपसे अनित्यता (अपनी) अनित्यताका प्रदर्शन कर देती है, तब हम संसारमें दुःखी होते हैं ।

हमारे प्रिय संयोगोका, प्रिय वस्तुओंका, जब वियोग होता है तब हमें दुःख होता है । आत्मा नित्य है अर्थात् मैं नित्य हूँ । अनित्य पदार्थों व अनित्य पर्यायोंके साथ मुझे, नित्य ऐसे मेरे स्वरूपको क्या लेना-देना है ? (कि) कुछ नहीं । पंचास्तिकायमें तो (आचार्यश्रीने) अपनी पर्यायको भी आगंतुक भाव गिना है । आनेवाला और जानेवाला भाव । आनेवाला व जानेवाला होनेसे आगंतुक भाव गिना है । नित्यताके पास अनित्यताकी कोई कीमत नहीं है ऐसा आध्यात्मका मुख्य दृष्टिकोण है, वह पारमार्थिक दृष्टिकोण है । इसलिये नियमसार जैसे शास्त्रोंमें तो सभी पर्यायोंको, समस्त पर्यायोंको, क्षायिकभाव, क्षयोपशम भाव, उपशम भाव (व औदयिक भाव) चारों प्रकारके भावोंको अपना नहीं गिनते हैं । एक अपना नित्य शुद्धात्म सहजात्म स्वरूप ही उपादेय है । इतनी हद तक अध्यात्मका दृष्टिकोण लंबाता है । इसका संकेत इस दूसरे पदमें मिलता है ।

Practically (वास्तविक) विचार करें तो किसी भी मनुष्य के पास अपनी जरूरतके मुताबिक पुरी सम्पत्ति हो, जीवन पर्यंत उसमें कोई कमी आये ऐसा नहीं हो तो उसको कही भी दीनता करनेका

प्रसंग नहीं बनता, अवसर नहीं आता कि उसे कहीं लंबा हाथ करके परतंत्र होना पड़े । ५०-१०० साल चलें इतनी सम्पत्ति भी जीवकी दीनताका नाश कर देती है तो शाश्वत काल चले उतनी सुख सम्पत्ति, अनन्त गुण सम्पत्ति जिसके पास हो ऐसे सम्यक्दृष्टिकी खुमारी कितनी होगी ?

वास्तवमें तो सम्यग्दर्शनके कालमें जो स्वरूपनुभव होता है, वह तो "सिद्ध समान सदा पद मेरो" वह तो स्वयंके सिद्धस्वरूपी परमात्म तत्वका साक्षात्कार है । और इस साक्षत्कारमें अपने स्वरूपकी, स्वरूपकी नित्यताकी, अनंतताकी, व अपने मुख्य प्रयोजनभूत ऐसे अनन्त व शाश्वत सुखकी प्रतीति आती है । जैसे कि मेरे प्रदेश-प्रदेशमें अनन्त - अनन्त सुख भरा है । अनन्त शांति भी भरी है, अनन्त परमानन्द भी भरा है । फिर तो जहाँ निःशंकता है वहाँ निर्भयता है व (जहाँ) निर्भयता है (वहाँ) निःसंगता हो वह सहज और अपनेआप है ।

कृपालुदेवने ८३३ पत्रमें आत्मभावना ली है । आखिर से दूसरा पेराग्राफ है, पत्रा नं. ६३२ । "जिन्होंने परमसुखरूप, परमोत्कृष्ट शांत, शुद्ध चैतन्यस्वरूप समाधिको सदाके लिये प्राप्त किया उन भगवंतोंको नमस्कार, और जिनका उस पदमें निरंतर ध्यानरूप प्रवाह है उन सत्पुरुषोंको नमस्कार । परमसुखस्वरूप शब्द पहले लिया है । अब भिन्नत्वकी भावना भाते हैं । वहाँसे शुरुआत करते हैं ।

"सर्वसे सर्वथा मैं भिन्न हूँ, एक केवल शुद्ध चैतन्यस्वरूप, परमोत्कृष्ट, अचिंत्य सुखस्वरूप मात्र एकांत शुद्ध अनुभवरूप मैं हूँ, वहाँ विक्षेप क्या ? विकल्प क्या ? भय क्या ? खेद क्या ? दूसरी अवस्था क्या ? मैं मात्र निर्विकल्प शुद्ध, शुद्ध, प्रकृष्ट शुद्ध परमशांत चैतन्य हूँ । मैं मात्र निर्विकल्प हूँ । मैं निजस्वरूपमय उपयोग करता

हूँ । तन्मय होता हूँ ।” यह आत्मभावना है । नित्य ऐसा जो आत्मस्वरूप है, उसकी भावना भाते भाते लिखते हैं कि अब विक्षेप क्या ? विकल्प क्या ? भय क्या ? खेद क्या ? या दूसरी अवस्था क्या ? ऐसी जो प्रतीति “आत्मा नित्य है” उसमें समाहित है । और तब जीव निश्चिंत होता है, सदाके लिये निश्चिंत होता है कि मेरी अनंत सुखकी सम्पत्ति मेरेमें ही है । अभी तक मुझे उसका बेभानपना था । अनित्य ऐसे संयोग - देहादि उसमें नित्यता स्थापित करनेका बहुत प्रयास किया, किसी भी तरह इन संयोगोंका वियोग नहीं हो और वैसा का वैसा बना रहे, और सुरक्षित रहे । इसकी अकुलाहटमें बहुत ही दुःख भोगा, अब किसी भी प्रकारकी सावधानी करनेका कोई अर्थ नहीं है, वह (सब) निरर्थक है, अतः इस प्रकारसे अनित्य पदार्थोंके प्रति सच्ची उदासीनता प्रगट होती है ।

जहाँ तक उदासीनताका सवाल है वहाँ तक, मुमुक्षुकी भूमिकाके प्रारम्भसे ही इस प्रकारके परिणाम शुरु होते हैं । वह कैसे ? प्रवेशकाल हमने लिया । अनन्तकालके परिभ्रमणकी (चिंतना) वेदना व तरसना (होनी) । कहिये तो ! जीवको एक छोटी चिंता खड़ी हो तो भी खाना, पीना, व सोना सब हराम हो जाता है । Income Tax (आयकर) की रेड आ जाय तो !! (अरे!) रेड आनेकी खबर आ जाय तो भी, खाता हो शीखंड, पुरी व मिष्टान रस पूर्वक खाता हो और उसमें खबर मिले तो तुरंत ही खाना छूट जाय, चिंता शुरु हो जाय । ऐसा क्यों बना कि चिंता शुरु हो गई ?

वह चिंता सामान्य बात है । जीवनमें अनेक प्रकारकी समस्याओंकी चिंतामें आदमी घेरा हुआ रहता है । आश्चर्य की बात यह है कि अनन्त जन्म-मरणकी बड़ी समस्या सामने खड़ी होने पर भी उसकी (बिलकुल) चिंता नहीं करता है । एक मृत्यु आनेका

कारणभूत ऐसी बीमारी या कुछ ऐसा प्रकार बने, केन्सर Detect (पता) हो, पता है कि यह रोग मिटता नहीं है, विश्वमें अभी तक केन्सरको मिटानेकी दवाकी शोध नहीं हुई है, (फिरभी) उसे ऐसे भाव होते हैं कि यह कैसे मिटे, कैसे मिटे ? इस चिंतासे उसे छुड़ाना चाहे तो भी छूड़ा नहीं सकते । (उसको चिंतासे छूड़ानेके लिये) दूसरे आनन्द-प्रमोद के साधन दे तो भी उसका जीव एक ही जगह पर चौंटा हुआ रहता है । ये हुआ है वह कैसे मिटे ? ये हुआ है वह कैसे मिटे ? ऐसा किजिये न ! कि Foreign में (विदेशमें) दवाकी शोध हुई है कि नहीं उसकी जांच कराईये न ! जहाँ जहाँ हमारे सम्बन्धीयों व मित्रों है । आशावादी है न ! कल ही Research (खोज) हुई हो तो वह हमें कैसे मालूम हो ? पता लगाईये न ! पता करना हमारा फर्ज है ।

इतनी चिंता, इतनी चिंता आनेवाले एक मृत्युकी इस जीव को है तो अनन्त मृत्युकी चिंता क्यों नहीं होती है ? यह सवाल अपने आपको पुछने जैसा है । और अगर यह चिंता नहीं होती है तो उसकी बुद्धिमानी कितनी ? कैसे उसे बुद्धिमान गिने ? यह सबसे बड़ी समस्या है । जीवनकी किसी भी स्तरकी समस्यासे सबसे बड़ी समस्या यह है । अनन्त जन्म-मरणकी तलवार सर पे कच्चे धागेसे बंधी लटक रही है । कब गिरेगी कुछ कह नहीं सकते । उसकी चिंता यह जीव नहीं करता हो तो सच्ची उदासीनता आयेगी कहाँ से ?

इस अनन्त जन्म-मरणकी चिंताके फलस्वरूप महा वैराग्य उत्पन्न होता है । कृपालुदेवने इस विषय पर १२८ नंबरके पत्रमें चार पेरोग्राफ लिखा है । और सभी पेरोग्राफके अंतमें लिखा है कि "महा वैराग्य उत्पन्न होता है" बार-बार वैराग्य उत्पन्न होता है । वह यथार्थ वैराग्य

है । जीवको वैराग्य अनेक प्रकारसे आता है । मुख्यरूपसे तो दुःख गर्भित आता है, परन्तु इस अनन्त परिभ्रमणके (वैराग्यमें केवल) दुःख गर्भित वैराग्य नहीं है, बल्कि उसकी समझ (है) अतः ज्ञान गर्भित भी है ।

अयथार्थरूपसे अनन्त बार वैराग्य आया । अनन्तबार साधुपना, दीक्षाआदि ग्रहण किये परन्तु अयथार्थ प्रकारसे होनेसे निष्फल गया । अब ज्ञानीके मार्ग पर (अर्थात्) अपनी (मति) कल्पनासे नहीं; ज्ञानीके मार्ग पर चलते हुए पहला कदम उठाता है वहाँ यथार्थ उदासीनता व वैराग्यकी प्राप्ति होती है । यह यथार्थ वैराग्य मुमुक्षुकी प्रत्येक भूमिकामें वृद्धिगत होता जाता है । दृढ मुमुक्षुता प्रगट होते ही वैराग्यकी डीग्री और बढ़ती है । क्योंकि बहुत ही बड़ा काम, निर्वाणपदका कार्य तेजीसे करनेकी बारी आयी (है), अब छोटी-मोटी बातोंमें रस लेकर रुकनेकी मुखता करनेके भाव नहीं रहता । इसके बाद स्वरूपकी जिज्ञासा जागृत होती है कि जिस स्वरूपके आधार से सम्यग्दर्शनसे लेकर केवलज्ञानकी पर्यायें प्रगट होती है । स्वरूपके मात्र सन्मुख होने से यह पर्यायोंकी दशा ऐसी होती है तो स्वरूप कैसा अद्भूत व आश्चर्यकारक होगा !! कि जिसके (स्वरूपके) सन्मुख होनेवाली पर्याय केवलज्ञानमें परिणमित हो जाय । अंतरसे मतिश्रुतकी अल्पतामें से अनन्त ज्ञानके प्रकाशका उद्योत हो वह स्वरूप कैसा होगा !

उस स्वरूपको मैं भूला हूँ । मेरा स्वरूप होने पर भी मुझे इसकी खबर नहीं है । मैं अनजान हूँ । मेरा निज परमात्मा मेरेमें बिराजमान होने पर भी मुझे उसका वियोग वर्तता है यह कैसी परिस्थिती है ? कि एक ही घरमें पति-पत्नी रहते हो तो भी पत्नीको पतिका मूँह भी देखने को नहीं मिले । चौबीस घंटेमें एकबार,

महिनामें एकबार, साल भरमें एकबार, जिंदगीमें भी एकबार नहीं व अनन्त जिंदगीयोंमें भी अगर देखने नहीं मिले तो ? उसका दुःख कितना होगा ? ऐसी पर्यायकी दशा है, अपने परमेश्वरका (स्वरूपका) दर्शन नहीं है । जिज्ञासाके कालमें और उदासीनता बढ़ती है । ज्ञानदशामें तो कितनी बढ़ती होगी ? इसके बाद परमात्माकी प्राप्तिका जो Process (विधि) है (भेदज्ञानका) वह हाथ लगता है । और उस प्रवृत्तिमें जीव एक लयसे, एक ध्यानसे, एक लक्ष्यसे लग जाता है, फिर उसका चित्त अन्य कहीं भी चौंटा नहीं है ।

सम्यक्दृष्टिको सहज वैराग्य होनेका बहुत ठोस (Solid) कारण यही है कि , उन्हें भिन्नता वर्तती हैं । पौद्गलिक संयोगो-देहादिसे लेकर- पंचेन्द्रियके सभी विषयोंमें उन्हें भिन्नता प्रत्यक्ष अनुभवगोचर हर एक पर्यायमें होती है । और अत्यंत भिन्नताका अनुभव होनेसे रस कैसे आ सकता है ? जहाँ अपनत्व ही नहीं रहा फिर रस कैसे आयेगा ? भाई-भाई जब तक साथमें रहते थे तब तक चिंता करते थे, परन्तु बटवारा हो जानेके बाद कोई किसीकी चिंता करता है क्या ? वही भाई दीवाला निकाले तो भी उसकी वह जाने और करोड़पति हो जाय तो भी उसकी वह जाने । हमें अब कुछ लेना देना नहीं है । भिन्न पड़ गये ।

वैसे सम्यक्दृष्टि ज्ञानी - धर्मात्माएं पूरे जगतसे भिन्न पड़ गये हैं, फिर पूरे जगतसे उदासीन रहें वह अत्यंत स्वाभाविक बात है । और वही यथार्थ वैराग्य है । काल्पनिक वैराग्य तो छूट जाता है क्योंकि उसमें कोई वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं होता । यहाँ पर तो सम्यक्ज्ञानसे उत्पन्न हुआ वैराग्य है । कैसा वैराग्य है ? स्वरूपज्ञानके आधारसे उत्पन्न हुआ वैराग्य है । और वह स्वरूप नित्य है । ऐसा स्वरूप जो कि नित्य है, उस नित्यताका जिसको

आधार मिलता है वह सदाके लिये सुखी हो जाता है ।

जब तक संसारमें जीवको अनित्य पदार्थोंकी आधारबुद्धि रहती है तब तक जीवके दुःख मिटानेका कोई उपाय नहीं है । सुखी होनेके लिये चाहे कितने भी प्रयत्न करे परन्तु कोई उपाय नहीं है । और इसे साबित करनेकी जरूरत नहीं है । इसका सबसे बड़ा सबूत पाश्चात देशोंमें रहनेवाले श्रीमंत लोगोंका है । जो लोग Multi millioners (करोड़पति) है व जो Multi billioners (अरबपति) हैं, उन लोगोंकी हालत पुछने जाना नहीं पड़े ऐसी है । वे कितने बैचेन हैं, कितने आकुलतावाले हैं यह परिस्थिति मौजूद है । और उसका कारण है अनित्य पदार्थोंमें अपनत्वके कारण जो रस उत्पन्न हुआ है वह है, दूसरा कुछ नहीं है ।

सम्पत्ति तो ज्ञानी चक्रवर्तीके पास भी कोई कम नहीं होती है । उसके आगे तो अभीके श्रीमंत लोग तो सब भिखारी जैसे हैं । (अभी के श्रीमंतोंके पास जितने हीरे होंगे, उतने तो उनके जुतेमें रत्न होते हैं । झाड़ने पर तो उतना निकलो, तो भी कहीं पर भी अपनत्व नहीं है । छः खंडका फैलावा (है) यह अभीका विश्व तो एक खंडमें आता है कि जहाँ हम आवागमन करते हैं । यह विश्व उनके आर्यखंडका एक भाग है । उतना साम्राज्य तो अभी किसीका नहीं है, इससे छः गुना लें तो उससे भी ज्यादा है । ऐसा जिनके घरमें है उन्हे ऐसा लगता है कि यह तो कुछ भी नहीं है, चार दिन की चांदनी भी नहीं है । इससे क्या खुश होना ? मेरेमें उसका अत्यंत अभाव है । बस ! कहीं भी रस नहीं आता, अंतरसे उदास है, नीरस है । क्योंकि उन्हें अपने अनन्त गुण समृद्ध ज्ञान, शांति, व सुख आदि सम्पत्तिसे लबालब भरा ऐसा नित्य-शाश्वत स्वरूपी परमात्मा अपने स्वरूपमें प्रतिसमय अनुभूतिमें,

अनुभव गोचर हो रहा है - वह शाश्वत वर्तता है । यह सब कृपालुदेव हमें 'नित्य' पदमें कहना चाहते हैं ।

तीसरा पद : "आत्मा कर्ता है ।" कैसे कर्ता है उसका तLogic (न्याय) देते हैं । कि "सर्व पदार्थ अर्थ क्रियासम्पन्न है ।" पदार्थ विज्ञानका वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया है । सर्व पदार्थ अर्थ क्रियासम्पन्न है, अर्थ (क्रिया) माने सर्व पदार्थ अपनी प्रयोजनभूत क्रिया कर रहे हैं । "किसी न किसी परिणाम-क्रिया-सहित ही सर्व पदार्थ देखनेमें आते हैं ।" सभी पदार्थोंकी कोई न कोई परिणामकी क्रिया देखनेमें आती है । यह प्रत्यक्ष है । "आत्मा भी क्रिया सम्पन्न है ।"सारा जगत क्रिया सम्पन्न है, क्रियाशील ही है । कभी भी अखबार वालेको समाचार नहीं मिले हो और अखबार कोरा रह गया हो ऐसा एक दिन भी बनता है क्या ? दुनियाके समाचार लेकर अखबार आते ही हैं ! क्यों ? घटनाएं बनती ही रहती है । पूरा जगत क्रियाशील है । एक ही अवस्थामें कोई भी पदार्थ कभी भी नहीं रहा है । अतः ऐसा हुआ और वैसा हुआ, यह चलता ही रहता है । पूरे दिनमें जो भी हुआ हो वह (अखबार) में आ जाय ऐसी उन लोगोंकी व्यवस्था होती है ।

"आत्मा भी क्रियासम्पन्न है ।" इस दृष्टांतके अनुसार अपना आत्मा भी क्रियासम्पन्न है और "क्रियासम्पन्न है इसलिये कर्ता है ।" आत्माके भावोंकी जो क्रिया हो रही है उसे हम अपने अनुभवसे समझ सकते हैं कि भाव हुआ करते हैं कि नहीं ?

क्रिया (अर्थात्) परिणामकी श्रेणी । परिणाम बदलते हैं उसका नाम क्रिया है । परिणाम तो एक अवस्था है । वह अवस्था बदलती रहती है । यह जो बदलना हो रहा है वह परिणामकी क्रिया है । और वह निरंतर चालु रहती है । सबसे ज्यादा गतिमान

कोई भी क्रिया हो तो वह पदार्थके परिणमनकी क्रिया है । केवलज्ञानके अनुसार छहों द्रव्यो जीव और जड़ परमाणुसे लेकर आकाश आदि छः द्रव्यों एक सेकन्डमें असंख्यात बार उत्पाद्-व्यय करते हैं । यानी (कि) अपने परिणामको बदलते हैं । एक सेकन्डमें कितनी बार ? लाख, करोड़, अरब बार नहीं, ये तो सब संख्यामें आता है, ये सब गणितकी संख्यासे आगे जायें तब उसे असंख्यात कहते हैं । Beyond mathematics (गणित के बाहर) । जैन दर्शनमें ही यह गणित है । लौकिकमें Mathematics में ही सब पूरा हो जाता है । अलौकिक गणितमें Beyond mathematics के बहुतसे अंक आते हैं ।

हम जो ईलेक्ट्रिक मोटर लेते हैं उसमें Revolution per minute (RPM) (गति परिमाप प्रति मिनट होते हैं) । जिसको मेशीनरी का धंधा होगा उसे पता होगा कि (मोटर) का RPM कितने तक होता है ? ज्यादा से ज्यादा गति (Speed) कितनी होगी ? ३ अंकमें, ४ अंकमें बस इससे आगे मेरी जानकारीमें नहीं है । असंख्यात बार इतने अंक रखो कि सभी अंक पुरे हो जाय बादमें बारी आये, इतनी तेजीसे जीव परिणमन कर रहा है । इतनी ही तेजीसे परमाणु परिणमन कर रहा है । और यह परिणमनशीलता वह वस्तुका स्वभाव है । अब कहिये, कौन कहाँ-किसमें माथा मारे ? (हस्तक्षेप करे) ? कोई खाली बैठा हुआ है ही नहीं । सतत, बहुत तेजीसे, सर्वोत्कृष्ट तेजीसे परिणामकी क्रिया आत्मामें भी चल रही है और सभी पदार्थोंमें चल रही है । और उस क्रियाका करनेवाला पदार्थ स्वयं है ऐसा जीवका विज्ञान है । अतः आत्मा अपने परिणामरूप क्रियाका कर्ता है । इसलिये आत्मा कर्ता है ।

“श्री जिनने उस कर्तुत्वका त्रिविध विवेचन किया है ।” त्रिविध

माने तीन प्रकारसे यह कर्तापना है । आत्मा क्रिया करता है तो कैसी कैसी क्रियाका कर्ता है ? करता है यह बात तो खुद ही करते हैं । यह बात तो नक्की हो गई । अपनी क्रिया कोई दूसरा नहीं करता है और स्वयंकी क्रिया दूसरा कर सके इतनी पहुँच किसी की नहीं है । स्वयंकी कोई दूसरे पदार्थमें पहुँच नहीं है । Total absent (पूर्णतया अभाव) है । एक पदार्थ दूसरे पदार्थकी क्रियामें Total (बिलकुल) Absent है ।

विज्ञानकी दृष्टिसे नैमित्तिक सम्बन्धोंकी जो उपस्थिति है उसे निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध कहा है । परन्तु वह दूसरे पदार्थकी मौजूदगीमें होनेवाली प्रक्रियाका सवाल है । और भौतिक विज्ञानमें भी यह बात आती है उसे क्या कहते हैं ? विज्ञानके विद्यार्थियोंको पता होगा । ऐसे पदार्थको Catalyst Agent (उत्प्रेरक द्रव्य) कहते हैं । Science (विज्ञान) में पढाई की हो उसे पता होगा Catalyst Agent (उत्प्रेरक द्रव्य) जो है वह कुछ करता नहीं है परन्तु वह हाजिर हो तो ही क्रिया सम्पन्न होती है और नहीं हो तो क्रिया नहीं होती है । उसमें Catalyst Agent (उत्प्रेरक द्रव्य) में कुछ बढ़ता नहीं व कुछ घटता नहीं ऐसी एक वैज्ञानिक व्यवस्था भी है । और उसी तरह हमारे वीतराग दर्शनके विज्ञानमें भी - वीतरागी विज्ञानमें भी इस केटलीक एजन्टके रूपमें निमित्तका स्वीकार करनेमें आया है । और इस विषय पर भी बहुत सी बातें हैं ।

कृपालुदेव यहाँ कहते हैं कि आत्माका जो अपने परिणामका कर्तापना है - उसमें जैन परमेश्वर, जिनेन्द्र परमात्माने उसे अपनी दिव्यध्वनिमें तीन प्रकारसे प्रसिद्ध किये हैं । मुख्यतः जो तीन प्रकार है उसमें पहला प्रकार है "परमार्थसे स्वभाव परिणति द्वारा आत्मा निजस्वरूपका कर्ता है ।" कृपालुदेवने पहला दृष्टिकोण परमार्थका

Apply (प्रयोग) किया है । जब जीव परिणाम करता है तो इस कर्तापनाको सर्व प्रथम पारमार्थिक दृष्टिकोणसे समझना योग्य है । या पारमार्थिक दृष्टि अवधारण करके इस कर्तापनाका अनुभव करने योग्य है । वरना जीव राग और पर पदार्थकी अवस्थाके कर्तापनेमें मिथ्यात्वको प्राप्त होगा । मिथ्याश्रद्धा, व मिथ्याज्ञानकी वृद्धि होगी । पुरा समयसार इस मिथ्या कर्तापनेके विरुद्ध जेहाद उठाया है, पुकार करता है ।

श्री कुन्दकुन्द आचार्य देवने जो श्री समयसार परमागमकी रचना की है उसमें नौ तत्त्वमें (सारे जगतमें दसवाँ तत्व नहीं है) अकर्तापनाका दृष्टिकोण अपनाया है । उसके उपरांत और दो अधिकार लिखे हैं, एक कर्ता-कर्म अधिकार व दूसरा सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार जो कि परमार्थ दृष्टिसे **“परमार्थसे स्वभाव परिणती द्वारा आत्मा निजस्वरूपका कर्ता है”** कृपालुदेवने इस एक वचनामृतमें पूरे समयसार शास्त्रका Total (टोटल) लगा दिया है । समर्थ पुरुष थे । महान परमागमोंका वांचन करके अध्ययन करके उसका तात्पर्य एक वचनमें परोसनेका उनका सामर्थ्य था । विद्वानों व पंडित सर पटक-पटक कर मरे तो भी पत्ता नहीं लगता है । ऐसे महापुरुषोंको एक वाक्यमें सारे समयसारको कहनेका सामर्थ्य होता है । (कृपालुदेवका) अद्भूत सामर्थ्य है ।

इतिहासमें ज्ञानी बहुत होते हैं, हुए हैं । हमारे लिये सभी पूज्य है । किसीको ऊँचा-नीचा गिननेका हमारा अधिकार नहीं है । परन्तु जब कृपालुदेवके वचनामृत सामने रखकर स्वाध्याय करते हैं तब ऐसे भाव आये बिना नहीं रहते हैं कि ऐसा पुरुष (पिछले ५००-७०० सालके ज्ञानियोंके साहित्य देखनेमें आये तो) देखने नहीं मिलता है । एक वचनामृतमें सारा समयसार । देखिये तो सही !!

“परमार्थसे स्वभाव परिणति द्वारा आत्मा निज स्वरूपका कर्ता है । पर्यायमें स्वभाव परिणति द्वारा निजस्वरूपकी रचना होती है ऐसा कहना चाहते हैं । आत्मा निजस्वरूपसे कोई नया जन्म पाता है, या नया पैदा हो जाता है, या नया उत्पन्न हो जाता है ऐसा कहना नहीं है । परिणामका कर्तृत्वका तीन प्रकारसे विवेचन किया है उसमेंसे यह एक प्रकार है । यह स्वभावदृष्टिका प्रकार है । यह विवेचन स्वभावदृष्टिसे करनेमें आया है । वस्तुस्थितिसे करनेमें आया है वास्तविक दृष्टिसे करनेमें आया है और इसलिये उसे परमार्थदृष्टि कहनेमें आयी है ।

इस परमार्थसे अतः परमार्थके दृष्टिकोणसे देखें तो परमार्थ शब्दका अर्थ प्रकरण अनुसार दो प्रकारसे होता है । एक तो परमार्थ शब्दसे वास्तविकता कहना चाहते हैं और दूसरा परमार्थसे निज कल्याणका हेतुभूत, निज कल्याणके Motive (आशय) से देखनेमें आये तो ऐसा जो देखनेका दृष्टिकोण है देखनेका Angle (द्रष्टिकोण) है - उसे भी पारमार्थिक दृष्टि कहनेमें आती है । और दोनो ही यहाँ लागू होते हैं ।

परमार्थसे देखें तो स्वभाव परिणतिसे परिणमन करना ऐसा ही आत्माका निजस्वरूप है । आत्मा जिस स्वरूपमें है उस स्वरूपमें (अर्थात्) स्व-पर प्रकाशक ऐसी चैतन्यसत्ताका प्रत्यक्ष गुण हमें कहा और ऐसी ऐसी अनेक गुण सम्पत्ति हमेंशा नित्य है, यह कहनेके बाद अब नये पहलु पर, नये Aspect (पहलु) पर - इस वचनामृतके द्वारा, इस पदसे हमें ले जाते हैं ।

आत्मा परिणमन कर रहा है, परिणमनशील है । और अगर आत्माके इस परिणमनको स्वभावदृष्टिसे देखें तो आत्मा स्वभाव परिणामसे परिणमन करे ऐसा ही उसका स्वभाव है । यद्यपि आत्मा

अनन्तकालसे, अनादिसे आज तक विभाव परिणामसे परिणमन कर रहा है, तो भी उसका स्वभाव तो जैसा है वैसा ही है । विभाव परिणतिसे परिणमन करना वह उसका स्वभाव नहीं है । अगर विभावसे परिणमन करनेका वस्तुका पारमार्थिक स्वरूप होता तो बहुत बड़ी विडंबना खड़ी होती, कि कभी भी किसीको परिपूर्ण स्वभाववाली सम्पूर्ण शुद्ध दशा हो नहीं सकती । कोई निर्वाणपदको प्राप्त नहीं होता । परन्तु भले ही जीवकी दशामें अनन्तकालसे विभाव परिणाम है फिर भी ऐसा स्वभाव नहीं है । और स्वभावरूप परिणमन करनेका उसका अनन्त सामर्थ्य है ।

वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे आत्माका विचार करनेमें आये तो अवस्थामें विभाव है । उसकी मर्यादा अवस्थासे आगे नहीं है । अवस्थामें जो कुछ राग-द्वेष-मोह, मिथ्यात्व, अज्ञान आदि जितने प्रकारके विभाव भाव है - असंख्य प्रकारके हैं उन सभी विभावोंकी पहुँच कहाँ तक है ? एक समयकी पर्यायमें वे पसरते हैं, उत्पन्न होते हैं व नाश पाते हैं । उत्पन्न होते हैं व नाश होते हैं । प्रति समय उसका नाश होता है । अतः किसीभी समय विभावकी उत्पत्ति बंध होकर स्वभावकी उत्पत्ति हो तो बात पुरी हो गई । अनन्त कालके अंधकारको उजाला हो जानेमें कितनी देर लगे ? ऐसा ही अज्ञान अंधकारका विषय है ।

“कर्म भाव अज्ञान छे, मोक्षभाव निजवास

अंधकार अज्ञान सम, नाशे ज्ञान प्रकाश”

(आत्मसिद्धिशास्त्र गाथा - ९८)

स्वयंको अपने स्वरूपका, स्वभावका भान नहीं है । मैं तो मेरी स्वभाव परिणतिका कर्ता हूँ । मैं कहाँ विभाव परिणतिका कर्ता हूँ ऐसा जो अपना पारमार्थिक स्वरूप है, उसका उन्हें भान नहीं होनेके

कारण विभाव होता है । श्री समयसार शास्त्रका Angle (दृष्टिकोण) इसका भान करानेका है । इसलिये सभी अधिकारमें कर्ता-कर्मका View point-Angle (विषय आधारित द्रष्टिकोण) आचार्योंने अपनाया है । और सिद्ध किया है कि आत्मा रागादि भावोंका अकर्ता है । (और) जिस अपेक्षासे कर्तापना है वह स्थापित किया है । विषय तो काफी विस्तारसे स्पष्ट किया है, परन्तु मुख्य Angle (दृष्टिकोण) इस परमार्थका है । **“परमार्थसे स्वभाव परिणति द्वारा आत्मा निज स्वरूपका कर्ता है ।”** यह समयसार परमागमका तात्पर्य है ।

फिर दूसरे व तीसरे प्रकारको कृपालुदेवने शास्त्रिय परिभाषामें समझाया हैं । सादी भाषामें इसता स्पष्ट नहीं हो सकता है इसलिये शास्त्रिय परिभाषाका यहाँ प्रयोग किया है । वरना कृपालुदेवकी शैली किसीको भी समझमें आयें एसी बहुत ही सादी, सरल व सुगम है । परन्तु यह विषय थोड़ा गहन है ।

जीवको पारमार्थिक कर्तापनेका ज्ञान-भान नहीं होनेके कारण मिथ्या प्रकारसे, मिथ्याश्रद्धा व मिथ्याज्ञानसे जो कर्तापना हो रहा है, और इस कर्तापनेके कारण (परमें) एकत्व हो रहा है कि जिसके फलस्वरूप अनन्त जन्म-मरणरूप संसार पनपता है, उसे मूलमेंसे काटनेके लिये उसका अकर्तापना परमागमोंमें स्थापित किया है । और जिस तरह जीव भूल करके कर्तापनेसे परिणमन करता है उस बातको भी स्पष्ट किया है । क्योंकि रोगाका निदान किये बिना, उसके Root cause (मूल) में गये बिना, उसका मूलसे नाश करनेका कोई वैज्ञानिक उपाय संभवित नहीं है ।

इस आत्माको अनादिसे भवरोग लगा हुआ है । बहुत पुराना Chronic disease (रोग) है । मैं डोक्टरी तो नहीं पढ़ा हूँ परन्तु थोड़ा बहुत ज्ञान है । इस परसे कहता हूँ कि डोक्टर लोग कहते

हैं कि रोगके दो Stages होते हैं । Acute (व) Chronic यह भवरोग क्रोनिक (Chronic) Stage (अवस्था) में है । भवरोग जो है वह पुराना चलता हुआ रोग है । फिर भी उसकी मर्यादा पर्याय से आगे नहीं है । आत्माके विज्ञानमें उसके जो द्रव्य-गुणरूप स्वभाव है, उसमें रोग नहीं है, रोगका अवकाश भी नहीं है । ज्ञानीपुरुषके उपदेशमें यह बात है कि नास्तिसे लें तो आत्मा मूल स्वरूपसे भव व भवके कारणोंके अभावरूप है । और यही बातको अनेकांतसे - अस्तिसे करे तो कृपालुदेवके शब्द लेने होंगे । **“परमार्थसे स्वभाव परिणति द्वारा आत्मा निज स्वरूपका कर्ता है ।**

अगर आत्माके कर्तापनेका स्वीकार करना हो तो पारमार्थिक दृष्टिसे तू इसका स्वीकार कर । व्यवहार दृष्टिसे तो बहुत उलझन खड़ी हो सकती है, परन्तु श्री जिनेन्द्रदेवने उसका फैसला कर दिया है । उसमें कोई उलझन हो ऐसा नहीं है । इसका भी स्पष्ट निरूपण किया हुआ है कि इसमें किस तरह भूल होकर कर्तापना हो जाता है । **“अनुपचरित व्यवहारसे...”** क्या शब्द लिया है ? व्यवहारदृष्टिसे आत्मा द्रव्यकर्माका कर्ता है ऐसा नहीं कहते हुए **“अनुपचरित व्यवहारसे आत्मा द्रव्यकर्माका कर्ता है”** ऐसा क्यों कहा ?

जब जब यह आत्मा विभाव परिणामसे परिणाम करता है, स्वभावको भूलकरके, तब तब नियमसे जितनी Degree (मात्रा) में-जितने भी प्रकारके जो विभाव होते हैं, उस ही प्रकारका उस कर्माका सम्बन्ध होता है, हुए बिना नहीं रहता । ऐसा एक निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध शाश्वत है । इसलिये उसे अनुपचरित व्यवहार कहा है । वह सम्बन्ध शाश्वत है । जैसे आत्मा शाश्वत है, वैसे आत्माके कुछ एक पर्यायोंके साथ अन्य द्रव्यका निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध भी शाश्वत

है । धवला शास्त्रजीमें ऐसे सम्बन्धको पारिणामिक भाव है ऐसा कहा है ।

आत्माका स्वरूप पारिणामिक भावरूप है और उसकी पर्यायोंमें निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध भी पारिणामिक भावरूप है । भले अन्य द्रव्य Catalyst Agent हो. परन्तु ऐसा सम्बन्ध हमेशा होता है । इसलिये उसे अनुपचार कहा है । उपचार नहीं कहते हुए उसे अनुपचार कहा है । अनुपचार माने ऐसा बनता है, बनता है और बनता ही है ।

द्रव्य कर्मके चार पहलु हैं । प्रदेश, प्रकृति, स्थिति और अनुभाग । करणानुयोगका विषय है । करणानुयोगका सिद्धांत है । वह कर्मके प्रकार बताता है । यहाँ उसके आगे विभावका प्रकार बताते हैं कि (जीव) जैसा विभाव करता है, वैसा प्रदेश, प्रकृति, स्थिति व अनुभागका बंध पड़ता है । उसमें घातिकर्मोंकी गिनती दूसरे प्रकारसे है और अघातिकर्मोंकी गिनती दूसरे प्रकारसे है । यह सब करणानुयोगके सिद्धांतोंका विषय है । यह विषय अभी हमारे स्वाध्यायका नहीं है ।

कृपालुदेवने अनुपचार है, ऐसा शब्द व्यवहारसे इसलिये लिया है क्योंकि इसमें दो द्रव्य आते हैं । व्यवहार दो के बीचमें होता है, पराया हो इसके साथ व्यवहार होता है । अपने लड़केकी शादीमें बापको न्योता लिखाना नहीं पड़े । सगे-सम्बन्धी लोग व्यवहार करते हैं । पिताजी अपने (बेटेको) ऐसा कहेंगे क्या ? कि तुझे कितना न्योता लिखाना ? क्योंकि उन दोनोंके बीच जूदाई नहीं है । क्योंकि बेटेकी शादी खुद कर रहा है । उसमें मा-बापको न्योता का व्यवहार करनेका नहीं होता है । जो व्यवहार होता है वह दो के बीच व्यवहार होता है । और इस व्यवहारके चार भेद हैं ।

परमागमोंमें व्यवहारके चार भेद कहे हैं । एक सदभूत व्यवहार व दूसरा असदभूत व्यवहार ऐसे दो भेद हैं । और सदभूत में भी दो प्रकारके उपचरित और अनुपचरित व्यवहार हैं और असदभूतमें भी उपचरित व अनुपचरित व्यवहारका भेद है । सदभूत व्यवहारमें जो उपचरित व अनुपचरित भेद हैं, वे द्रव्यके साथ गुण-पर्यायोंके सम्बन्धोंको लागु पड़ता है । ये सब द्रव्यानुयोगका विषय है, सिद्धांत है । और जो परद्रव्यों-अन्य द्रव्योंके साथका निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है, व्यवहार है उसे असदभूत व्यवहार कहते हैं क्योंकि उसमें इनका अभाव है ।

सदभूत माने मौजूदगी और असदभूत माने गेरमौजूदगी । एक द्रव्यमें दूसरे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे सदन्तर अभाव होने से अन्यत्वपना है । और उस परसे ही बारह भावनामें अन्यत्व भावना चली है । वह भाने योग्य है । हमने अभी ८३३ पत्र देखा था तो उसमें कृपालुदेवने पहली स्वरूपभावना ली है । "मैं सर्वसे सर्व प्रकारसे भिन्न हूँ" क्योंकि कल्पनासे जो Attachment (आसक्ति) है उसका Detachment (अनासक्ति) किये बिना ममत्व छूटेगा कैसे ? और रस छूटेगा कैसे ? और वैराग्य और उदासीनता आयेगी कैसे ? आ नहीं सकती ।

अतः जो असदभूत व्यवहार है उसमें भी उपचार व अनुपचार ऐसे दो भेद हैं । उन दोनो भेदोंका कृपालुदेव यहाँ विस्तार करते हैं । पहला भेद लिया है अनुपचरित व्यवहारसे माने असदभूत अनुपचरित व्यवहारसे । ज्यादा स्पष्ट करके शास्त्रिय पद्धतिसे लेना हो तो, अनुपचरित असदभूत व्यवहारसे यह आत्मा द्रव्य कर्मका कर्ता है ।

जब जब वह विभाव परिणामसे परिणमन करता है तब उसे

कर्म बंधता है । और व्यवहारसे ऐसे कहा जाता है कि इसने पापका बंध किया, और इसने पूण्यबंध किया । कर्मके मुख्य दो भेद किये हैं । पूण्य प्रकृति व पाप प्रकृति फिर पेटा भेद तो बहुत है । सरलसे सरल भाषामें (ऐसे कहते हैं) कि इसने पापका बंध किया, इसने पूण्यका बंध किया । ऐसा जो कहनेका व्यवहार है वह अनुपचरित है । क्योंकि जब जीव ऐसे परिणाम करता है तब अवश्य - अवश्य उसको उसी प्रकारका कर्मबंध होता है । भाव कुछ ओर करे और कर्मबंध कुछ ओर हो ऐसा नहीं बनता है । Degree to degree (मात्रा अनुसार) बंध होता है । इसलिये आत्माको कर्मका कर्ता भी कहनेमें आता है । परन्तु वह असद्भूत अनुपचरित व्यवहारसे कहनेमें आता है ।

“उपचार से घर, नगर आदिका कर्ता है” अब यहाँ असद्भूत उपचारसे घर, नगर, आदिका कर्ता है । यह मिस्त्रीने मकान बनाया, मैंने बंगला बनवाया । यह नगर राजाने बसाया । वास्तवमें आत्माकी उसमें पहुँच नहीं है परन्तु उनके इस प्रकारके भाव, इरादा, आशय, अभिप्राय देखकर ऐसा व्यवहार करनेमें आता है कि मिस्त्रीने मकान बनाया, या सेठने बंगला बनवाया या बनाया । ये सब कहने मात्र है । वास्तवमें आत्मा किसी परमाणुका कार्य करता है, ऐसा नहीं होता है । परन्तु उस कार्य होनेमें कोई Catalyst Agent (उत्प्रेरक द्रव्य) होते हैं । सभी कार्योंमें केटलीष्ट एजेन्ट होते हैं । उसके बिना जगत नहीं है । यह भी जगतका एक दूसरा सत्य है । अगर उसका अपने स्थानमें स्वीकार करनेमें नहीं आये तो मिथ्याबुद्धि हो जाय, मिथ्याश्रद्धा हो जाय । अतः ऐसा भी नहीं हो इसलिये ज्ञानियोंने, आचार्योंने, भगवंतोने ऐसी स्पष्टता की है । इसलिये आत्मा कर्ता है ।

अब यहाँ पर कृपालुदेवकी सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेकी जो छः पदकी योजना है, उसमें कहते हैं कि तुझे जो यह भवरोग लगा हुआ है उसका कारण तुम स्वयं ही हो । क्या आशय है इसमें ? पारमार्थिक आशय है । वह आशय उसमें ऐसा है कि तेरे भवरोगका कर्ता भी तू ही है तुझे किसीने परिभ्रमण कराया ऐसा मानकर तेरे अपराध से तू छिटक जाय सो बात नहीं है । अपराध तेरा है । अपराध तू ही करता है, तो उसका फल भी तू ही भोगेगा ऐसा कृपालुदेव चौथे पद आत्माका भोक्तापनेका लेंगे । इस विषय पर स्वाध्याय आगे के सत्संगमें लेंगे ।



लोकसंज्ञाका दोष अति भयंकर है । लोगोंमें स्वयंकी महत्ता होना - वही जिसकी आत्मा है, वह तदर्थ देव-गुरु-शास्त्रकी विरोधरूप विराधना सहजमात्रमें कर बैठता है । विद्धता और शास्त्रज्ञान होने पर भी मति-मूढताके कारण यह महादोष होता है । परंतु लोकसमूहको गौण करनेवाले सामान्य मुमुक्षुको ऐसी भूल नहीं होती । योग्यताका यह विलक्षणपना गहराईसे विचारने योग्य है । एवम् लोकसंज्ञा जीवको ग्रहित मिथ्यात्वमें ले चलती है, वह भी विशेषरूपसे लक्ष्यमें रखने योग्य है । जीवके परिणाममें लोकसंज्ञा मल-वृद्धि करती है और इस कारण जीव आत्मकल्याणसे दूर होता है । (श्रद्धेय पू. भाईश्री)

प्रवचन - ५

दि-३०-७-१९९६ सुबह

श्रीमद् राजचंद्र वचनामृत । पत्रांक ४९३ चल रहा है । आज गुरुपूर्णिमाका महान पर्वका दिन है । एक बात जो कि स्मरणमें है संक्षेपमें करता हूँ ।

जैसे कि कोई रोगी कोई वैद्यके पास जाता है, कुशल वैद्य (Expert Doctor) के पास जाता है जो कि शरीर विज्ञानका, तबीबी विज्ञानकी पूरी पूरी जानकारी रखता है । यद्यपि आज-कल ऐसी परिस्थिती संभवित नहीं है । सभी जगह अधूरा ज्ञान है । लेकिन अगर कोई पूरा Metabolism Manifestation (शरीर प्रक्रिया) की जानकारी रखता हो ते वैसा Expert (निष्णात) चाहे जैसा रोग हो उसे रोगमेंसे निरोगी कर सकता है । हम कल्पना करते हैं, हो नहीं वह दूसरी बात है । वैसे संसारमें परिभ्रमण करता हुआ प्राणी उसके भवरोगको समझनेवाले, उस भवरोग के कारण व उसका निदान करनेवाले आत्मज्ञानी पुरुष, उसे भवरोगसे किस तरह बचाना, व निर्वाणके पथ पर कैसे ले आना, इसकी कुशल अध्यात्मविद्याके प्रवीण हो ऐसे व्यक्ति संक्षेपमें गुरुके स्थानमें स्वीकार करने योग्य है । वे जो भवरोगको मिटाने आया है उसे अवश्य-अवश्य लाभका कारण होता है । जिसको इस रोगका भान ही नहीं है, उसे मिटानेकी गरज-दरकार नहीं है, उसके लिये तो यह चर्चा उपयोगी नहीं

है । उसके सामने तो चर्चा करना अयोग्य है ।

इस तरह गुरुको महिमासे भगवान कहनेमें आये, परमेश्वर कहनेमें आये तो वह यथार्थ ही है . क्योंकि वे भी उसी कार्यको करते हैं । तीर्थंकर परमात्मा - परमगुरु संसारी प्राणियोंको संसारसे तिराते हैं और ये गुरु भी तिराते हैं अतः एक स्थानमें रखे तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होती है । ये विषय तो आप सभीने बहुत सुना है । अपने चलते हुए विषयका अनुसंधान करें ।

तीसरा पद “**आत्मा कर्ता है**” वह चल रहा है । आत्मामें जो जो परिणाम, जो जो भाव कार्य रूपसे हो रहे हैं व सभीको अनुभवगोचर है । आत्मा प्रत्येक क्षण कोई न कोई भावरूपी कार्य कर रहा है । हमें क्षणका ज्ञान है परन्तु समय - समयका ज्ञान नहीं है । परन्तु हमारी समझमें आये ऐसा विषय है । अनुभवगोचर हो, बुद्धिगम्य हो ऐसा विषय है । अनुभवसे तो यह स्पष्ट बात है कि, हमारा आत्मा प्रति क्षण भावरूपी कार्य को कर रहा है । और इन भावोंका कर्ता आत्मा है । इस तरह सामान्यतः अपने कार्यका, अपने परिणामोका, अपने भावोंका कर्तापना स्पष्ट है, समझमें आये ऐसा है । अब ये कार्य भी अनेक प्रकारके होते हैं वह कहनेकी आवश्यकता लगनेसे कृपालुदेवने यहाँ पर उसका निरूपण किया है ।

मूल मंत्र तो है कि “**आत्मा कर्ता है**” परन्तु जब उन क्रियाओंका कर्ता - कार्योका कर्ता आत्मा है, तो कैसी कैसी क्रियाओंको व किन किन प्रकारकी क्रियाओंको वह करता है यह बात भी यहाँ पर करना इसलिये आवश्यक है क्योंकि सम्यग्दर्शन भी एक कार्य है । जो कुछ कहने जा रहे हैं वह तो सम्यग्दर्शनका निवास कैसे हो उसके संदर्भमें विषयका प्रतिपादन करते हैं इसलिये आत्मा

कर्ता है तो किस प्रकारसे कर्ता है - उसका श्री जिनेन्द्रदेवने तीन प्रकारसे विवेचन किया है । कल यह विषय चला था । संक्षेपमें फिरसे लेते हैं ।

प्रथम तो परमार्थसे, परमार्थ दृष्टिसे देखनेमें आये तो, परमार्थ दृष्टि कहो - वास्तविक दृष्टि कहो या यथार्थ दृष्टि कहो या आत्माकल्याणकारी दृष्टि कहो, उस दृष्टिसे देखें तो स्वभाव परिणति से परिणमन करनेका स्वभाव है । निज स्वरूपके परिणाम हो, स्वरूपभूत परिणाम हो, स्वभावरूप परिणाम हो उसका कर्ता है । यह आत्माका स्वाभाविक स्वरूप है । स्वभाव है वह सामर्थ्यरूप है - शक्ति रूप है और परिणाम होना वह व्यक्तिरूप है । जैसा स्वभाव है वैसी ही उसकी व्यक्ति प्रगट होती है । व्यक्ति कहें, पर्याय कहें, दशा कहें, हालत कहें (सब एकार्थमें है) । ऐसा मूल सामर्थ्य वह स्वभावका गुण है । इस दृष्टिसे अपने स्वरूपको कोई देखता है तो उसे अपने स्वभाव परिणाम चालु होते हैं । स्वभावदृष्टिसे स्वभावको देखनेसे स्वाभाविक परिणाम चालू हो ऐसा स्वभाव है ।

स्वभाव भी ऐसा है - ऐसा समझाने के लिये श्री कुन्दकुन्द आचार्यदेवने द्रव्यदृष्टिसे श्री समयसार परमागमकी रचना की है । उस शास्त्रका यह रहस्यार्थ है - परमार्थ है । स्वभावदृष्टिसे यह बात की होनेसे सर्व साधारणको यह समझमें नहीं आये ऐसा बन सकता है । यह इसलिये सम्भव है कि जगतके जीव अनेक प्रकारके विभाव व विकारी परिणाम प्रत्यक्ष तोरसे कर रहे हैं, (उसका) अनुभव कर रहे हैं, उनको ऐसा कहें कि तू यह नहीं कर सकता है, करनेका स्वभाव गुण या सामर्थ्य तेरेमें नही है, तो जल्दीसे उसे स्वीकार नहीं होगा ऐसी बात है । और हर एक बातके लिये तद्योग्य योग्यता की आवश्यकता तो है ही ।

लौकिक शिक्षामें भी ऐसा है कि पहले बालपोथीमें बैठाते हैं बादमें स्कुलमें, बादमें कोलेज तक ले जाते हैं । सीधा ही किसीको कोलेजमें बैठाया हो ऐसा एक भी उदाहरण है क्या ? ऐसा नहीं बन सकता है । ठीक वैसे ही यहां पर भी इस विषयको समझनेके लिये तथा प्रकारकी योग्यता भी आवश्यक है । भारी भोजनको हजम करनेके लिये जठर भी शक्तिशाली होना जरूरी है । टाईफोईड में से निकलनेवालेको मूँगका पानी देना चाहिये, यद्यपि मैं डॉक्टर नहीं हूँ परन्तु थोड़ी-बहुत उपर-उपरकी जानकारी रखता हूँ, उसे चार सेर घी पिलाया हुआ मैसुब का हलवा खिलाया जाय तो जरूर मर जाये । इस तरह भूमिका अनुसार उपदेशकी योजना होनेसे उपदेशका विस्तार भी बहुत है । और जब उपदेशका विस्तार ज्यादा हो तब नई उलझन खड़ी होती है कि पहले हमें क्या करना ? और इसके लिये बहुत चर्चा अभी चली । परन्तु इसमें तो गुरु बिना किसी भी तरह यथार्थ मार्गदर्शन मिले ऐसी स्थिति - परिस्थिति या व्यवस्था है ही नहीं ।

इसके लिये सीधी सरल बात तो यह है कि आत्माकल्याणकी अंतरसे भावना, अंतरकी जिज्ञासा उत्पन्न होना जरूरी है । एक बात ध्यानमें लेने जैसी है कि उपर उपरकी भावनासे या उपरकी उपरकी इच्छासे, या उपर उपरकी जिज्ञासासे कभी यह काम होनेवाला नहीं है । सरपे कफन बांधकर फिरे, सब छोड़कर पीछे लग जाये उसका काम है । पुरे संसारसे तिरना है कोई छोटा-मोटा काम नहीं है । अगर परमात्मपदकी प्राप्ति करनी हो तो उसकी तैयारी भी उसके अनुपातमें होती है न, कि कैसे भी चल सकता है ? कृपालुदेवको किसीने बीड़ी पीते-पीते प्रश्न किया कि मोक्ष कैसे हो ? ऐसा थोड़ी चले । इसके लिये तो योग्य तैयारी चाहिये । महेंगा

जेवर खरीदनेके लिये पूरे पैसे चाहिये । इसके कोई दस-बीस रुपिया काम नहीं आता । इस तरह तैयारी तो बिलकुल शुरुसे ही होती है, इसके लिये यह मार्ग है । जिसकी नीव कच्ची उसका आगेका कोई काम पक्का होनेका सवाल ही नहीं रहता है । इस दृष्टिकोणको ख्यालमें रखते हुए उपदेशके विस्तारमें से प्रयोजनभूत विषय कितना ? और उस प्रयोजनभूत विषयमें भी मेरे लिये (मेरी) वर्तमान योग्यता अनुसार प्रयोजनभूत विषय कितना ? इतनी छटनी करनेकी तैयारी स्वयंके दृष्टिकोणमें करनी पड़ती है ।

हम लोग तो बहुत भाग्यशाली है, बहुत ही बड़ा सौभाग्य हमारा है कि कृपालुदेवने इस छः पदके पत्रमें प्रयोजनभूत विषयको अलग करके हमारी समक्ष रखा है । वरना तो प्रयोजनभूत विषय दुंढने जाना पड़े । परमागमोंके महासागरमें से दुंढना पड़े कि मेरे योग्य बात कौनसी है ?

अभीका जैन दर्शनका जो जैन वाङ्मय है- जैन साहित्य है, वाङ्मय वह शास्त्रिय परिभाषा है । इस वर्तमान उपलब्ध साहित्यमें कृपालुदेवके वचनामृतमेंसे (श्रीमद् राजचंद्र) हमारी भूमिकाके योग्य प्रयोजनभूत बातें उपदेश व मार्गदर्शन पूरी मात्रामें मिलता रहे ऐसा इस ग्रंथका संकलन हमारे (परम) सौभाग्यसे हो चुका है । हमें तो जैसे कोई पकाई हुई रसोई थालीमें परोसकरके देवे इस तरहसे यह मिला है । खाना या नहीं खाना वह हमारी रुचि पर निर्भर करता है । परन्तु माल तो तैयार मिला है यह बात जरूर है ।

उसमें भी विशेष बात यह है कि, हमारे जैसे ही मुमुक्षुलोग कृपालुदेवके सत्संगमें आते होंगे । उनके परिचयमें आये होंगे और पत्र व्यवहार किया होगा । अतः मुमुक्षुकी भूमिकाके योग्य मार्गदर्शनका अनेक पहलुओंसे, अनेकरूप विस्तारसे, यह जो संग्रह हुआ है, यह

वर्तमान जैन साहित्यमें एक असाधारण व अजोड ग्रंथ है ऐसा कहा जाय तो उसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी । वरना सिद्धांत शास्त्र तो बहुत से हैं । सिद्धांतबोध के शास्त्रभी बहुत है (व) उपदेशबोधके शास्त्रभी हैं । परन्तु हम वर्तमान युगमें जी रहे हैं । १०० सालका ही फर्क है ज्यादा समय नहीं हुआ । यद्यपि इस १०० सालमें युग तो बहुत बदल गया है । बहुत Fast Life (तेजीसे जीवन) चल रही है । शायद पाँचसौ - हजार सालमें जो फेरफार हो ऐसा फेरफार इन १०० सालमें हुए होंगे । परन्तु इस फेरफारसे हमारे जीवनका सम्बन्ध नहीं होना चाहिये ।

अगर हमें आत्मकल्याण करना है, तो जगतमें जो विचित्रताएं व विपरीतताएं बढी है, विशमताएं बढी है उससे हम थोड़े दूर ही रहे, क्योंकि एक नये ही माहोलमें प्रवेश करनेको हमारे पास बहुत अच्छी सुविधा है । इसलिये हमें उसके (जगतके) साथ कुछ लेना-देना नहीं है । हमें जिससे मतलब है वह अलभ्य व दुर्लभ वस्तु हमारे समक्ष सौभाग्यसे आ चुकी है । उसका हम कितना लाभ ले सकते हैं उसके साथ ही हमारा सम्बन्ध है । इस तरह देखें तो बहुत सा पाथेय हमारे लिये उपलब्ध है ।

यहाँ पर "परमार्थसे स्वभाव परिणति द्वारा आत्मा निजस्वरूपका कर्ता है ।" आत्मा स्वभावसे दूसरा कुछ नहीं कर सकता है । समयसारजी के कर्ता-कर्म अधिकारकी ९२ से ९६ गाथा का, पांचो गाथाका सार एक पंक्तिमें समा दिया है । जैसे आत्मा शीत-उष्ण ऐसी पुद्गलकी पर्यायोंको कर नहीं सकता वैसे वहाँ आचार्यदेवने दृष्टांत लिया है कि सर्दी-गरमी, ठंडे-गरम पदार्थोंको आत्मा नहीं कर सकता है । वे पुद्गलकी पर्यायें हैं । उसे पुद्गल स्वयं करता है । आत्मा जान सकता है कि शरीरमें बुखार है । थर्मोमीटर

उसे नापता है परन्तु बुखार ज्ञानको नहीं आता है । शरीरमें रहते हुए ज्ञानस्वरूपी आत्माको बुखार नहीं आता है । और ज्ञानकी पर्यायमें उष्णता आती नहीं है । उष्णता है वह तो शरीरकी पर्याय है । जैसे आत्मा शीत-उष्ण पर्यायको नहीं कर सकता है वैसे ही आत्मा स्वभावसे विभाव पर्यायको नहीं कर सकता ऐसा वहाँ कहना चाहते हैं ।

उस बातका प्रतिपादन कृपालुदेव इस एक वचनामृतमें करते हैं कि स्वभाव परिणतिसे तो निज स्वरूपका ही कर्ता है । कर नहीं सकता है इसलिये होता है उसे विभाव कहा जाता है उसे स्वभाव नहीं कहा जाता ।

विज्ञानके कुछ एक सिद्धांत Fundamental Principals (मौलिक सिद्धांत) जिसे कहें, यहाँ Scientific Subject (वैज्ञानिक विषय) होनेसे, वैज्ञानिक विषय होने से लागु होते हैं । जैसे कि शरीरमें Resistance Power (प्रतिकार शक्ति) होता है । रोग आने पर उसकी प्रतिकार शक्ति काम करने लगती है, Active (क्रियाशील) होती है । घाव (जख्म) पड़ते ही दूसरी सेकन्डसे ही घाव भरना शुरु हो जाता है । ठीक वैसे ही आत्माकी जो स्वभाव शक्ति है वह विभावके सामने आत्माका Resistance Power (प्रतिकारक शक्ति) है और अनन्त है जब कि शरीरमें मर्यादित है परन्तु है तो तवीबी विज्ञानके सिद्धांत जैसा । वह Resist (प्रतिकार) करता है । चाहे जैसे विभाव परिणाम करनेवालेको उसका Conscious Bite करता है (अंतरआत्मा उसकी ना देता है) इसका अर्थ क्या हुआ ? कि यह तू ठीक नहीं कर रहा है । इसका क्या कारण ? अंदरसे उसका स्वभाव विरोध करता है । क्योंकि स्वभावका कार्य स्वभाव परिणतिसे परिणमन करनेका है, विभाव परिणतिसे परिणमन करनेका नहीं है । विभाव जो है,

वह तो एक रोग है, और यह रोग अवस्थाकी मर्यादामें ही रहता है, स्वभावमें आ नहीं सकता। आत्माको विभाव नामका रोग हुआ है परन्तु उसकी मर्यादा अवस्था तक है।

आत्माका जो बंधारण - Constitution - द्रव्य, गुण पर्याय है उसमें पर्यायकी मर्यादामें विभाव समाप्त होता है। उसका अस्तित्व पर्यायकी मर्यादामें समाप्त होता है, वहाँसे आगे द्रव्य-गुणमें उसका प्रवेश नहीं है। इस तरह स्वभाव है वह हमेंशा विभावसे रहित है और उसका परिणमन करनेका गुण स्वाभाविकरूपसे ही परिणमित होनेका है। विभावका निषेध करना विभाव का नाश करना (ऐसा स्वभाव है)।

पं. राजमल्लजी स्वभावके लिये एक खास शब्द इस्तमाल करते हैं। कि वह "(आत्मा) विभावका क्षयकरणशील है" शील माने स्वभाव। कोई भी विभावका क्षय करनेका जिसका स्वभाव है, ऐसा आत्माका सामर्थ्य है उसे पहचानना। परिचय करके उसकी पहचान करना क्योंकि परिचयके बिना पहचान नहीं हो सकती है। और पहचानकर उसमें लीन होना - एकार्ग होना वह साधना और आराधनाका विषय है।

अतः प्रथम यह बात स्थापित की है। प्रतिपादन में भी कृपालूदेवकी विचिक्षणता है कि पहले बात स्वभाव परिणामकी करते हैं। बादमें फिर जो प्रचलित बातें हैं - उनका शास्त्रिय दृष्टिसे माने वास्तविक दृष्टिसे स्पष्टिकरण दिया है। अब जो पूण्य-पापके कर्म बंधते हैं उसका क्या? तो कहते हैं कि वे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे चल रहा है। आत्माके अस्तित्वमें वे नहीं है।

ऐसा कहा जाता है कि निज परिणामसे आत्मा जो कर्म बंधन करता है व आत्माके साथ एक क्षेत्रावगाहसे जुड़े हुए रहते हैं। सम्बन्धको प्राप्त होकर रहते हैं, उसे कर्मबंध कहते हैं, और जितने

काल पर्यंत-समय पर्यंत रहते हैं उसे स्थिति बंध कहते हैं । और जिस प्रकार का कर्म होता है उसे प्रकृतिबंध कहते हैं, जितना समूह होता है उसे प्रदेशबंध कहते हैं । जितने परिपक्व कालमें फल देनेकी शक्ति है उसे अनुभागबंध कहते हैं । इस तरह एक बंधके चार पहलु हैं । करणानुयोगका यह विषय है ।

आत्मा कर्म बांधता है और आत्माके प्रदेश-प्रदेशमें कार्मण वर्गणाके अनन्त परमाणु बंधे हुए हैं इसका मतलब क्या ? कि आकाशके एक क्षेत्रमें वे दोनो हैं । इसलिये उसे आत्माके क्षेत्रमें है ऐसा कहनेमें आता है । अमुक काल पर्यंत जहाँ-जहाँ आत्मा क्षेत्रांतर करता है व उनके साथ रहते हैं परन्तु आत्माके प्रदेशमें Physically वास्तवमें वे प्रवेश करते हैं ऐसा नहीं बनता है । जिसे अवगाहन कहते हैं ।

कृपालुदेवने अवगाहनका बहुत सुन्दर अर्थघटन किया है - असाधारण अर्थघटन किया है । एक क्षेत्रमें अपने स्वरूपका त्याग किये बिना (दोनों रहते हैं) । आकाशके एक क्षेत्रकी अपेक्षासे एक क्षेत्र है क्योंकि दोनों आकाशके एक ही प्रदेशको Occupy करते हैं - रोकते हैं । जो आत्माके प्रदेश आकाशके प्रदेशको रोकता है उसी प्रदेशको कर्मके परमाणु भी रोकते हैं । इसलिये उन्हें एक क्षेत्रावगाह सम्बन्ध कहा है । यह व्यवहार सम्बन्ध है । निश्चयसे तो अपने अपने प्रदेशमें जीव और पुद्गल परमाणु रहते हैं । पुद्गल परमाणुमें कोई ऐसी पोल (अवकाश) नहीं है कि जिसमें आत्माके प्रदेश जा सके । वैसे ही आत्मा चैतन्यघन - घनिष्ट स्वरूपमें है, प्रदेशोंमें भी ऐसी घनिष्टता है - कोई ऐसी पोल (अवकाश) नहीं है कि पुद्गल इसमें प्रवेश कर सके । संयोग सम्बन्ध है जो कि अमुक काल बाद वियोगको प्राप्त होता है । इसलिये असद्भूत

है । और ऐसा हुए बिना रहता नहीं है ।

जीव पुण्य-पापके परिणाम करें और उसे तथा प्रकारका प्रकृति, प्रदेश, अनुभाग, स्थितिका बंध नहीं हो ऐसा कभी बनता नहीं । इस जगतमें ऐसी ही कोई कुदरती व्यवस्था है किसीकी बनी बनाई नहीं है । दूसरे लोग ईश्वरको कर्ता मानते हैं, जैन दर्शन ईश्वर कर्तृत्वमें नहीं मानता है परन्तु यह वस्तु व्यवस्था है । वैज्ञानिक परिस्थिती - जड़ (और) चैतन्य पदार्थकी जो है उसका ज्ञान करनेका है ।

प्रसिद्धरूपसे ऐसा कहा जाता है कि इन्होंने मकान बनाया, क्रागज बनाये, मिट्टी बनाई, यह किया और वह किया । बाग बनाया, रस्ता बनाया, रेल बनाई ये सब उपचार की बात है । उपचार इसलिये कहनेमें आता है क्योंकि जब जब ऐसे घर, नगर आदि पुद्गलके कार्य होते हैं तब किसी न किसी जीवका योग व उपयोगका निमित्त होता है । इसलिये उस जीव पर उपचार किया जाता है । जिस जिस जीवका उस प्रकारका उपयोग, इच्छा व मन-वचन-कायाके योगका निमित्त पड़ता है, उस उस जीव पर उपचार किया जाता है कि दर्जीने कोट सिलाई करके दिया । मेरा कुर्ता सिलाई करके दिया । मेरा कपड़ा सिलाई करके दिया । यद्यपि ये सब उपचरित बातें हैं ।

जीवकी कार्यक्षेत्रकी मर्यादा अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावमें समाप्त होती है । और उसके आगे उसकी कार्यक्षेत्रकी कोई मर्यादा नहीं है । जड़ परमाणुमें उसका कार्यक्षेत्र नहीं है, फिर भी जीव कार्य करता है ऐसा कहना उपचार है । इस तरह कृपालुदेवने उपचार शब्द ईस्तमाल करके विषय को स्पष्ट किया है ।

चौथा पद "आत्मा भोक्ता है" स्पष्टीकरण देते हैं कि "जो

जो कुछ क्रियाएं हैं व सब सफल हैं" कोई भी आत्माका कोई भी भाव निष्फल नहीं होता, उसका फल होता है, होता है और होता ही है । फिर भले ही फल संसार प्रत्ययी हो या असंसार माने मोक्ष प्रत्ययी हो, परन्तु भावका फल अवश्य है, है और है ही । ऐसा एक कारण-कार्यका सम्बन्ध है । और वस्तु व्यवस्था भी ऐसी ही है ।

“जो जो कुछ क्रियाएं है वे सब सफल हैं, निरर्थक नहीं । जो कुछ भी किया जाता है उसका फल भोगनेमें आता है, यह प्रत्यक्ष अनुभव है । जैसे विष खानेसे विषका फल, मिसरी खानेसे मिसरीका फल, अग्निस्पर्शसे अग्निस्पर्शका फल, हिम का स्पर्श करनेसे हिमस्पर्शका फल हुए बिना नहीं रहता ...” ये सब दृष्टांत लिये हैं । दृष्टांत है वह सिद्धांतको कुछ अंशमें समझानेके लिये लागु पड़े ऐसी युक्ति है । दृष्टांत सर्वथा सिद्धांतको लागु नहीं पड़ता वरना तो वह दृष्टांत हो जाय, फिर दृष्टांत नहीं रहता । दृष्टांतके द्वारा सिद्धांतको समझाना सुगम पड़ता है इसलिये ज्ञानियों भी दृष्टांतका ईस्तमाल करते हैं । और वह कुछ अंशमें, कोई एक View Point (द्रष्टिकोण) से लागु करनेकी बात है । दृष्टांतकी इतनी मर्यादा समझना योग्य है, वरना वहाँ तर्क होनेकी बहुत संभावना है । जैसे कि द्रव्यानुयोग अभ्यासी हो तो (तर्क करेगा कि) आत्मा स्पर्श कर सकता है कि नहीं कर सकता है ? यहाँ इस बातको नहीं लेनी है ।

भक्ति भक्तिके तरीकेसे होती है । सिद्धांत सिद्धांतकी रीतिसे चलता है । करणानुयोग, करणानुयोगकी रीतसे बात करता है । द्रव्यानुयोग द्रव्यानुयोगकी पद्धतिसे बात करता है । एक में दूसरी बात Cross (मिलान) करने जायेंगे तो कुतर्क होगा । और एक

भी बात सिद्ध नहीं होगी और समझमें भी नहीं आयेगी । समझनेवालेको विषय स्पष्ट होनेके लिये थोड़े दृष्टांत लेते हैं ।

भक्तिमें हम ऐसा कहेंगे कि हे ! वीतराग प्रभु ! आपने ही हमें तिराया है । जब कि वीतराग प्रभु तो शुक्लध्यानमें विराजमान हैं । किसीका काम तो करते नहीं, किसीको कुछ लेते-देते नहीं - ऐसा द्रव्यानुयोग कहता है । फिरभी भक्ति उस तरह नहीं होती । भक्तिमें द्रव्यानुयोग काम नहीं आता । भक्तिमें तो ऐसे ही कहा जाता है कि प्रभु ! आपने ही हमें तिराया है । हमारे में तो कोई शक्ति है ही नहीं हम तो निर्बल है । द्रव्यानुयोग कहेगा कि तेरे में अनन्त शक्ति है । भक्ति करनेवाला ऐसा कहेगा - प्रभु हमारेमें कुछ नहीं है, हम तो एकदम कमजोर है, कुछ भी नहीं था हमारेमें, कुछ है ही नहीं, आप ही ने सब दिया है । दृष्टि भी आप ही ने दी, ज्ञान भी आप ही ने दिया, भक्ति भी आप ही ने दी, व आत्मा भी आप ही ने दिया । हमें कहाँ (भान था), आत्मा आप ही ने दिया है ।

“ते तो प्रभुए आपियो... ” (आत्मसिद्धि गाथा - १२५) कृपालुदेवने ऐसा कहा, ऐसा नहीं कहा कि ते तो प्रभु ए दर्शावीयो बल्कि “आपियो” ऐसा कहा । क्योंकि वहाँ भक्ति करनी है वहाँ द्रव्यानुयोगका ज्ञान काममें नहीं आता । भक्ति भक्तिके तरीकेसे होती है ।

चरणानुयोगमें मुनिराज इर्या समितिसे चलते हैं - इर्या समितिसे माने चार हाथ नीचे देखकर चलते हैं (जिससे) चंचलता नहीं हो व कोई जीवकी हिंसा नहीं हो । देखते हुए पैर रखते हैं (जिसके कारण) कोई छोटा-मोटा जीव-जंतु मर नहीं जाय-हिंसा नहीं हो । अब वहाँ अगर द्रव्यानुयोगका नियम लागु करे कि शरीरकी क्रिया आत्मा कर सकता है कि नहीं कर सकता है ? तो चरणानुयोगका

सिद्धांत समझमें नहीं आयेगा ।

निमित्त-नैमित्तिक संबंध भी द्वयानुयोगका विषय है । सापेक्षपना कितना है । निरपेक्षपना कितना है कहाँ किस दृष्टिकी मुख्यता है । कहाँ किस दृष्टिकी गौणता है । ये सब बहुतसी बातें गुरुगमसे समझने योग्य है । ऐसे ही समझमें आ जाये ऐसा नहीं है कि कहाँ क्या कहना चाहते हैं ।

इसलिये कृपालुदेवने कहा है कि "ज्यां ज्यां जे जे योग्य छे तहां समझवुं तेह" (आत्मसिद्धि-गाथा-८) कृपालुदेवने हमें बहुत परोसा है । वैसे ही यहाँ पर जो द्रष्टांत लिया है वह द्रष्टांत के स्थानमें है । अब सिद्धांत कहते हैं । "वैसे कषायादि अथवा अकषायादि जिस किसी परिणामसे आत्मा प्रवृत्ति करता है । उसका फल होना भी योग्य ही है ।"

यहाँ पर दो बात ली है । अकषाय है वह स्वभाव परिणाम है और कषाय है वह विभाव परिणाम है । वह परिणामका धर्म है । शक्तिका धर्म नहीं है परन्तु व्यक्ति का धर्म है । यद्यपि आत्माको शुद्ध-स्वरूपी कहा जाता है परन्तु वास्तवमें अशुद्ध-की अपेक्षासे ऐसी कोई बात नहीं है ।

भगवान् योगिन्द् आचार्यका 'परमात्म प्रकाश' नाम से शास्त्र है । उसमें एक बहुत सुंदर बात उन्होंने की है । बहुत करके ६५ वी गाथा है । कि आत्मा जो है मुळस्वरूपसे अबद्धस्पृष्ट है । जो समयसारजीमें आचार्य महाराज १४ वी गाथामें कहते हैं ।

"अनबद्धस्पृष्ट, अनन्य अरु, जो नियत देखे आत्माको

अविशेष अनसंयुक्त उसको शुद्धनय तू जानजो ॥१४॥"

'नियत स्वरूप (माने) मूळ स्वरूप । जो बंधा है वह भावसे है । भावबंध अवस्थामें है और कर्मका जो द्रव्यबंध है वह संयोगरूपमें

है । अब जिसे स्वरूपदृष्टि हुई है, वह स्वरूपदृष्टिसे आत्माको कैसा देखता है ? कि नहीं बंधा हुआ देखता है । अबद्धस्पृष्ट देखता है तब कहते है, कि क्या आत्मा बंधा हुआ है ? कि तुझे आत्मा (बंधा हुआ है) ऐसी बात नहीं करना चाहिये, उस बातको बंधकी अवस्था तक सीमित रख । आत्माके मुल स्वरूपको ऐसा नहीं कहना, क्योंकि वह उसका अपमान है । बहुत अच्छी बात कही है । उन्होंने दृष्टांत लिया है ।

किसी एक दूसरे नामवाले आदमी का नाम अखबारमें आया । बिलकुल उसका और दुसरेके पिताश्रीका नाम एक सरीखा । ऐसा बनता है न ! बाप-बेटाका एक सरीखा नामवाले दुसरे लोग होते हैं । अखबार में आया कि जेलमें से छूटे है । आज उन्हे जेलमें से रिहा किया जाता है । अब उसके किसी सम्बन्धीको ऐसा हुआ कि तब तो हमें Congratulation (अभिनंदन) देने जाना चाहिये । जब कि वास्तवमें जो छूटा था वह कोई दूसरा ही था । तो जब अभिवादन करने गया तो अगला तो आश्चर्यमें पड़ गया कि अरे ! भाईसाब, मैंने गुनाह ही कब किया था ? मैं जेलमें गया ही कब था ? कि आप मुझे ऐसा कहनेके लिये आये हो ? इससे तो ऐसा साबित हो जाता है कि मैंने पहले गुनाह किया था और बादमें मैं छूटा ।

इस तरह स्वभाव दृष्टिसे आत्मा (अबद्धस्पृष्ट) ऐसा है । हमेंशा विभाव और अपराध उनसे दूर रहते हैं । वह तब आत्मासे बहुत (ही) दूर रहते हैं । श्री नियमसारजीमें ३८वी गाथाके बाद एक कलश है । बहुत ही सुंदर कलश है । उसमें कहते हैं कि वे उससे (आत्मासे) बहुत दूर है । ऐसे जो अनित्यतादि भाव हैं, चारों प्रकारके अनित्य भाव उसमें विभाव भाव और उदय भाव को बहुतही

दूर रखे हैं । वे अति दूर हैं, ऐसा एक गुप्त तत्त्व है जो कि सृष्टिके लक्ष्यमें नहीं है । चमत्कारिक ऐसे इस तत्त्वका संकेत आगमोंमें व ज्ञानियोंके वचनोंमें जगह-जगह देखने मिलते हैं ।

यहाँ कृपालुदेव कहते हैं कि आत्मा जो है उसे दो प्रकारके परिणाम होते हैं । एक स्वाभाविक परिणाम व दूसरा विभाविक परिणाम । कषाय परिणाम होते हैं और अकषाय परिणाम भी होते हैं । परिणाममें ऐसे दो प्रकार बनते हैं - मूल स्वरूपमें नहीं है । इस तरह जैसेभी परिणामसे आत्मा प्रवृत्ति करता है (अर्थात्) परिणाम करता है, जो क्रिया करता है, उसका फल भी अवश्य होता ही है । विभाव परिणाममें परिणामन करता है तो उसका फल भूगतना पड़ता है व स्वभाव परिणामसे परिणामन करता है तो उसका फल भोगनेका अवसर आता है ।

“... उसका फल होना भी योग्य ही है, और वह होता है । उस क्रियाका कर्ता होनेसे आत्मा भोक्ता है” आत्मा उन-उन सकषाय या अकषाय परिणामका कर्ता होनेसे उसका (भोक्ता बनता है) देखिये ! अनुसंधान कहाँ किया ? कर्ताके साथ भोक्ताका किया । कर्ता होता है तो भोक्ता होता है । यह कर्ता-भोक्ताका प्रकरण समयसारजीमें बहुत बड़ा है । पूरा कर्ता-कर्म अधिकार आचार्यदेवने इस विषय पर लिखा है । इसी विषय पर एक दूसरा अधिकार है । इस विषय पर उनका बहुत वजन है । वहाँ हेतुलक्ष्यी होनेसे वह सर्वविशुद्ध अधिकार है । यह आखरी अधिकार है । दोनोंका नाम अलग-अलग है परन्तु एक ही विषयका प्रतिपादन किया है और वहाँ भी कर्ता-भोक्तापनेका विषय लिया है कि (आत्मा) जिसका कर्ता होता है उसका भोक्ता बनता है । कृपालुदेवने उसका संक्षेप कर दिया । उनके पास कम समझनेवाले को भी पूरी-पूरी बात समझानेकी कला

है । और विद्वान भी गहराईमें जाये तो उनका मस्तक झूके बिना रहे नहीं, कि वाह ! क्या उनकी विचिक्षणता !! कैसी उनकी कहनेकी कला है !!

इतना प्रतिपादन करनेके बाद अब मोक्ष की जो अवस्था है - उसका प्रतिपादन करना है । आगे के दोनों पदका विषय बहुत महत्वपूर्ण है । खास करके पारमार्थिक दृष्टिकोणका विषय - आत्म कल्याणकारी विषय है । उसका विस्तार आगेके स्वाध्यायमें करेंगे ।



अपरमार्थमें परमार्थका आग्रह दृढ होने से (अथवा दर्शनमोह वृद्धिगत होनेसे) सम्यक्बोध प्राप्त होनेके योगमें भी वह बोध प्रवेश हो, ऐसा भाव उत्पन्न नहीं होता, ऐसी विटम्बना मुमुक्षु जीवको उपरोक्त कारणसे होवे तब, परम दीन भावसे परमात्मा प्रति याचना कर्तव्य है कि हे नाथ, यह परिभ्रमणसे निवृत्तिका सर्वोत्तम उपाय ऐसा जो सत्पुरुषका प्रत्यक्षयोग-उसका शरणभाव मुझे उत्पन्न हो-ऐसी कृपा कर । ऐसे भावके बीस दोहरे परम कृपालुदेवने श्री लल्लुजीको बोधे थे, वह गुण आवृत्तिके हेतुसे आत्मार्थी जीवको अनुप्रेक्षा करने योग्य है । (श्रद्धेय पू. भाईश्री)



सत्श्रुतका स्वाध्याय स्थूल उपयोगसे तथापि परलक्ष्यसे कर्तव्य नहीं । उसमें शास्त्रजीका अविनय है । सूक्ष्म उपयोगसे वाच्यको लक्ष्यमें लेकर स्वाध्याय कर्तव्य है । जिससे विषयकी गहराईमें जा सके । (श्रद्धेय पू. भाईश्री)

प्रवचन - ६

दि-३०-७-१९९६ दोपहर

पत्रांक ४९३ चल रहा है । चौथा पद "आत्मा भोक्ता है" - यह विषय सुबह चल रहा था । किसी भी कार्यका फल आता है । जो करता है वही भोगता है - ऐसी प्रसिद्ध कहावत है - "जैसी करनी वैसी भरनी" । जो जैसा करता है उसे वैसा ही फल अपने आप भुगतना पड़ता है । ज्वार बोनेसे ज्वार ही उगता है और चावल बोनेसे चावल ही उगता है । इस तरह सकषाय परिणाम जीवको संसारकी ओर ले जाता है । जब कि अकषाय परिणाम जीवको स्वभावके प्रति ले जाकर मोक्षकी प्राप्ति कराता है । अतः आत्मा जो भी क्रियाका कर्ता है उसका भोक्ता भी अवश्य है ।

पाँचवाँ पद : "मोक्ष पद है ।" "जिस अनुपचरित व्यवहारसे जीवके कर्मका कर्तृत्वका निरुपण किया, ...क्यों कर्तापनेमें द्रव्य कर्मका कर्तापना अनुपचरित व्यवहारसे लिया था ? क्योंकि मोक्ष पदमें उसी बातका अनुसंधान करना था । इसलिये वहाँ उस बातको रखा था । 'मोक्षपद है' मोक्षपदकी स्थापना करते हुए स्वयं स्पष्टीकरण देते हैं । "जिस अनुपचरित व्यवहारसे जीवके कर्मका कर्तृत्वका निरुपण किया, कर्तृत्व होनेसे भोक्तृत्वका निरुपण किया" देखिये इन दोनों बातोंका स्वीकार करनेमें आता है तब "उस कर्मकी निवृत्ति भी है" ऐसा स्वीकार करना होगा । अगर कर्म बंधते हैं तो छूटेंगे

भी जरूर । जो बंधता है वह छूटता ही है । “क्योंकि प्रत्यक्ष कषायादिकी तीव्रता हो, परन्तु उसके अनभ्याससे, उसके अपरिचयसे, उसका उपशम करनेसे उसकी मंदता दिखायी देती है, वह क्षीण होने योग्य दिखता है, क्षीण हो सकता है । वह बंधभाव क्षीण हो सकने योग्य होनेसे, उससे रहित जो शुद्ध आत्मस्वभाव है, वही मोक्षपद ह” ।

बहुत ही - एकदम न्यायसे - Logic से निरूपित है कि जो जीव कर्म करता है और अगर परिणामोंसे वह कर्म करता है तो उस कर्मोंका टलना भी बन सकता है । कैसे बन सकता है ? एक प्रत्यक्ष प्रमाण देते हैं । कि जैसे कषायका तीव्रपना अनुभवगोचर होता है वैसे कषायका मंदपना भी अनुभवगोचर होता है । सामान्य तोरसे भले ही जीवको अभी कषाय रहित दशाका अनुभव नहीं हो परन्तु तीव्रता व मंदता तो अनुभवगोचर होती है ।

जिस अभ्याससे माने जिस प्रकारकी विपरीत Practice से; अभ्यासका अर्थ यहाँ पर Practice है, विपरीत Practice के कारण कषायादि उत्पन्न होते हैं उससे उलटी Practice को अविपरीत Practice से, जिसे अनभ्यास कहनेमें आता है । आप कहेंगे कि ये विपरीत Practice कैसे होती है - हो रही है ?

जीव शरीरमें अपनत्व करता है, कुटुंब, परिग्रहादिमें, संयोगोंमें अपनत्व करता है और उस अपनत्वका रस लेता है । यह जीवका विपरीत प्रयोगाभ्यास है । वारंवार करता है इसलिये अभ्यास कहते हैं । और इस प्रकारके परिणामसे राग-द्वेष-मोह-कषायादिकी उत्पत्ति होती, होती और होती ही है, नहीं हो ऐसा कभी बन सकता ही नहीं है । जीव परद्रव्यमें अपनत्व करता है, उसमें तीनों दोष आ जाते हैं - श्रद्धाका, ज्ञानका व चारित्रिका; तीनों दोष आ ही जाते

हैं । यह उसकी उलटी प्रेक्टिस - (अभ्यास) है ।

यहाँ कोई ऐसा कहेगा, तो क्या हमें हमारे कुटुंबको अपना नहीं मानना क्या ? (तो कहते हैं) कि ज्ञानियोंकी तो ऐसी पागलपनकी शिक्षा है । कुपालुदेवने सौभाग्यभाईको ऐसा लिखा है कि हमारी तो आपको ऐसी पागल शिक्षा है । आपका जो कुटुंबके प्रतिका स्नेहभाव है वह मिटानेके लिये, ऐसा उदय आया है । और अपनत्व छोड़नेके लिये यह उदय है । यह तो बदलेमें अनुकूल है ऐसा लेना, प्रतिकूल है ऐसा आप मत लिजिये ।

वास्तवमें लौकिक रीतिरिवाज़, लौकिक व्यवस्था - व्यवहार यह लौकिक स्तर का एक विषय है । अलौकिक मार्गका स्तर ही कुछ अलौकिक होता है । इसलिये उसके लिये अलग प्रकारकी पात्रता चाहिये । अगर इसमें सिर्फ बुद्धि की पहुँच होती तो बहुतसे बुद्धिवाले वहाँ पहुँच जाते । परन्तु कम बुद्धिवाला हो, लेकिन पात्रतावाला हो उस जीवकी पहुँच है । ज्ञानी इस विषयमें बहुत स्पष्ट हैं कि, दूसरी लौकिक बुद्धिकी तो बात ही छोड़ो, परन्तु शास्त्र पढ़नेकी बुद्धि हो, भाषाज्ञान बहुत हो, समझनेकी बुद्धिभी बहुत हो, परन्तु ऐसे क्षयोपशम ज्ञानसे आत्मामें नहीं पहुँचा जाता । परन्तु पात्रता हो तो अल्प ज्ञानसे भी; प्रयोजनभूत ऐसे अल्प ज्ञानसे भी आत्मा तक पहुँचा जा सकता है । इस तरह इसमें आगे बढ़नेका एक अलग प्रकार है ।

'मोक्षपद है' इसकी श्रद्धा सम्यग्दर्शनवालेको ही होती है । यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण मुद्दा है । इतनी सीधी-सादि बात नहीं है जितनी दो शब्दोंमें दिखाई देती है । बहुत गंभीर बात है । समयसारके बंध अधिकारमें इस विषय पर आचार्यश्रीने इस एक मुद्दे पर बहुत ही अच्छी बात की है कि, मिथ्यादृष्टि अभव्य जीव होता

है वह भी अगर ११ अंग-पूर्व तकका शास्त्रज्ञानका अभ्यास करे व बाह्यक्रियामें जिनोक्त व्यवहारका पालन करे, दीक्षा लेकर द्रव्यलिंगी साधु भी हो जाये, नग्न दिगम्बर - जंगलवासी हो - फिरभी वह आत्मज्ञानको प्राप्त क्यों नहीं करता है ? क्योंकि वह अभव्य जीव मोक्षकी श्रद्धा नहीं करता है । ऐसा गुद्दा उठाया है । यहाँ कृपालुदेवने सम्यग्दर्शन व आत्मज्ञान प्राप्त होनेमें 'मोक्षपद है' उसकी श्रद्धा करायी है ।

समयसार तात्विक ग्रंथ है । एकदम तत्वदृष्टिका - Pure (विशुद्ध) तत्वदृष्टिका ग्रंथ है । और यहाँ पर सम्यग्दर्शनके पाँचवे पदमें कृपालुदेव न्यायसे, Logic से, मोक्षपदकी स्थापना करते हैं । और यह श्रद्धा कर्तव्य है । और अनुभवसे - अनुभवकी युक्तिसे बात समझाते हैं कि, कषाय जो तीव्र होता है वह एक प्रकारके अभ्याससे तीव्र होता है, उसी प्रकारका अनभ्यास करनेमें आये तो वह कषाय मंद होता है, उपशम होता है, शांत होता है । यानी कि उसका जो रस है वह मंद हो जाता है । उसका मंदपना भी दिखता है । जैसे तीव्रपना दिखता है वैसे ही मंदपना भी दिखता है । अगर तीव्र-मंद हो सकता है तो क्षीण होने योग्य है व क्षीण हो सकता भी है ।

उन-उन बंधभावमें (अर्थात्) आत्माके स्वरूपको छोड़कर अन्य द्रव्य-भावमें परिणामका प्रतिबंध होना - वह बंधभाव है । पूरा आत्मा वहाँ अटकता है । ईन्जेक्शनकी एक सुई जहाँ स्पर्श होती है वहाँ पूरा आत्मा आकर खड़ा हो जाता है । (सुईका, पीड़ाका) मेरेमें प्रवेश हुआ (ऐसा अनुभव करता है) परन्तु ऐसा नहीं हो सकता है । मात्र स्पर्शका ज्ञान होता है, पर भ्रांति पूर्वक आत्मा पूरा का पूरा वहाँ प्रतिबद्धताको प्राप्त होता है । जहाँ स्वरूप को चूका,

स्वरूपानुसंधान नहीं रहा कि पूरा-पूरा जीव अन्य द्रव्यमें या अन्य भावमें कहीं न कहीं प्रतिबद्धता को प्राप्त होता है ।

“वह बंधभाव क्षीण हो सकने योग्य होनेसे, उससे रहित जो शुद्ध आत्मस्वभाव है, उस रूप मोक्षपद है ।” वह क्षीण हो सकने योग्य होनेसे जब क्षीण होता है तब आत्मा स्वरूपसे जैसा है वैसा, किसीभी प्रकारके विभावके बिना अपने परिणाममें प्रगट होता है ।

“मोक्ष कद्यो निज शुद्धता....” आत्मसिद्धि गाथा १२३ । आत्मसिद्धिशास्त्र काव्यमें भी इस पदकी व्याख्या की है ।

एक प्रश्न यहाँ हो सकता है कि बात सम्यग्दर्शनकी चल रही है उसमें बीचमें मोक्षकी बात को लानेकी जरूरत क्यों हुई ? कृपालुदेवने पत्रके शीर्षकमें ऐसा कहा है कि सम्यग्दर्शनके निवासभूत ऐसे जो छः पद हैं, उसका यहाँ प्रतिपादन करनेका मेरा हेतु है । लेकिन आप तो बीचमें मोक्षपदकी बात को ले आये ।

(प्रथम तो) मोक्षकी श्रद्धा करनी होगी । इसके पश्चातही अगर मोक्षकी श्रद्धा की होगी तो (ही) सम्यग्दर्शन वहाँ निवास करने के लिए आयेगा । निवास बादमें होगा लेकिन पहले (तुं) मोक्षकी श्रद्धा कर । (आगेके) चारों पदोंकी जो श्रद्धा तुने की इसके साथ-साथ तुँ मोक्षकी भी श्रद्धा कर । जबकि मोक्ष तो अंतिम अवस्था है । मोक्ष जो है, वह तो मोक्षमार्गका फल है जबकि सम्यग्दर्शन तो मोक्षमार्गका मूल यानी कि प्रारम्भ है । हमें तो प्रारम्भ करने की बात है, पहेली सीढ़ीमें पैर रखना है पर आप तो आखिरी सीढ़ीकी बात कर रहे हैं । कुछ समझमें आये इस तरह बात कीजिये तो अच्छा है कि ऐसा क्यों होता है ? विशेष गहराईसे विचार करने योग्य यह मुद्दा है । इसलिये प्रश्न उठाया है कि बीचमें मोक्षकी बात क्यों आती है ?

कोई भी जीव, कोई भी संसारी जीव हो वह जब अपने आत्मकल्याण करनेके निश्चयसे अपना कार्यक्षेत्र बदलता है तब कमसे कम उसने इतना विचार किया है कि. मेरी जो वर्तमान दशा या हालत है उसमें गड़बड़ बहुत है । अनेक प्रकारके दोष, अवगुण, दुःख, आकुलता सहित जो मेरी परिस्थिती है वह प्रगट अनुभवगोचर है - जो कि योग्य नहीं बल्कि अयोग्य है और उसमें सुधार करनेकी जरूरत है । इतनी बात ध्यानमें कम से कम आये तो वह धार्मिकक्षेत्रमें प्रवेश करता है, तब उसे सबसे पहले (सहज रूपसे) क्या आना चाहिये ? कि सबसे पहले उसका लक्ष्य, उसका ध्येय, साध्य निश्चित होना चाहिये । **“मोक्षपद है”** वह साध्यके स्थानमें है ।

जब तक कहाँ जाना है ? उसका निश्चय नहीं हो तब तक किस दिशामें कदम भरेंगे ? हम स्वाध्याय होलसे बहार निकले (व) चंपलमें पैर रखते हैं इसके पहले ही निश्चय हो जाता है कि घर जाना है या लाईब्रेरीमें जाना है या बाहर घुमने जाना है, कि अहमदाबाद जाना है ?(वास्तविक रूपसे) Most Practical (वास्तविक रूपसे) यह बात है कि घरमें से भी जब बाहर निकलते हैं तब कहाँ जाना है ? यह नक्की होने के बाद ही चंपलमें पैर रखा जाता है वरना किस दिशामें कदम भरेंगे ? यह एकदम प्रेक्टिकल बात है ।

अब, हे जीव ! तू अपने आपको ही पूछ कि तू यह धार्मिकक्षेत्रमें आकर कोई न कोई धार्मिक प्रवृत्ति कर रहा है तो (इससे) तुझे क्या साध्य करना है ? तेरा ध्येय क्या है ? तेरा साध्य क्या है ? तेरा लक्ष्य क्या है ? जब तक लक्ष्य नहीं हो तब तक कोईभी धार्मिकक्षेत्रकी धार्मिक प्रवृत्ति, धर्म साधन वह सब लक्ष्य विहीन प्रवृत्ति है; जो कि कभी सफल नहीं होती ।

(कृपालुदेव) क्यों मोक्षपदको बीचमें ले आये हैं ? (इसलिये कि) वह पहले निश्चित करना होगा कि मेरी जो अवगुण व दोषवाली दशा है उसे पलटकर मुझे निर्दोषता व सद्गुण प्रगट करने हैं । (अब) निर्दोषता व सद्गुण प्रगट करना है तो कितना प्रगट करना है ? कि परिपूर्ण (प्रगट करना है) । आदर्श कभी अधूरा नहीं होता ।

लोगोंको पूछ लें कि आपको संपत्ति कितनी चाहेये ? करोड़पति को पूछ लें, अरबपतिको पूछ ले (कि) अभी भी आप क्यों प्रवृत्ति करते हो ? करोड़ो व अरबो रुपिया कमानेके बावजूदभी ये कारखाने व धंधे क्यों चालू है ? उसको पूरी दुनिया चाहिए । अभिप्रायमें जगतका एक भी परमाणु जो चाहता है, रागका एक भी कण जिसे सुहाता है उसके अभिप्रायमें पूरा जगत - पूरा संसार पड़ा है । Endless ! (अन्तहीन) कितना चाहिये इसकी कोई मर्यादा नहीं है । क्योंकि जीवका स्वभाव अनन्त तो उसकी जरूरत भी अनन्त ही होती है ।

अब यहाँ जिसे निर्दोषता, पवित्रता प्राप्त करनी है तो उसका ध्येय क्या होगा ? कि परिपूर्ण निर्दोषता, परिपूर्ण पवित्रता वह मेरा ध्येय है, मेरा लक्ष्यांक है ।

जब तक ऐसा निश्चय नहीं होता तब तक (कोई भी) साधन साध्यके लक्ष्यसे नहीं हो सकते हैं । देखिये ! जहाँ तक ध्येयके साथ सम्बन्ध है वहाँ तक जीवको दो ही ध्येय हो सकते हैं, एक तो संसार या तो दूसरा मोक्ष । दोनों Extreme Point (एक दूसरे से अलग) है । अनादिसे जीवका ध्येय संसारका होनेसे और इस ध्येय को बदले बिना यह धार्मिकक्षेत्रमें आ गया - किसी भी कारणसे जाने-अनजानेमें । (अब) जो भी धर्म साधन व धर्म प्रवृत्ति करेगा (उससे) संसारकी ही प्राप्ति ही होगी । क्या प्राप्त होगा ? संसार

प्राप्त होगा । (कब तक) कि जब तक (जीवको) मोक्षका ध्येय निश्चत नहीं होगा तब तक ।

अगर जीवका ध्येय मोक्षपदका हो तो पत्रांक २५४ के अनुसार, अब यहाँ कृपालुदेवके वचनोंका अनुसंधान करे तो वह एक मोक्ष के लिये ही प्रयत्न करेगा । जितने ही प्रयत्न होंगे वे सब मोक्षके लिए ही होंगे । "...मात्र मोक्ष अभिलाष..." आत्मसिद्धि शास्त्र गाथा - ३८ । तब उसके सभी (धर्म) साधन (मोक्षके) अनुसंधानमें - उसीके लक्ष्यसे चलते हैं और तभी उसमें यथार्थता आती है ।

अभी सीढ़ीयाँ चढ़ते हुए एक मुमुक्षु भाईने प्रश्न किया था कि, हो सके तो, इस विषय को साथमें ले लिजिये कि अनादिसे मुमुक्षु जीवका जो मिथ्या श्रद्धाका पर्याय चल रहा है और वही जीव सम्यक्त्व तक पहुँचता है, सम्यक्त्व श्रद्धा तक (पहुँचता है) तो वह किस तरह Progress (प्रगति) करता है ? उसके Proceedings (यथार्थ कार्यवाही) क्या है ?

चलते विषयमें इसका विषयांतर नहीं होता है इसलिये (आशंका का समाधान ले लेते हैं) कि कृपालुदेवने सम्यग्दर्शन के निवास के साधनके रूपमें छः पदकी चर्चाका प्रारम्भ किया है और छः पदकी चर्चामें मोक्षपद है, मोक्षकी मोजूदगी (है) (आत्माकी) संपूर्ण शुद्धि हो सके, होने योग्य है, हो सकती है इस बातका स्वीकार पहले करना होगा । उसके स्वीकारको और श्रद्धाके परिणामका वैज्ञानिक रूपसे क्या सम्बन्ध है ? इस प्रश्नके अनुसंधानमें ऐसा विचार करना चाहिये ।

कृपालुदेव जो ज्ञानीके नामसे, ज्ञानी के मार्गके नामसे अनेक जगहमें जो संकेत किया है व भिन्न-भिन्न जगहमें जो क्रम सेवनकी बात की है उस क्रमके जितने Stages (भूमिका) हैं उन सभी Stages

में श्रद्धा व ज्ञान कैसे आगे बढ़ते हैं ? उनका (मुमुक्षुभाईका) प्रश्न दो तरह से था । एक श्रद्धा सम्बन्धी था व दूसरा ज्ञान सम्बन्धी था । ज्ञान भी सम्यक्ज्ञान तक पहुँचता है, आत्मज्ञान तक पहुँचता है उसके Proceedings (प्रक्रिया) भी किस तरह है । वह भी थोड़ा साथमें ले लेलें ।

यद्यपि, दोनों (श्रद्धा व ज्ञान) गुण साथमें ही कार्य करते हैं और पात्रतामें तीनों (श्रद्धा, ज्ञान व चारित्र) गुणोंकी कार्य करनेकी परिस्थिती साथमें ही -Samultaneously (साथ साथ) होती है । व तीनों गुण एक रूपसे व अविरुद्धपने से काम करते - करते मोक्षमार्गमें प्रवेश करनेवाले हैं । और इन तीनों गुणके यथायोग्य प्रकारके फेरफारको ज्ञानियोंने एक शब्दमें "सत्पात्रता" कही है । शब्द तो एक है "सत्पात्रता" परन्तु जब जीवमें सत्पात्रता प्रगट होती है, वह पात्रता वर्धमान होकर व चरमसीमा पर पहुँचने पर उसके बाद ज्ञानदशामें परिणमित होती है ।

ऐसी जो उसका Process (प्रक्रिया) है, उसमें श्रद्धा गुण जो है वह अनादिसे मिथ्यारूपसे - विपरीतरूपसे जो परिणमन कर रहा है - उसकी शक्ति बहुत बलवान है । एक साथ पूरा का पूरा विपरीत परिणमन होने के कारण उसका कार्य बलवानरूपसे उलटा हो रहा है । इसलिये, उसको सुलटा होनेमें बहुत पुरुषार्थ चाहिये यह समझमें आ सके ऐसी बात है । (मिथ्याश्रद्धा) अंतरंग दुश्मन है । अरिहंत शब्द (का अर्थ है) 'अरि' माने दुश्मन और 'हंत' माने नाश करनेवाला । यह अंतरंगमें सबसे बड़ा दुश्मन है । अनेक प्रकारके विभावमें मिथ्याश्रद्धा (अर्थात्) दर्शनमोह वह सबसे बड़ा दुश्मन है । अनन्त संसारका कारण यह मिथ्याश्रद्धा (ही) है और बलवान दुश्मन है । इसलिये तो, अनन्तकालसे इसका पराभव करना नहीं हो पाया

है । अब, श्रीगुरुकी कृपासे, ज्ञानियोंके आशीर्वादसे यह बात शक्य तो है (लेकिन) कब ? कि जैसे कोईभी बलवान दुश्मन को अगर सचमुच मारना ही हो तो उसे पहले कमजोर बनाना जरूरी है । देखिये ! सम्यग्दर्शन जब होता है तब सबसे पहले संसारी जीवको उपशम सम्यग्दर्शन होता है । प्रथम कौनसा सम्यग्दर्शन होता है ? उपशम (होता है) । बादमें ही क्षयोपशम या क्षायिक होता है । इसका अर्थ क्या ? कि यह जो मिथ्याश्रद्धा नामका बलवान दुश्मन है वह पहले दबता है । दब जाता है । दबता कब है ? जब कमजोर होता है तब । बलवान कभी किसीसे नहीं दबता है । ताक त वालेको कोई दबाने जाय तो मुसीबत आ जाये ।

अतः मुमुक्षुकी भूमिकामें कृपालुदेवने जिस छः पदकी बात की है उसमें यह प्रक्रिया होती है । विषयका अनुसंधान इस तरह है कि दर्शनमोहको कमजोर करनेका उपदेश कृपालुदेवका चल रहा है । अरे ! कोई भी ज्ञानीके उपदेशमें यही बात मुख्य होती है ।

संप्रदायसे ज्ञानी अलग दिखते हैं उसका कारण भी यही है । संप्रदायमें प्रायः कषायकी मंदताके अनेक प्रकारके प्रयोग जीवोंको देनेमें आते हैं । और वहाँ कषायकी मंदता यानी कि चारित्रमोहकी मंदताका उपदेश मुख्यरूपसे चलता है । मिथ्याश्रद्धा व दर्शनमोहका पराभव कैसे किया जाये ? उस प्रकरणके उपदेशका वहाँ अभाव है लुप्त प्रायः परिस्थितिमें है । लोप हो गई है । हमारे शास्त्रोंमें व आगमोंमें यह बात प्रसिद्ध है, परन्तु ज्ञानीका मार्ग कहकर कृपालुदेवने इस बातको अलग किए हैं कि दर्शनमोहको कैसे कमजोर करना ? इसका उपदेश मुमुक्षुओंको देते हैं । (कृपालुदेवका) सत्संग और सत्पुरुषकी मुख्याताका उपदेश इसी मुद्देको अनुलक्ष करके है ।

प्रथम सोपान में परिभ्रमणकी चिंतना, वेदना, तरसनाका आना

जरूरी है । वह बात भी दर्शनमोहके उपर प्रहार करनेकी है ।

इसके पश्चात् मोक्षपदका स्वीकार है जिसे कृपालुदेव "दृढ मुमुक्षुता" कहते हैं । पूर्णपद लेना है । ऐसा मेरा ध्येय है कि मुझे पूर्ण होना है । वही मेरा ध्येय है, वही मेरा लक्ष्यांक है । जैसे ही संपूर्ण निर्मोहीदशाका ध्येय बांधता है कि दर्शनमोह कमजोर - पतला पड़ने लगता है ।

तत् पश्चात् अपने दोषोंका अवलोकन स्वतः शुरु होता है । जिससे स्वच्छंद दबता है । वह भी दर्शनमोह घटने की प्रक्रिया है ।

अवलोकनमें ज्ञान साधन है और (आगे) भेदज्ञानकी प्रक्रियामें व सत्पुरुषकी भक्तिमें सत्पुरुषकी पहचानमें और स्वरूपकी पहचानमें सभी जगह दर्शनमोह शक्तिहीन होते - होते - होते इतना कमजोर हो जाता है कि उसे दबनेकी बारी आती है । और उपशम सम्यग्दर्शन प्रगट होता है । (और) *Samultaneously* साथ साथ ज्ञान और चारित्रकी भी शुद्ध पर्यायें परिणमित (होने लगती है) । तीनों गुण मुख्य है ।

यह दोनों गुण (श्रद्धा और ज्ञान) कैसे परिणमन करता है ? इसका विचार करे तो सर्व प्रथम ज्ञानमें जो विवेक उत्पन्न हुआ था कि यह संसारमें मैं दुःखी हो रहा हूँ । बहुतसे दोषोसे परिणमन कर रहा हूँ । मेरेमें मलिनता बहुत है । और मुझे इसमें फेरफार करनेकी जरूरत है । मेरा आत्मकल्याण किसी भी तरहसे हो ऐसा कोई उपाय मुझे प्रकट करना चाहिये । ऐसी कोई राह मुझे जाना चाहिये, चलना चाहिये । ऐसा विवेक सर्व प्रथम ज्ञानमें आता है । भले ही, ज्ञान (अभी) मिथ्या है तो भी । मिथ्या ज्ञानमें भी विवेकसे शुरुआत होती है । कृपालुदेव उसे सुविचारण कहते हैं । "ज्यां

प्रगटे सुविचारणा त्यां प्रगटे निजज्ञान" आत्मसिद्धिशास्त्र गाथा - ४१ ।
ऐसी सुविचारणा अज्ञानदशामें मिथ्याश्रद्धा हो तभी जीवको प्रगट होती है । यह हमें अनुभवगोचर हो सके ऐसी बात है ।

ज्ञान व श्रद्धा दोनों स्वतंत्र गुण होने पर भी निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध से एक-दूसरेका एक-दूसरे पर असर होता है । और जैसे-जैसे दर्शनमोह कमजोर पड़ता है वैसे-वैसे ज्ञानमें निर्मलता आती है । वह निर्मलता व यथार्थता मुमुक्षुकी भूमिका के योग्य आने लगती है, और जो भी दोष होते हैं उसमें भी अभिप्राय पूर्वकके जो दोष होते हैं उसकी समझ आने लगती है । जीवका जो परिणमन हो रहा है उस परिणमनमें अभिप्रायकी बहुत मुख्य भूमिका है । अभिप्राय बहुत बड़ा Role (भाग) अदा करता है । और इस विषयको थोड़ी गहराईसे समझने योग्य है ।

अतः ज्ञान जो प्रगति करता है वह सुविचारणाके मूलमें से प्रगति करता है । और वह सुविचारणा जैसे-जैसे आगे बढ़ती है वैसे-वैसे ज्ञानमें यथार्थता, समझकी यथार्थता अर्थात् आत्मलक्षी समझका यथार्थता आने लगती है । और स्वयंके हितरूप व अहितरूप परिणाम कैसा है, उसकी सुझ आने लगती है । ऐसी जब अंतर सुझ आने लगती है तब जीव दुःखके कारणरूप परिणामोंसे, दोषोंसे हटनेका प्रयास करता है व सद्गुणकी ओर जानेका प्रयास करता है । इसकी यह असर - ज्ञानकी असर पुरुषार्थ पर भी पड़ती है । इस प्रकार प्रयत्नमें जीव आता है । और इस तरह जैसे-जैसे ज्ञान यथार्थ होता जाता है वैसे-वैसे विपरीत अभिप्राय मुमुक्षुकी अलग-अलग भूमिकामें छूटते जाते हैं । मिथ्या अभिप्राय पतले पड़ते जाते हैं व ज्ञान आगे बढ़ता जाता है । और यह ज्ञानकी यथार्थता परिपक्वताको प्राप्त होकर कोई एक समय सम्यक्तामें परिणमित होती है ।

सम्यक्ज्ञानका Pre-stage (पूर्व भूमिका) क्या है ? ऐसे सीधे प्रश्नका विचार करना हो तो वह समझन व ज्ञानकी यथार्थता है ।

यथार्थताका विषय विस्तारवाला व गहन है । एवं मुमुक्षुकी भूमिकाके प्रारम्भ से लेकर उस भूमिका का वृद्धिगत होना व पूर्ण परिपक्व होना उसमें ज्ञान बहुत बड़ा साधनके रूपमें है । बड़ा साधन है ।

पंचाध्यायी जैसे द्रव्यानुयोगके गंभीर शास्त्रके उतरार्धकी गाथा - ४०१ में ग्रंथकर्ता (जबकी ग्रंथकर्ता अभी तक कौन है वह Unknown (जानकारी नहीं है) है । ऐसी निरूपण किया है कि "प्रसिद्धं ज्ञानमेवैकं साधनादिविधौ चितः" ज्ञानही एक साधन है । अगर साधनकी प्रक्रियाकी गहराईसे विचार किया जाये तो, समीक्षा करनेमें आये तो "प्रसिद्धं ज्ञानमेवैकं साधनादिविधौ चितः । स्वानुभूत्येकहेतुश्च..." । स्वानुभूतिका एकमात्र कारण है । "तस्मात्त परमं पदम ।।"

इस प्रकार ज्ञान पर ज्ञानीयोंका बहुत वजन है । श्रद्धाको सुलटी करनेवाला भी वही है । ज्ञानपूर्वक ही श्रद्धान होता है । पुरुषार्थ और चारित्रको बढ़ावा देनेमें भी ज्ञानकी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है । अंधेरेमें से प्रकाशमें ले जानेवाले दीपक भी ज्ञान ही है । स्वपरप्रकाशक व विवेकसंपन्न होनेके कारण (ज्ञान ही साधन है) ।

चारित्रमें Samultaneously (साथ ही साथ) ऐसा प्रकार बनता है कि मिथ्यात्व अवस्थामें जो अनंतानुबंधी कषाय होते हैं, क्रोध, मान, माया, लोभकी अनंतानुबंधीकी जो चोकड़ी है उसका अनुभाग टूटता है । अतः जैसे ही जीव परिभ्रमणकी वेदनामें प्रवेश करता है कि वहाँ उदासीनताका क्रम शुरु होता है । पत्रांक - १७२ में कृपालुदेवने जो स्थापित किया है कि "निरंतर उदासीनताके क्रमका सेवन करना" यह उदासीनता अध्यात्मकी जननी है । मूलमें यह

बात है । पहले ही कदम पर उदासीनता शुरू होती है । और १२८ पत्रमें तो कहते हैं कि परिभ्रमणकी चिंतना महावैराग्यको देता है । बार-बार, पुनः-पुनः वैराग्यको देता है । ज्ञानीके मार्गमें यथार्थ प्रकारका वैराग्य व यथार्थ प्रकारकी उदासीनता यहीं से शुरू होती है । वैसे तो उदासीनता यह जीव बहुत बार कर चुका है । त्याग, दिक्षादी बहुत ले चुका है परन्तु व सब गड़बड़वाली (बात) है । यथार्थता, ज्ञानीकी आज्ञाके अनुसार यहीं से शुरू होती है । फिर आगे जो जो उपर-उपरके Stages (भूमिका) हैं - पत्रांक २५४ अनुसार पदार्थ निर्णय तकके, यानीकि स्वरूपकी पहचान तक सभी स्तरोंमें उदासीनता वर्धमान होती है । यह चारित्रगुणका Proceedings (कार्यवाही) है । उदासीनता बढती ही चली जाती है । चिंतना हो तो उदासीनता आती है । चिंतनावाला जीव उदास नहीं हो तो कैसा हो ? कोई लौकिक साधारणसी चिंता हो तो भी खाना-पीना-सोना हराम हो जाता है तो यह तो अनन्त जन्म-मरणकी चिंता अंतरमें गले पड़ गई है, तो उदासीनता यहाँ से शुरू होती है । अनंतानुबंधीके कषाय पतले पड़ने, फिके पड़ने शुरू होते हैं । और औदयिकभावोंमें यानीकि अपने पूर्वकर्मके उदयमें अभी तक जीव जो राग-द्वेष करता था - जिस रससे राग-द्वेष करता था वह रस नीरसपनेको प्राप्त होने लगता है । यह उसका बाह्यमें समझ सके - अनुभव कर सके ऐसा लक्षण है । उसे कहीं मजा नहीं आती । रागके प्रसंगोंमें रागका रस नहीं चढ़ता, व खेदके - द्वेषके प्रसंगोंमें खेदका रस नहीं चढ़ता । संसारमें सभी जीवोंको अनुकूलतामें रागरस चढ़ जाता है, व प्रतिकूलतामें द्वेष-खेदरस चढ़ जाता है । एक आत्मार्थी जीव ही इन दोनों प्रसंगोंमें नीरस होता है । वह उसका उस भूमिकाका चारित्र है । उदासीनता आई वही उसका आचरण

है, वही उसका चारित्र है ।

उसकी उदासीनता सभी भूमिकामें बढ़ती जाती है । स्वरूप जिज्ञासाके कालमें तो अत्यंत बढ़ जाती है । भेदज्ञानके प्रयोगके कालमें तो बहुत ही बढ़ती जाती है और जब भिन्न पड़ता है, व सम्यग्दर्शन होता है तब तो परद्रव्यमें सुखबुद्धिका अभिप्राय ही खतम हो जाता है । देहात्मबुद्धि ही छूट जाती है । (जिसे) संयोगोंकी आधारबुद्धि छूट गई उसे और कहाँ रस आयेगा ?

ज्ञानी सहज वैरागी होते हैं । **‘सम्यक्दृष्टि नियतम भगवती ज्ञान वैराग्य शक्ति’** । ऐसा क्यों कहते हैं ? कि सुखरहित ऐसे जो पर पदार्थ जो कि पहले सुखसहित भासित होते थे वही पदार्थ अब सुखरहित भासित होते हैं । (फिर) उसे रस कैसे आ सकता है ? आपने मोटर या बंगला बेच दिया हो बादमें आपको उसमें कितना रस आयेगा, बताईये तो ? सामने दिख जाये तब कहेंगे कि यह हमारी गाड़ी, परन्तु जो बेच दी वह । इसलिये अब अगर उसका Accident (दुर्घटना) हो तो कौन चला रहा है ? ऐसा विकल्प आपको नहीं आनेवाला है क्योंकि अपनत्व छूट गया है ।

बस ! ज्ञानदशामें मेरापना नहीं है । व्यवसायके कार्यों के बीचमें दीखते ऐसे कृपालुदेव बहुत स्पष्ट लिखते हैं कि “हमें कहीं भी अपनत्व नहीं है । आगेकी कोई चिंता, कलकी तो नहीं परन्तु बादकी एक क्षणकी भी चिंता हमें नहीं होती है । वह मोटर कहाँ जानेवाली है ? उसकी चिंता हमें नहीं होती है । क्योंकि वह गाड़ी प्रारब्ध अनुसार चलनेवाली है, हमें कोई लेना-देना नहीं रहा ।

रस तो जहाँ अपनत्व होता है वहाँ पर ही सभीको होता है । स्वाभाविक बात है । अनुभरगोचर - अनुभवसिद्ध बात है । अपनत्व मिटा की रस गया । इसीलिये ज्ञानी सहज वैरागी होते हैं, नियमसे

वैरागी होते हैं । बाहरमें दिखाव भले ही कैसा भी हो उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है ।

इस तरह अनंतानुबंधी भी पतला होता-होता (क्षीण होने योग्य होता है) । यहाँ कृपालुदेवने जो बात कही है कषायादि “क्षीण होने योग्य दीखता है, क्षीण हो सकता है ।” और प्रथम अनंतानुबंधीका (कषायका) प्रकार जाता है । क्रोध, मान, माया, लोभ होते तो हैं लेकिन अनंतानुबंधी प्रकारके नहीं होते हैं । सम्यक्ज्ञान होनेके बाद पंचम गुणस्थानमें प्रत्याख्यानावर्णी (कषाय) जाते हैं । छट्टे-सातवें गुणस्थानमें अप्रत्याख्यानावर्णी (कषाय) जाते हैं । और उपरकी श्रेणी लगाते हैं तो संज्वलनके (कषाय) जाते हैं । बारहवें - क्षीणमोह गुणस्थानमें सभी खत्म हो करके यथाख्यात चारित्र (प्रगट होता है) । चारित्रगुण जैसा शुद्ध वैसा परिणमन होता है ।

ऐसा जो “मोक्षपद” है उसकी प्रथमसे श्रद्धा होने योग्य है । उसकी श्रद्धा, उसका स्वीकार समझ पूर्वक यथार्थरूपसे नहीं आता है तब तक दर्शनमोह पतला नहीं पड़ता है, भले ही कोई भी साधन करे । यह मोक्षपदका निर्धार हुए बिना, मोक्षाभिलाषी हुए बिना (भेदज्ञान नहीं हो सकता है) । समयसारजीकी १७-१८ वीं गाथामें बहुत अच्छा सिद्धांत है कि भेदज्ञान करना, वहाँसे तो शुरु करते हैं । इसके पहलेकी तो सभी गाथाएं पीठिकाकी गाथाएं हैं । बादमें वहाँसे समयसारका विस्तरवाला भाग शुरु होता है । वहाँ प्रथम ही भेदज्ञान करनेका विषय लेते हैं । तो वहाँ कहते हैं कि भेदज्ञान कौन कर सकता है ? कि ‘मोक्खकामेण’, मोक्षकी कामनावाला जो जीव होता है वह भेदज्ञानके प्रयोगको करनेके योग्य है ।

अगर जीवको मोक्षकी कामना, मोक्षपदके स्वीकारपूर्वक मोक्षकी कामना नहीं हो तो, मोक्षाभिलाषी नहीं हो तो, “मात्र मोक्ष अभिलाष”

ऐसी मुमुक्षुताकी स्थिती नहीं हो तो वह जीव भेदज्ञानके प्रयोगके लिये सक्षम नहीं है, योग्यतावान नहीं है । वह सिद्धांत आचार्यश्रीने १७-१८ गाथामें स्थापित किया है । इसलिये जो तीन पदोंकी व्यवस्थित चर्चा हमारे इस शिबिरके स्वाध्यायके दौरान हुई उसका मैं जरा पुनरुक्ति करता हूँ ।

सर्व प्रथम परिभ्रमणकी वेदना व तरसना पूर्वकका वैराग्य व उदासीनता प्राप्त होती है जो कि एक दुसरे से Connected (जुड़े हुए) है । ऐसे मुमुक्षुकी भूमिका का पहला व दुसरा Stage (भूमिका) शुरू हुआ । यानी कि प्रथम चिंतना-वेदना व तरसना-का - Stage व दुसरा उदासीनताका और तीसरा Stage आता है मोक्षअभिलाषा-पूर्ण पदकी वांछा ; पूर्ण पदकी भावना का ।

यहाँ एक प्रश्न खडा हो सकता है कि ऐसा प्रतिपादन करके कृपालुदेव कहना क्या चाहते हैं ? इसके सिवा और भी कोइ बात है क्या ? हा ! बहुत बड़ी बात है । इसमें Scientific (वैज्ञानिक) बात है । विज्ञानका एक नियम है कि "Difference of Potentiality Produces Velocity -(उपर-नीचेकी दशा / अवस्था का अंतर बल-संवेगको उत्पन्न करता है ।) कोइ भी परिणाम गतिमान कब होता है ? Velocity- बेलोसिटी, माने इसमें Force-(बल) कब आता है ? गतिमें कब आता है ?" शास्त्रभाषामें उसको संवेग कहते हैं । सम, संवेग, निवेद, आस्था व अनुकंपा उसमें एक संवेग आता है ।

देखिये ! सामान्यतः सभी मुमुक्षुओंकी यह एक Complaint (फरियाद) रहा करती है कि परिणाम कभी अच्छे चलते हैं व कभी कमजोर पड़ते हैं । हम जब यहाँ (निवृत्तिकेत्रमें) आते हैं तब थोड़े ठीक चलते हैं परन्तु जब वापिस घर जाते हैं तब फेरफार हो जाता है । स्वध्याय करते हैं, इकट्टे होकर सत्संग करते हैं,

वांचन करते हैं फिर भी परिणाममें चढाव-उतार होता रहता है उसका कारण क्या ? बढ़ती श्रेणीके परिणाम क्यों नहीं होते हैं । उतरोत्तर दिन-प्रतिदिन मुमुक्षुता वर्धमान होती जाय, नीचे नहीं पड़े ऐसे परिणाम क्यों नहीं होते हैं ?

कारण यह है कि यथार्थरूपसे, ज्ञानीकी आज्ञा अनुसार मुमुक्षुताकी भूमिकामें प्रवेश हुआ नहीं है इसलिये संवेग नहीं आता है । संवेग कब आता है ? मोक्षपदका स्वीकार ध्येय पूर्वक हो तब निर्धार हो तब आता है क्योंकि यह 'मोक्षपद' सर्वोत्तम उचाई का अवस्था है और खुद अभी तलहटीमें खड़ा है । यह उचाइ और तलहटी के बीच की Difference of potentiality की समझ पहली-पहली वहां आती है कि जब उसे मोक्षपदका निर्धार होता है तब और तभी Speed (गति) आती है, संवेग उत्पन्न हो आता है । (तब उसे लगता है कि अरें !) है !! इतना सारा काम मेरा बाकी है !! (वरना) उसके पहले तो पाँच शास्त्र पढ़े उसमें अहम् आ जाता है कि मुझे बहुत ज्ञान है, बहुत समझमें आता है । परन्तु जैसे ही यह अंतर देखता है तब लगता है परन्तु मैं तो एकदम तलवेमें बैठा हूँ । बहुत काम बाकी है । झपट किये बिना नहीं चलेगा । अब एक क्षण भी गवाना मुझे नहीं पुसायेगा, मेरे पास समय नहीं है । बहुत बड़ा काम हाथमें लिया है । ५० हजार करोड़के Project से भी बड़ा काम है । फालतुं वख्त मिले ऐसा नहीं है । मुझे मेरा काम करना है ।

पत्रांक-१०५में कहा है कि "एक पल भी उपयोगसे बितानेवाला " ऐसा उपयोग कब आता है । सहजरूपसे कब आता है ? कि जब मोक्षका ध्येय होता है तब आता है । उतना सारा काम बाकी है, अब मुझे नखरा करना पुसाता नहीं । झपट करनी

होगी । धीरे धीरे चलना नहीं पुसायेगा । आज ही कार्य करना है, अभी ही कार्य करना है व शीघ्र ही करना है । ऐसा जो Initiative Mood (संवेग) उत्पन्न होता है वह मोक्षपदके स्वीकारमें आता है ।

यह बहुत बड़ी बात है । कृपालुदेवने मोक्षपदकी जो स्थापना की वह सम्यक्दर्शनको निमंत्रण देनेकी एक Solid (ठोस) योजना है । योजनाबद्ध तरीकेसे चलने जैसा है, वरना एक स्क्रु लकड़ेंमेंसे निकालना भी कठिन है । वैसे ही नहीं खींच सकते हैं । उसके लिये स्क्रु ड्राइवर चाहिये । यह योजनाका विषय है । क्रम के संबंधी तो पूरा ८३-नंबरका पत्र लिखा है । पत्र मनसुखराम सुरीराम पर लिखा है । जिन महात्माओंनें अनेक प्रकारसे क्रम बांधे हैं, वे महात्मा जयवान हो । और उन्हें त्रिकाल नमस्कार हो ।

अनेक प्रकारसे, इस कार्यमें विध-विध पहलुओंसे क्रमका विषय है । यह बहुत विचार करने जैसा है । गहराईसे विचार करने योग्य है । और मुमुक्षुताके प्रारंभसे लेकर सम्यक्दर्शन तक का क्रम है । अगर इस क्रमका पालन ज्ञानीकी आज्ञानुसार बराबर करते हुए चले और सिद्धि प्राप्त नहीं हो ऐसा " न भूतो, न भविष्यति" अर्थात् नियमसे सिद्धिकी प्राप्ति होगी । एकदम स्पष्टरूपसे समझ सके ऐसी बात है ।

अनुभवी पुरुष अपने अनुभवसे जो बात करते हैं; उसमें शंकाका तो कोई अवकाश नहीं है ; बल्कि जैसे-जैसे उनके मार्ग पर हम आगे बढ़ें, कदम रखे, वैसे वैसे उनके अनुभवकी हमें प्रतीति होती है । हमारे ही अनुभवसे वह बात स्पष्ट होगी । इसलिये शरूआत वहाँसे कर देनी चाहिये । इस तरह सम्यक्दर्शनका निवास होनेमें मोक्षपदके स्वीकारकी जो योजना है, वह बहुत ही महत्वपूर्ण है ।

यह पाँचवा पद (समाप्त) हुआ ।

छठा पद : ``उस मोक्षका उपाय है'' उपाय कहो, मार्ग कहो एकार्थ है । ऐसे मोक्षपद तक पहुँचनेके लिये उसका व्यवस्थित-सुव्यवस्थित उपाय है । अन्य दर्शन व जैनदर्शनमें (यह अंतर है) ।

मैं अन्य दर्शनसे आया हूँ । इसलिये थोड़ा समझनेका प्रयत्न किया हुआ है । भागवत, रामायण, गीता, उपनिषदमें थोड़ा थोड़ा सिर भिड़ाया है । उन दिनों मे थोड़ी संशोधक वृत्ति थी । इसलिये यहाँ-वहाँ माथा मारकर खोजनेका प्रयत्न किया था मार्ग व उपाय क्या है ? वह खोजनेका प्रयत्न करने पर भी कुछ हाथ नहीं लगा था; और दूसरा उतना Scientific (वैज्ञानिक) भी नहीं लगा था । Logic (न्याय) तो बहुत है उन लोगोंके पास, न्यायके बड़े बड़े ग्रंथ है, अध्यात्म भी है, परन्तु जो सुव्यवस्थित प्रतिपादन, जैन दर्शनमें प्रमाण, नय, निक्षेप और उसकी जो सभी संकलनाएं हैं वे सब Extra Ordinary (अद्भूत) है । किसीसे बराबरी नहीं हो सके (ऐसी है) । इतना जबरदस्त सुव्यवस्थित प्रतिपादन है । हर एक बात योजनाबद्ध है । फिदा हो जाय ऐसा विषय है । और Most Scientific (एकदम वैज्ञानिक) व उतना ही Practical है ।

सुख-दुःखका Problem (समस्या) तो संसारके सभी मनुष्योंको है । दुनियामें बुद्धिशाली मनुष्यों नहीं रहते हैं क्या ? ऐसा तो हम नहीं कह सकते हैं कि लोगोंमें बुद्धि नहीं है । बड़े-बड़े इन्जिनियर यह स्पुटनिक Sputnik बनाते हैं न ! मिसाईल तक पहुँचे ही तो है न ! बुद्धि तो काम करती है परन्तु सुख-दुःखका Problem को वे Solve (हल) नहीं कर सके हैं । उन लोगोंने बहुत बुद्धि चलायी है । बहुत संशोधन किये हैं । काफ़ि भौतिक साधनोंका विकास किया है । जमीनके अंदर Tunnel टनेल बनाकर उसमें रेल को

दौड़ाई है । अब तो रेल पटरीसे उपर हवामें ४०० मीलकी गतिसे दौड़ने लगी है । फिर भी सुख-दुःखका Problem (समस्या) कोई हल / Solve नहीं कर सका है ।

एक बहुत ही बुद्धिशाली आदमीको प्रश्न किया था कि Have you materialised the happiness ? (क्या आप सुखको प्राप्त कर सके हो ?) (पश्चिम के लोग) Materialistic People (भौतिकवादी लोग) है । अभीकी पुरी दुनिया ही Materialistic (भौतिकवादी) है । सुईच दबाते ही बत्ती होती है और पत्ता लगता है कि बिजली है । वरना बिजली आंखोसे नहीं दिखती है । तारमें बिजली दिखती कहाँ है ? Materialize (प्राप्त) होना चाहिये तब उसका अस्तित्व नक्की होता है । सुख और दुःखको आप कैसे Materialize (प्राप्त) करते हो ? तो कहते हैं कि अभी तक वह बात तो हमने सोची ही नहीं है । बाकी तो पूरी दुनिया घुम फिरे हैं । सुख-दुःखको कैसे Materialize (प्राप्त) करना ? वह बात जैन दर्शनमें है । (उन्होंने कहा) दुनिया भरके सभी धार्मिक ग्रंथ पढ़े हैं लेकिन एक जैन दर्शनको छोड़कर । इसमें (जैनदर्शनमें) जैसे-तैसे का काम नहीं है अथवा बुद्धिवाले भी इसमें थक जाते हैं । **“थाके अति मतिमान”** ऐसा विषय है । इस जैन-दर्शनमें परमाणुके विज्ञानके अनुसार परमाणुके गुणधर्मो व जीवके विज्ञान अनुसार जीवके गुणधर्मो (और) उन (दोनोंके) गुणधर्मोसे आपसमें होते हुए Action-Reaction (क्रिया और प्रतिक्रिया) से उत्पन्न होनेवाले पर्याय व उसका Solution, उस समस्याका समाधान Problem को Solve (हल) किया है । वैज्ञानिक पद्धतिसे - अनुभवसिद्ध पद्धतिसे जैनदर्शनके सिवा अन्यथा कहीं भी (समाधान) नहीं मिलता है । और यह बात जब इस तरहसे देखनेमें आती है तब मोक्षका उपाय भी एक ही जगह दिखता है । विषयका

अनुसंधान तो इस तरह है कि मोक्षका उपाय क्या है ?

मोक्षका उपाय और मोक्ष - सर्वज्ञ वीतराग जो हैं एक ही जगह होते हैं । इसके सिवा इसकी योजना व उपाय अन्यत्र कहीं देखने मिले ऐसा नहीं है, ऐसा एक विश्वका अजोड़ दर्शन है । हमारे सद्भाग्यसे हमें प्राप्त हुआ है । हमारे हितके खातिर हम इसमें रस लें, इसकी गहराईमें जायें तो शाश्वत कल्याण हो ऐसा अवकाश है । दूसरोंको इतना अवकाश नहीं है जितना हमें है । हम कितना लाभ लेते हैं वह हमारे इच्छा पर आधारित है । इस तरह यह महत्वपूर्ण विषय है । मार्गका जो विषय है वह बहुत ही गंभीर विषय है । उसका स्वाध्याय हम कलकी बैठकमें करेंगे । समय समाप्त हुआ ।



लोकसंज्ञाको श्रद्धाके साथ सम्बन्ध है । जो लोगोंके अभिप्राय पर जीता है, उसको खुद पर श्रद्धा नहीं है । जिसको खुदमें श्रद्धा है उसको लोगोंकी परवा नहीं होती । स्वयंकी निर्दोषता ही निःशंकताका आधार होनी चाहिये । सत्यको दूसरेके प्रमाणपत्रकी जरूरत पड़े तो, वह पंगु हो जाये । लोगोंके अभिप्रायको खरीदनेवाले सत्यको बेचकर आत्मघात करते हैं । ऐसे जीवनमें शांति नहीं होती । सम्यक्मार्गपे चलनेवाला स्वतंत्र विचारक, किसीकी भी परवा किये बिना, मस्तीमें जीता है । उसे कोई घटना या दुर्घटना चलित नहीं कर सकती, इतनाही नहीं बल्कि सर्व प्रसंग मार्गकी दृढ़ता होनेमें उसको उपकारी होते हैं । (श्रद्धेय पू. भाईश्री)

प्रवचन - ७

दि-३१-७-१९९६ सुबह

श्रीमद राजचंद्र वचानामृत पत्रांक-४९३ चल रहा है । कलके स्वाध्याय में पाँचवाँ "मोक्षपद है" उसका हमने संक्षेपमें विचार किया । कृपालिदेवने जो छः पदका अनुक्रम रखा है, उस अनुक्रममें भी Sequence (क्रमसर) बनानेमें भी बहुत विचक्षणता है । मोक्षका उपाय वह मोक्षमार्ग और मोक्षका फल मोक्ष है । मोक्षपदका प्रतिपादन पहले किया है व मोक्षमार्गका प्रतिपादन बादमें किया है । उसका भी एक सबल कारण है । इसके पीछे भी कोई पारमार्थिक हेतु है । वह ऐसा है कि अगर मोक्ष ही नहीं होता हो तो यानी कि जीवकी संपूर्ण शुद्धता होती ही नहीं हो तो, किसी एक मान्यता के अनुसार प्रलय हो जाये, सभी अत्माओं का नाश हो जाये और बादमें वापिस उत्पन्न हो जाये, अगर ऐसा होता तो यह मोक्षमार्गका परिश्रम करने का नहीं रहता (व्यर्थ गिना जाये)

जो (जीव) ऐसा स्वीकार करता है कि कषायादि दोष कम होते हैं और जब कम होते हैं तो क्षीणभी हो सकते हैं तब उसे खुदको संपूर्ण शुद्धताका स्वीकार आता है कि मैं ऐसा हो सकता हूँ, होने योग्य हूँ क्योंकि मेरा स्वरूपही ऐसा है । निजस्वभाव (शुद्ध) स्वरूप है । शुद्ध आत्मस्वभावरूप मोक्ष है ऐसा आखरी वचन है ।"जो शुद्ध आत्मस्वभाव है, वही मोक्षपद है ।" अतः जैसा स्वरूप

है ऐसा प्रगट हो सकता है । इतना विश्वास (जिसको) आता है वही मोक्षमार्गके उद्यम कर सकता है । जिसे ऐसा विश्वास न हो उसे मोक्षमार्गके उद्यमका बल कहासे आयेगा ? कि नहीं आ सकता, यह समझमें आये ऐसी बात है । इतना पाचवाँ पद "मोक्षपद है" उसमें लिया है । जिसके संबंधित कल स्वाध्यायमें कुछ एक महत्वपूर्ण बातें हो चुकी ।

अब छठा पद : "उस मोक्षका उपाय है ।" ऐसा नहीं है कि मोक्ष तो बहुत उंची अवस्था है इसलिए उसका कोई उपाय होगा कि नहीं कौन जाने ? ऐसी शंका या अविश्वास करने योग्य नहीं है । मोक्षका उपाय है और वह नियत उपाय है । तीनों कालमें उसका नियत उपाय है । नियत माने सुव्यवस्थित उपाय है । "एक होय त्रण काळमां परमारथनो पंथ ' आत्मसिद्धि गाथा-३६ वह मोक्ष का उपाय जो है वही मोक्ष पानेकी कार्यपद्धतिकी रीत है । मोक्षका उपाय क्या है ? कि मोक्ष पानेकी कार्यपद्धति की रीत है । यह जो कार्यपद्धतिकी रीत है वह कार्यपद्धति स्वयं ही परिणमनस्वरूप है । प्रयोगात्मक होनेसे उस विषयको उस भूमिकामें प्रवेश किये बिना कोई बता नहीं सकता ।

एक प्रश्न कल हुआ था कि, "सत्पुरुषको कैसे पहचाना जाये ? उन्हें पहचाननेमें कोई खास बात है ? खास-खास बातें तो अनेक हैं परन्तु उसमें से यह एक खास बात है कि कार्यपद्धतिकी रीत वही बता सकते हैं कि जिसको वह परिणमनगोचर हो । वरना शब्दार्थ, भावार्थ, नयार्थ, मतार्थ इत्यादि विद्वता अनुसार कोई भी कर सकता है, जितनी विद्वता हो उसके अनुपातमें । परन्तु प्रयोग पद्धति जो है, उसका अन्दरका जो रहस्य है जो Secret है वह तो जो स्वयं प्रयोग करता है उसको ही समझमें आता है और

वही यत्किंचित व्यक्त कर सकता है । पूराका पूरा प्रयोगतो वाणीगोचर भी नहीं है, संकेतमात्रपने वाणीगोचर है । क्योंकि आत्मा की निर्विकल्पदशा जो है, वह जब विकल्प है तो वचनातित तो है ही । ऐसा कहनेकी शायद ही जरूरत है । अतः ज्ञानीपुरुष यत्किंचित रूपसे जितना वचन गोचर करते है वह भी अपने निज सामर्थ्यसे करते है ।

समयसारजी की पाँचवी गाथामें कुंदकुंदाचार्यदेव प्रतिज्ञा करते है कि इस ग्रंथमें, इस शास्त्रमें मैं 'एकत्व-विभक्त' आत्मा को दिखाऊंगा । मेरा हेतु तो शुद्धात्माका दर्शन करानेका है; ऐसी प्रतिज्ञा की है । अमृतचंद्राचार्यदेव कहते है कि मेरे निज वैभवसे यह बात करूंगा । निज वैभव माने अनुभवका वैभव । मेरे गुरु, अपरगुरु व परंपरा गुरु और मेरे जो प्रत्यक्ष गुरु है उनकी कृपासे, उनके अनुग्रहसे व मेरे निज वैभवसे (आत्माको बताऊँगा) । गुरु को नहीं भूले है । और कोई भूलते भी नही (क्योंकि यह गुरुका स्थान ही ऐसा है) । अतः मोक्षका उपाय वह बहुत महत्वपूर्ण विषय है सभी साधकोकें लिये महत्वपूर्ण है ।

ग्यारह अंग व चौद पूर्व बारह अंग - उन बारह अंगोंमें अध्यात्मकी जो सूक्ष्म चर्चा है वह सूक्ष्म चर्चा यह मोक्षमार्गकी है । वह सबसे सूक्ष्म चर्चा है वह मोक्षमार्गकी है । सारांश भी वही है कि कार्यभूत परिणमन, अगर कैसे परिणमन करना उसकी खबर नही पड़े, समझ ही नही हो तो, कैसे काम करना उसकी ही हमें खबर नही हो तो फिर आगे बढ़नेकी कोई बात रहती ही नही । बल्की कहेनाका मतलब यही है कि बिनअनुभवी पुरुष हो तो यह बात (यह मार्ग) कहेने में उसका सामर्थ्य नही होता और उसकी वाणीमे वैसा निमित्तत्व भी नही होता । कृपालुदेवने पत्रांक ६७ में इस संबधी बहुत विस्तार

किया है । यहाँ हमलोग मोक्षका जो उपाय है उसके बारेमें कृपालुदेवके शब्दोको अनुसरन करते हुए विचार करें ।

“यदि कभी ऐसा ही हो कि कर्मबंध मात्र हुआ करे तो उसकी निवृत्ति किसी कालमें सम्भव नहीं है,....” प्रति समय संसारी जीव कर्मबंधन करता है । नये कर्म बांधता है व पुराने उदयमें आकर छूटे पड़ते है, खिर जाते है , निर्जरा होती है । उसे अकाम निर्जरा कहते है । इस तरह कर्मके परमाणुकी एक Cycle (चक्र) चल रही है । पुरानेका प्रति समय जाना व नये का प्रति समय आना । इस तरह पुराने कर्मतो उतने ही रहते है उसकी चिंता करनेकी जरूरत नहीं है, नये सब स्थिति मर्यादा लेकर आते है वह घरका स्वामी है और कर्म जो वह आगंतुक (महेमान) पदार्थ है । आते है और उसकी स्थिती पूरी होने पर जाते है । फिर पुरुषार्थसे उसकी स्थिति कम कर सकते है । यह सब कर्णानुयोगका विषय है परन्तु कर्म आते है व जाते यह बात नक्की है । अब जब वे जाते है तब अगर नये बांधने में नहीं आये अथवा साधकदशामें थोड़े आये और ज्यादा जाये । इस प्रकारकी जो कार्यपद्धति है उसके कारण अंतमें सभी कर्म एकबार खत्म हो सकते है ।

आगे कहते है. “यदि कभी ऐसा ही हो कि कर्मबंध मात्र हुआ करे तो उसकी निवृत्ति किसी कालमें सम्भव नहीं है, परंतु कर्मबंधसे विपरीत स्वभावभाले ज्ञान...” पहला पद ज्ञानका लिया है । साधनामें ज्ञानकी प्रधानता है । एक-एक बातमें कृपालुदेव अपने अनुभवसे क्रमको दिखाते जाते है वह बात हरएक जगह अलग अलग पद आये वह क्रमका विषय समझना और कईबार कुछएक परिणाम अविनाभावीरूपसे एक साथ होते हैं उसे भी यथासंभव समझना चाहिये ।

“...परन्तु कर्मबंधसे विपरीत स्वभावभाले ज्ञान दर्शन, समाधि, वैराग्य, भक्ति आदि साधन प्रत्यक्ष हैं,” ऐसे पाँच पद लिये हैं, उसमें ज्ञान दर्शन, समाधि - उसमें समाधि है वह चारित्रको सुचित करता है । समाधि माने स्वरूपमें लीनता । जो विपरीत ज्ञानसे, जो विपरीत श्रद्धासे व जो विपरीत आचरण रूप परिणमनसे जीवको कर्मबंध होते हे, उसको मिटाकर, अविपरीत ज्ञान, अविपरीत श्रद्धान व अविपरीत आचरण करनेमें आये तो वह कर्मबंध मिट सकता है । और उसको ही मोक्षमार्ग कहा है ।

तत्त्वार्थसुत्रमें उमास्वामी महाराजने “दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः” ऐसा कहा है । मोक्षमार्गमें ये तीनों एक साथ होते हैं । मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन, व मिथ्या चारित्र यह सब आगम भाषा है । जैन आगमोंकी परिभाषामें सम्यक्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र ऐसे शब्दोंका इस्तेमाल होता है । सादी भाषामें विपरीत या अविपरीत कहें तो भी चलता है ।

वैराग्य (माने) उदासीनता । ऐसा कभी नहीं बनता है कि पाँच इन्द्रियोंके विषयमें या किसी भी उदयमें - अपने उदयके कार्यमें, उदयके कालमें वैसा का वैसा रस हो फिर भी जीवको आत्मशुद्धि हो या होनेका प्रारम्भ हो, ऐसा नहीं बन सकता है । क्योंकि वैसे अवैराग्यभावसे तो कर्मका बंधन है या परकी आसक्ति है । वैराग्यमें क्या है ? पर की अनासक्ति है । आसक्ति टूटती है । परपदार्थ प्रतिका जो खिंचाव है Attachment है उसमें फर्क पड़ता है । परपदार्थके प्रति झुकता है, तभी तो उन परमाणुओंका (कार्मणवर्गणा) आना होता है । भले आते हैं तो स्वयं ही परन्तु उसका निमित्त तो (जीवके परिणामका) परपदार्थकी ओर झुकना वह है । अतः वैराग्य जो है वह तो मुमुक्षुजीवकी प्रथम भूमिकासे उत्पन्न होता हुआ

ऐसा एक पर्याय है कि जिसमें नीरसपना व उदासीनता आये बिना रहते नहीं हैं ।

प्रथम भव-भय अर्थात् परिभ्रमणका जो भय, जन्म-मरणका जो भय है वह चिंता उत्पन्न करता है, वेदनाको उत्पन्न करता है । आकुलता उत्पन्न करता है । जिसमें कि सबसे पहले सभी आसक्तियाँ की कम होने की शुरुआत हो जाती है । यथार्थ वैराग्य यहाँ से शुरु होता है । और फिर मुमुक्षुकी सभी आगेकी भूमिकामें वैराग्य क्रमशः बढ़ता जाता है । उदासीनता क्रमशः बढ़ती जाती है ।

ज्ञानदशामें तो प्रत्यक्ष है कि परपदार्थमें जो सुखाभास होता था वह आभास ही खत्म हो चूका है । फिर आसक्ति हो कैसे सकती है ? कि नहीं हो सकती है । अतः ज्ञानी तो सहज वैराग्यवंत व उदासीन होते ही हैं । परन्तु वह तो उनकी यथार्थरूपसे विकसित हुई दशा है । मुमुक्षुकी भूमिकामें यथार्थरूपसे प्रयत्न करके वहाँ पहुँचे हैं । ऐसा नहीं है कि हम तो अभी ज्ञानी हुए नहीं इसलिये हमें अभी वैराग्य नहीं है, और जब ज्ञानी बनेंगे तब होगा, ऐसी नहीं है । प्रथम सीड़ी पर पैर रखते ही उदसीनता चालु होती है । उदयभावमें नीरसपना, उदयके कार्योंमें नीरसपना आनेकी शुरुआत पहले से ही होती है ।

वैराग्य भी एक साधन है व भक्ति - बहुमान भी एक साधन है । कुछ लोग भक्तिको मात्र रागकी पर्याय समझते हैं, वह बहुत बड़ी भूल है । अगर मात्र पद गानेका राग हो, और भाव ऐसे नहीं हो, फिरभी आवाज अच्छी हो और गला भी अच्छा हो इसके कारण गानेका - भक्ति करानेका मन होता हो जबकि साथमें भाव ऐसे नहीं हो, तब उसे मात्र राग ही है ऐसा कहें तो वह ठीक बात है । परन्तु यथार्थ भक्ति जो है वह रागकी पर्याय नहीं है

बल्कि वास्तवमें ज्ञानकी पर्याय है । आप कहेंगे कि भक्ति वह ज्ञानकी पर्याय कैसे हैं ?

जैसा देव, गुरु व शास्त्रका वीतरागी स्वरूप है, जो कि हमारे कल्याणमें निमित्तभूत है उसका यथार्थ ज्ञान करके उनके प्रति बहुमान उत्पन्न होना वह भक्तिका पर्याय है । सत्पुरुषकी पहचान होकर उनके प्रति जो परमेश्वरबुद्धि आदि जो बहुमान हुआ वह भक्तिका पर्याय है । इस भक्तिमें ज्ञानकी प्रधानता है । राग तो बेचारा उसके पीछे-पीछे घसीटकर परिणमन करता है । क्यों कि अभी जब तक वीतरागता नहीं हुई है तब तक चारित्रगुणमें राग उत्पन्न होगा ही होगा । चारित्रगुणमें दो पर्याये हैं । एक तो सरागता व दूसरा वीतरागता, अथवा तो स्थिरता या अस्थिरता ।

जितने अंशमें राग गया व अस्थिरता गई, उतने अंशमें वीतरागता व स्थिरता उत्पन्न होगी । परन्तु छद्मस्थ अवस्थामें जो (राग) रहा (है) तो वह क्या काम करेगा ? कि ज्ञानमें जो बहुमान आया, ज्ञानमें पहचान के कारण (जो बहुमान आया) उस (ज्ञानको) वह अनुसरण करेगा । वह इधर-उधर नहीं जा सकेगा । इस तरह रागकी पर्याय ज्ञानके साथ जुड़ी हुई रहेगी । (राग) उसे अनुसरनेवाला रहेगा ।

श्री समयसारजीका एक दृष्टांत देता हूँ कि अनादिसे जीवको स्वरूपकी पहचान नहीं है, मूल शुद्ध आत्मस्वरूपकी पहचान नहीं है, दूसरा समकित नहीं हुआ है, बीजज्ञान नहीं हुआ है, तब तक उस जीवके व्यवहारनयके विषयभूत रागादि भाव-पर्याये, अनेक प्रकारके जो गुणभेद इत्यादि जो प्रकार है उस व्यवहारनयका पक्ष रहता है । समयसारजीकी १४२, १४३, १४४ गाथाओंमें इस विषय को आचार्यदेवने लिया है । १४३ गाथामें कहते हैं कि जब पक्षातिक्रान्त होता है तब (जीवको) सम्यक्ज्ञान व सम्यग्दर्शन होता है । जब

पक्षातिक्रान्त होता है तब क्या होता है ? (कि) व्यवहारनयका पक्ष छूटकर निश्चयनयके पक्षमें आता है बादमें पक्षातिक्रान्त होता है, इसके पहले किसीको भी सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता है । जिस तरह सत्पुरुष की पहचान हुए बिना कोई आत्माको नहीं पहचान सकता, वैसा ही यहाँ पर नियत क्रम है कि पहले जीवको व्यवहारनयका पक्ष होता है उसका पक्ष छूटकर उसको शुद्धत्माका पक्ष होता है । अभी (तो) पक्ष पलटता है । पक्ष नहीं पलटता तब तक सम्यक्ज्ञान व सम्यग्दर्शन नहीं होता है - ऐसा प्रतिपादन है ।

उस (जीवको जब) शुद्धात्माका पक्ष होता है तब दूसरे अनेक प्रकारके शुभ परिणाम बंध होकरके अकेले अपने शुद्धात्मस्वरूप सम्बन्धी विकल्प चलने लगते हैं । (कि) "मैं परमानन्दमय हूँ", "मैं शुद्ध ज्ञानस्वरूपी हूँ", "मैं ऐसा हूँ", "मैं ऐसा हूँ", "मैं शुद्ध हूँ", "एक स्वरूप हूँ", "त्रिकाल एकरूप स्वरूप ही रहता हूँ", "एक हूँ" ।

"हूँ एक शुद्ध सदा अरूपी ज्ञानदर्शनमय खरे...." - समयसार - गाथा - ३८ । यह गाथामे जो शब्द लिया है ऐसे विकल्प चलते हैं । जब स्वरूपकी पहचान हुई तब लक्ष तो शुद्धत्माका हो चूका, और ज्ञान से शुद्धात्मा खिसकता नहीं । नजराया करता है । अस्थित्व ग्रहण हुआ है न ! इसलिये नजराया करता है । वहाँसे खिसक नहीं सकता परन्तु चारित्रगुणमें अभी वीतरागता प्रगट नहीं हुई है । लक्षमें आत्मा है परन्तु चारित्रगुणमें जब लीनता होती है तब सम्यग्दर्शन होता है । ज्ञानमें अकेला आत्मस्वरूप आया इसलिये सम्यग्दर्शन हुआ ऐसा वहाँ नहीं लिया । भले ही निश्चयनयका पक्ष हो और विकल्प भी मात्र शुद्धत्माके, आत्मस्वभावके चलते हो तो भी जब वे मिटते हैं तब ही निर्विकल्पदशा होती है ।

कहनेका आशय क्या है ? कि जब जीवको अपना आत्मकार्य

करना हो तब उसको जो भक्ति के परिणाम होते हैं वे बहुमानके परिणाम ज्ञानसे होते हैं । उसे स्वरूप भक्ति भी कहते हैं । उसे निश्चय भक्ति भी कहते हैं । कुन्दकुन्दाचार्यदेवने इस विषय पर नियमसारमें पूरा एक प्रकरण लिखा है । इस भक्तिके जो परिणाम है उसके बहुतसे भेदों का वहाँ वर्णन किया है । (जैसे कि) प्रवचनभक्ति, सिद्धभक्ति, आगमभक्ति, गुरुभक्ति, देवभक्ति, स्वरूपभक्ति ऐसे अनेक प्रकार लिये हैं । इन सबोंमें ज्ञानकी प्रधानता ली है (क्योंकि) ज्ञानपूर्वक बहुमान आया है । और इस तरह जितनी महिमा है उतनी भासित हुई है, अवभासित हुई है । और ये महिमायुक्त जो परिणाम है - वह भक्ति है । ये सभी साधन प्रत्यक्ष है ।

“जिन साधनोंके बलसे कर्मबंध शिथिल होता है,” (जिन साधनोंके कारणसे कर्मबंध शिथिल होता है और) “उपशान्त होता है, क्षीण होता है” जिन साधनोंके कारणसे कर्मबंध शिथिल होता है और उन साधनोंके बलसे कर्मबंधका जो शिथिलपना हुआ उस बातको पहले इसलिये लिये हैं कि जब साधकको यथार्थ साधनरूप परिणाम उत्पन्न होते हैं तब सबसे ज्यादा फर्क कर्मके अंदर जो फलदान शक्ति, शास्त्रभाषामें जिसे अनुभाग कहते हैं, उसमें पड़ता है । कर्मका अनुभाग माने जब उदयमें रस आये तब तीव्ररूपसे आये या मंदरूपसे आये, मंद रससे आये या तीव्र रससे आये ऐसा जो प्रकार है उसे अनुभाग कहते हैं । पहले उसकी ताकत टूटती है । शिथिल होता है माने क्या होता है ? उसकी शक्ति हीन होती है । जब शक्ति हीन होती है तब वह दबती है । शक्ति कम हो तो दबे । शक्तिवाला किसीसे नहीं दबता । इस तरह यहाँ साधककी कार्य करनेकी कार्य-पद्धति व्यवस्थित है । यह भी व्यवस्थित कार्य-पद्धति ही है, इस तरह शिथिल होकर उपशमको प्राप्त होता है । उपशम होता

है व सत्तामें रहता है । जीवमें योग्यता रह जाती है । और जब क्षीण होता है तब उसका सर्वनाश होता है । अथवा जीवके प्रदेशोंसे सर्वथा वियोग होता है । और भावमें भी उस प्रकारका नया विभाव उत्पन्न होनेकी शक्यता नहीं रहती है । **“इसलिये व ज्ञान, दर्शन, संयम आदि मोक्षपदके उपाय है”**

मोक्षमार्गमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र वही मोक्षका साक्षात् कारण है । आत्माका श्रद्धान (अर्थात्) निर्विकल्प स्वानुभवकालकी प्रतीति, निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान व उसी समय शुद्धोपयोग रूप स्वरूपलीनता का चारित्रगुणका वीतरागी पर्याय, ये तीन प्रकारके जो परिणाम है व एक साथ होते हैं । तीनों एक साथ होते हैं इसलिये एकता ली है । गुणभेद से भेद है (परन्तु) मोक्षमार्गके भेदसे उसका भेद पड़ना योग्य नहीं है । मोक्षमार्ग एक ही है । ऐसा ही मोक्षमार्ग है । अंतरंग मोक्षमार्ग जो है तीनों काल एक सरीखा होता है । उसमें कभी मार्ग भेद नहीं होता कि सम्यग्दर्शन हुए बिना या सम्यक्ज्ञान या सम्यक्चारित्र हुए बिना किसीको मोक्षमार्ग चालु हो जाय, ऐसा कभी नहीं बनता है । इसका मतलब क्या ? कोई ऐसा कहता हो कि हमने जो शास्त्र आदि पढ़े हैं, उसके अनुसार समझ करके विश्वास किया है सिर्फ आचार्य श्रीगुरु कहते हैं इसलिये नहीं बल्कि हमारी विचारशक्तिसे, तुलनाशक्तिसे भी हमने बराबर समझकरके सम्मत किया है इसलिये हमे श्रद्धा है और इसके लिये कोई भी गाथा लाईये, कोईभी शास्त्र लाईये, उसकी यथार्थ समझवाला हमारा ज्ञान है इसलिये हमें सम्यक्ज्ञान भी है, क्योंकि हमारे अर्थघटनमें शब्दार्थसे लेकर नयार्थ तक कहीं भी भूल नहीं होती है, नयार्थ जो है वह जैन आगमको समझनेकी खास प्रकारकी पद्धति है - विशिष्ट प्रकारकी पद्धति है जो कि अन्यत्र कहीं भी नहीं है, और

बाहरमें हमने त्याग भी किया है, सर्वसंग परित्याग करके दीक्षा भी ली है, २८ मूलगुणका बराबर पालन करते हैं, इस तरह हमारे श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र बराबर होनेसे हमें मोक्षमार्ग प्रगट हुआ है ऐसा कोई कहता है तो, वास्तवमें इस प्रकारसे मोक्षमार्ग नहीं है ।

हाँ, मोक्षमार्गीको ऐसा होता जरूर है परन्तु वह बाह्य प्रकार है । अंतरंग प्रकार में तो सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान व सम्यक्चारित्र - वह निश्चय मोक्षमार्ग है । यह निश्चय मोक्षमार्गके सद्भावमें नौ तत्त्वकी श्रद्धा के विकल्प, नौ तत्त्वकी श्रद्धा और आत्मा सम्बन्धीका द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावका परिज्ञान, और बाह्य संयम आदि, वैराग्य आदि जो भी हो, ये सभी को निश्चयमोक्षमार्गके सद्भावमें व्यवहार कहें जाते हैं, क्योंकि दोनों साथ होते हैं, दोनो साथमें रहते हैं, फिर एक हो और दूसरा नहीं हो ऐसा नहीं होता । परन्तु पहला हो तो दूसरा हो ही ऐसा भी नहीं है, क्योंकि ऐसा तो (बाह्य संयमादि) अनन्तबार हो चूका है, अंगपूर्वका ज्ञान आदि अनेकबार हुआ है ।

इसलिये यहाँ जो निश्चय उपाय कहा है उस विषयमें हमें Concentrate (एकाग्र) होना चाहिये । (व्यवहारका) ज्ञान करना इसलिये जरूरी है कि बाहरमें एक मर्यादा होती है, यानी कि मोक्षमार्गी धर्मात्माकी - साधककी गुणस्थान अनुसार बाह्य परिणामोंकी भी एक मर्यादा होती है । अगर उस मर्यादाको छोड़कर उसके परिणाम होते हो तो उन्हे निश्चय मोक्षमार्ग है कि नहीं है उसका विचार करनेकी या परीक्षा करनेकी जरूरत भी नहीं रहती है । फिरभी बाहरका आखिर बाहरका है और अंतरंग आखिरमें अंतरंग है । अंतरंग बिना का बाह्य वास्तवमें व्यवहाराभासमें जाता है, उसे व्यवहार नाम दिया नहीं जाता है ।

इस तरह ज्ञान, दर्शन व संयम - मोक्षमार्गमें जो ज्ञान, दर्शन,

चारित्र है वही मोक्षपदका उपाय है । वे वृद्धिगत होते जाते हैं और खास करके श्रद्धा, ज्ञान भले ही उतने के उतने रहे लेकिन मोक्षमार्ग तो पुरुषार्थ प्रधान है और जितना जितना पुरुषार्थ - वीर्यगुणका क्षयोपशम बढ़ता है - वह (वीर्य) साधकदशामें क्षयोपशम भावमें होता है, उतना उतना चारित्रगुणका विकास अविनाभावी रूपसे होता जाता है, और चारित्र - स्वरूपलीनता बढ़ती जाती है, या वीतरागता बढ़ती जाती है । जितनी जितनी वीतरागता बढ़ती जाती है उतने उतने प्रमाणमें रागादिका अभाव होता जाता है ।

वीतरागताके सद्भावमें रागादि जैसे के जैसे बने रहे ऐसा नहीं बनता है । चौथे गुणस्थानमें शायद (वीतरागता) की खबर किसीको नहीं भी पड़े क्योंकि वहाँ उतना (सामान्य जीवका ध्यान खिंचे उतना) बाह्य आचरण किसीको नहीं भी होता है, लेकिन पंचम गुणस्थानसे तो स्वरूपलीनता बढ़ती है । इस तरह वहाँ रागादिका अभाव हुआ तो रागपूर्वककी क्रिया का भी अभाव वहाँ लेनेमें आया है । क्योंकि वीतरागताके कारण रागकी उत्पत्ति ही नहीं होती है फिर रागपूर्वककी क्रिया तो कैसे हो ? कि नहीं हो सकती है । ठीक इस तरहसे उपर-उपरके गुणस्थानमें वीतरागताके सद्भावमें रागादिका अभाव होनेसे रागादिपूर्वक होनेवाली मन-वचन-कायाकी क्रियाका भी साथ ही साथ अभाव होनेसे बाह्यदृष्टिमें भी वह बात समझमें आती है कि यहाँ जरूर कुछ है, ऐसा बाह्य दिखाव भी होता है और उससे साधकका स्वरूप समझनेमें मदद (भी) मिलती है ।

ऐसा जो मोक्षका उपाय है उसकी चतूर्थ गुणस्थानसे लेकर आगेके सभी गुणस्थानमें, बारहवें गुणस्थान तककी व्यवस्थित विचारणा जिनागममें है, इसके बाद ही तेरहवा गुणस्थान आता है जो कि मोक्षपदका है, मोक्षमार्गका नहीं है बल्कि वहाँ तो मोक्षरूपी फल

आ गया ।

विषयका विस्तार करें तो इतना है कि यह बात तो हुई ज्ञानदशाकी और मोक्षके उपायकी परन्तु जब तक ज्ञानदशा प्राप्त नहीं हुई है तब तक हमें क्या करना ? कि तब तक भी ऐसे ही परिणाम होने चाहिये कि जिससे मिथ्याश्रद्धाका बल टूटे । जिससे की सही समझसे विपरीत ज्ञानमें विपरीत अभिप्राय मिटते जाय और उदयभावमें निरसपना (हो) । जिसको जो भी उदय हो, उसमें कोई Particular (विशेष) बात नहीं है कि इसको ऐसा ही करना चाहिये । जिसको जैसा भी प्रारब्ध कर्मका उदय हो वहाँ उसको नीरसता आनी चाहिये क्योंकि वहाँसे वापिस मुड़ना है ।

जीवके परिणामकी दिशाका अगर विचार किया जाय तो दो ही दिशा है । एक अंतर्मुख व दूसरी बहिर्मुख । संक्षेपमें उस दृष्टिकोणसे ऐसा कह सकते हैं, विचार कर सकते हैं कि जब तक जीव बहिर्मुख परिणामसे जो कुछ (धर्म साधन) करता है तब तक मोक्षमार्ग नहीं है । मोक्षमार्ग तो जीवके अंतर्मुख परिणाम ज्ञान, दर्शन, चारित्र, पुरुषार्थ आदि में है । और बहिर्मुख परिणामकी दिशासे वह विरुद्ध है । उसकी दिशा बिलकुल उलटी है । एक बहिर्मुख है और एक बिलकुल अंतर्मुख है ।

कृपालुदेवने पत्रांक ६७४ में एक बात कही है जिसके उपर फिरसे ध्यान खींचता हूँ कि, सत्पुरुष कब पहचाने जाते हैं ? वहाँ उन्होंने (कृपालुदेवने) तीन शरतें रखी है । पहचान नहीं होने के कारण पत्रांक ४१६ में लिये हैं परन्तु अभी उस विषयकी चर्चा नहीं है । सत्पुरुषकी पहचान कब हो ? "दृढ मुमुक्षुता प्रगट होने पर, तथारूप सत्समागमसे" यानीकि परम सत्संगमें, ज्ञानीके सत्संगमें दृढ मुमुक्षुता माने मोक्षपद का ध्येय एवं लक्ष्य हो जाना ।

“मात्र मोक्ष अभिलाष” मेरा सर्व उद्यम मोक्षके लिये हैं । मोक्ष के लिये ही वह जीव प्रयास करता है नहीं कि अधूरी दशाके लिए । सम्यग्दर्शन वह ध्येय नहीं है, ध्येय तो मोक्षपदका है । साधकदशातो अधूरी दशा है । और अधूरी दशा कभी आदर्श के स्थानमें नहीं होती । ऐसा आदर्श जब जीवका होता है तब मोक्ष के लिए ही प्रयास करता है । ऐसा पत्रांक २५४ के अन्दर कृपालुदेवका वचनामृत है कि, वह जीव “मात्र मोक्ष” के लिये ही प्रयास करता है । एक तो यह है दूसरा अपनी भूमिकाके अनुसार परम सत्संगमें जो खुदको लागु होता हो ऐसे उपदेशको अवधारण करता है । “अवधारण” शब्द इस्तमाल किया है । अवधारण करना माने उसका अमलीकरण करना - उसका Execution करना । To try To Excute । उपदेशबोधको Excute (अमल) करना । उतनी तैयारी - उतना Force - उतना संवेग जिस जीवको हो उसकी बात है । वरना क्या होता है ? कि बुद्धिबलसे उपदेश तो समझमें आता है परन्तु उसका अमलीकरण करनेका, अवधारण करनेका बल नहीं होता है । इसलिये मुमुक्षु नाकामियाब होता है कि क्या करें ? समझमें तो आता है परन्तु हमारा पुरुषार्थ नहीं चलता है । यद्यपि बात तो ऐसी है कि समझमें आने पर भी पुरुषार्थ नहीं चले तो समझ लेना चाहिये कि वह समझ सच्ची समझ नहीं है । सही दिखती हो तो भी उसके उपर चोकड़ी लगा देनी चाहिये, क्यों ? कि समझको और पुरुषार्थको कारण-कार्य सम्बन्ध है, हुए बिना रहता नहीं । (दृष्टांत लें) कि आपको पता चले कि शेरके भाव कम हो रहे हैं और हमारे पास जो कुछ शेर थे वे सब (बेकार) हो गये । रुपियाकी कीमत एक आना हो चूकी है । क्या आपको उसका अमल करना सिखाना पड़ता है ? कि अरे !! ऐसा हो

गया !! सीधी उसकी असर आये बिना रहती ही नहीं है । समझमें आये तो उसकी असर आये बिना नहीं रहती है । और तब ही यथार्थ समझ है । सच्ची समझ और यथार्थ समझमें यह फर्क है ।

सच्ची समझ शब्दार्थ अनुसार, भावार्थ अनुसार, मतार्थ अनुसार व नयार्थ अनुसार बराबर लगे ; लेकिन अगर उसकी असर अपनी आत्मा पर नहीं आती हो तो समझ लेना कि वे सभी अर्थ है वे अनर्थ है । यानी कि (वह समझ) शास्त्रिय अभिनिवेश का कारण होगी । जब अपनी आत्मा पर असर हो तब उस समझकी यथार्थता है । और उसमें पुरुषार्थका वेग उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता है ।

कल स्वाध्याय लिया था । सायन्सका प्रिन्सीपल (विज्ञानका सिद्धांत) है कि Difference of potentiality produces the velocity स्थितीशक्तिका तफावत गतिशक्तिका संवेगको पैदा करता है । पत्ता चले कि मुझे मोक्षमें जाना है और अभी तलवे पर खडा हुं, अभी मेरी मुमुक्षुकी भूमिकाका कोई ढिकाना नहीं है, तब संवेग उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता । उसका मोक्षके लिये प्रयास चालु हो ही जाता है ।

पात्रताके अनेक लक्षण में से (एक लक्षण यह भी है कि) जो मुमुक्षुजीव अपनी (भूमिका अनुसार) लागु होती हुई बात (सत्संग दौरान समझे परन्तु उस (समझ) का प्रयोग चालु नहीं करे तो वहाँ पात्रता की क्षति है । वर्तमान पात्रता होगी तो उसका प्रयोग चालु किये बिना रहेगा नहीं एसी एक वस्तुस्थिति है । अतः समझ यथार्थ होना वह जरूरी है । यथार्थ समझमें इस तरह कार्य होता है । अमलीकरण करना वह मुमुक्षुका दुसरा गुण है ।

तीसरा गुण है "अन्तरात्मवृत्ति परिणमित होने पर" इतने शब्द

कृपालुदेवने इस्तमाल किये हैं । उस जीवको, भले ही वह कितना भी उच्च कोटीका मुमुक्षु हो, सभी परिणाम अच्छे हो, सभी परिणाम मुमुक्षुकी भूमिकाके योग्य हो तो भी उसको उसमें संतोष नहीं होता है । संतोष हुआ कि समझ लेना कि मर गया । पर्यायबुद्धि दृढ़ हो जाती है दर्शनमोह-मिथ्याश्रद्धा तीव्र हो जाती है । उसको ऐसा लगता है कि अभी बहुत बाकी है क्योंकि मोक्षका लक्ष्य है इसलिये वह बात छूटती नहीं है । लक्ष्य कोई स्मरण या विस्मरणका विषय नहीं है । ज्ञानमें (अर्थात्) मतिज्ञानमें जो स्मरण-विस्मरणहोता है वह बात कोई ओर है और लक्ष्यमें वस्तु रहती है वह बात कोई ओर है । लक्ष्य कभी छूटता नहीं है । व्यापारीको पैसे कमानेका लक्ष्य कभी छूटता है क्या ? कोई बड़ा ग्राहक आया हो और उसके पीछे ज्यादा खर्च भी कर देता हो, फिरभी पैसा कमानेका लक्ष्य वहाँ कम हो जाता होगा क्या ? इकलौता बेटा हो उसे १००० रूपिया दिनमें खर्च करनेको नहीं देगा परन्तु अच्छा ग्राहक आया हो, बड़ी कमाई करानेवाला हो तो तब एक के बजाय दो हजार भी खर्च कर देगा एक दिनमें, (तो) वहाँ लक्ष्य बढ़ा है, वहाँ लक्ष्य कम नहीं हुआ, लक्ष्य बदल नहीं जाता ।

इसलिये कभी भी साधकको अपनी वर्तमान दशाका विकास होता हो तो भी (जिसका विकास नहीं होता हो उसकी तो चर्चा भी करनी जैसी नहीं है) उसको कभी संतोष नहीं आता । संतोष तो नहीं आता बल्कि और भी असंतोष उत्पन्न होता है कि मेरा (काम) बहुत बाकी है, मेरा बहुत बाकी है, और तब ही पुरुषार्थ उठेगा वरना नहीं उठेगा । यह एक पात्रताका Symptom (चिन्ह) है । और यह जो असंतोष है वह उसे वर्तमान विकासकी बुद्धि, मिथ्याबुद्धि- पर्यायबुद्धि-दर्शनमोहको तीव्र होने नहीं देता है । क्योंकि

ज्ञानीकी भूमिकामें तो स्वरूपका अवलंबन है, स्वरूप लक्ष है-स्वरूप लक्ष्यमें है, भले ही वे बाहुरमें काम करते हो, परन्तु उनके पास तो परमात्माका आधार है लेकिन मुमुक्षुके पास क्या है ? अभी तो उसने परमात्माका दर्शन किया नहीं है, और प्रगट (भी) नहीं हुआ है । खुद पर्यायमें खडा है फिर भी पर्यायबुद्धि-नहीं हो, और पर्याय में विकास होने पर भी पर्यायबुद्धि नहीं हो ऐसा कैसे हो ?

उसके दो गुणमें तो साफ फर्क दिखता है । जितना जितना शास्त्र अध्ययन करेगा, तत्वज्ञानका अभ्यास करेगा उतना उतना ज्ञान बढ़ा हुआ दिखता है और ज्यों ज्यों उदासीनतामें आता है त्यों त्यों आचरणमें फर्क नजर आता है । उसको ऐसा लगे कि ज्ञान भी हुआ व चारित्र भी हुआ । जैसे ही संतोष लिया कि गया (समझो) - उस ही वख्त दर्शनमोहको तीव्र करता है ।

ज्ञानियोके उपवेशमें, मिथ्यात्व व अनंतानुबंधी जो कि एक साथ जाते है उसे मिटानेका मुख्य उपदेश क्यों है ? और दूसरे (चारित्रमोह कम करनेके) उपदेशकी मुख्यता क्यों नहीं है ? उपदेश तो सभी अच्छे हैं कोई भी उपदेश खराब नहीं होता । परन्तु उपदेशका एक ही वचन सबको लागु नहीं होता । जिसकी जो भूमिका हो उसको वह लागु होता है । वैसे ही सारा उपदेश एक साधकको, एक व्यक्तिको लागु नहीं होता । क्योंकि उपदेशके स्तर भिन्न-भिन्न है । मुमुक्षुताकी प्रथम भूमिकासे लेकर मुनिदशा तक का उपदेश भगवानने दिया है । जैसे एक उपदेश सबको लागु नहीं होता वैसे एक वचन भी सभी को लागु नहीं होता है क्योंकि सभीकी योग्यता भिन्न-भिन्न है । आगमोंमें उपदेशका जो विस्तार है वह इसके ही कारण है ।

मुमुक्षु आत्माओंको मुझे क्या लागु पड़ता है ? मेरी योग्यतामें

व अयोग्यतामें यह बात, यह उपदेश किस तरह सम्बन्ध रखती है ? उतना विवेक-विचार होना चाहिये, होना जरूरी है । जिसे प्रयोजनभूत - अप्रयोजनभूत दृष्टिकोण कहनेमें आता है कि वर्तमानमें मुझे क्या लागु पड़ता है ? प्रयोजनभूत तत्त्व बहुत है, और प्रयोजनभूत बातें भी बहुत हैं, लेकिन अभी मेरी योग्यतामें किस बात का प्रयोजन है ? स्वाध्यायके समय या अभ्यासके कालमें अगर इस बात पर लक्ष्य नहीं जाता है तो भले ही वह पुरी जिंदगी स्वाध्याय किये जाय (तो भी) कभी सुधार नहीं होगा । क्योंकि उसे अपने स्वलक्ष्यी प्रयोजनकी ही खबर नहीं है ।

इस तरह मुमुक्षुको 'मोक्षपद' जो कि पांचवाँ पद है उसका आधार कहा है, कि उसके लक्ष्यमें परिपूर्ण शुद्ध निर्वाणपद है । वह उसका Target को (लक्ष्य को) प्राप्त करनेके हेतु सभी प्रवृत्ति करना चाहता है । इसलिये उसको किसी भी विकास होती हुई दशामें वह अनन्तवे भागमें है ऐसा ही लगता है ।

अंगपूर्वका ज्ञान कितना ? ११ अंग व १४ पूर्व । १२वे अंगमें १४ पूर्व है वह ज्ञान कितना ? गणधरदेवका जो उत्कृष्ट ज्ञान है वह केवलज्ञानके आगे, केवलज्ञानके आगे नहीं बल्कि दिव्यध्वनिके आगे अनन्तवे भागमें (वह ज्ञान है) । और दिव्यध्वनिमें जितना ज्ञानका - पदार्थके विज्ञानका विस्तार आया, चरणानुयोगका, करणानुयोगका, कथानुयोगका उससे केवलज्ञान अनन्तगुना अधिक है । और केवलज्ञानकी एक पर्यायसे सर्वज्ञशक्ति अनन्तगुनी अधिक है जो कि मूल शुद्धात्मस्वरूप है । जिसको समझे बिना (जीव) अनन्त दुःखको प्राप्त हुआ है ।

“जे स्वरूप समज्या विना, पाम्यो दुःख अनन्त”

ऐसे जो स्वरूप है कि जिसे समझना है, उस स्वरूपकी महानता जब तक लक्ष्यगत नहीं हो, तब तक पूरा का पूरा अन्य कहीं भी झुक जाय, तो स्वरूप तक पहुँचनेमें वह रुकावट का एक (कारण) बनता है ।

इसलिये कृपालुदेवने पूर्णताका लक्ष्य-मोक्षपद को मुमुक्षुकी भूमिकामें स्थापित किया है । और जिसके कारण दर्शनमोह यानी मिथ्याश्रद्धा भी हानि को प्राप्त होता है । ज्ञानमें भी अलग-अलग भूमिकाके योग्य निर्मलता आती है । और उस-उस भूमिकाके योग्य उदयभावमें नीरसता आती है । इस तरह दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों गुणोंमें जो फेरफार शुरु होता है वह वृद्धिगत होकर आगे जाकर मोक्षमार्गमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रके रूपमें परिणमित होते हैं । तब पूरी जाति बदल जाती है । मिथ्यामें से सम्यक् (जाति) हो जाती है ।

मिथ्या और सम्यक् वे परिणामकी जाति है । अल्पत्व और बहुत्व व परिणामकी गति है और परिणाममें जो रस है वह परिणामकी शक्ति है । उसकी सत्ता स्वद्रव्य प्रमाण होती है । सदेह, देहप्रमाण अथवा स्वद्रव्य प्रमाण होती है । इस तरह एक परिणामको, चलते हुए परिणामको, चारों पड़खोंसे बराबर, यथार्थरूपसे अन्दरसे समझनेमें आये, (सिर्फ शास्त्रवाचनसे समझ ले ऐसा नहीं) अन्दरमें चलते हुए परिणामको समझनेमें आये तो जीवको कहीं भी भूल नहीं होगा, भूल नहीं करेगा ।

इसलिये ज्ञानियोंने निष्कारण करुणा करके अनेकविध रूपसे उपदेश दिया है । सभी मुमुक्षुओंको अपनेको लागु पड़ता है ऐसा, अपनी (भूमिकाके) योग्य हो ऐसी बात ग्रहण करना चाहिये , उसका अमल करना चाहिये । और बहिरात्मवृत्ति छूटकरके अंतरात्मवृत्ति

हो ऐसी अभिलाषा रखना व उस अभिलाषापूर्वक अंतरखोज करनी, अंतरखोज करनी उतना ही नहीं बल्कि ज्ञानीपुरुषका प्रत्यक्ष समागमका योग हो तब उन्हें जो अंतरात्मवृत्ति है उसे समझनेके लिये जिज्ञासा, अपूर्व जिज्ञासा उत्पन्न करना तो ज्ञानीपुरुषकी पहचान होगी ।

कृपालुदेवने पत्रांक २५४ में कहा है कि ज्ञानी कैसे पहचाने जाय ? (कि) पहचाननकी तीव्र जिज्ञासा रखनेसे ज्ञानीकी पहचान होती है । पत्रांक ६७४ में यह तीव्र जिज्ञासामें तीन बातें साथमें ली है । कोई भी मुमुक्षुजीव आगे बढ़े तो उसे ज्ञानीपुरुषकी पहचानसे उनके वचनकी प्रतीति, उसकी आज्ञारुचि व स्वच्छंदनिरोध भक्तिकी प्राप्ति होती है । ज्ञानीकी पहचानसे प्राप्त होनेवाले गुणोंका वर्णन पत्रांक ७५१ में कृपालुदेवने प्रथम समकितका नाम देकर किया है । (वह) पहला समकित है यानी कि परमार्थ समकितका यहाँसे अनुसंधान है । दूसरी क्रियाओंसे उस सम्यग्दर्शनको आप मत लेना । कृपालुदेवने दूसरा व तीसरा समकित कहकर Short Cut (संक्षेप) किया है ।

ज्ञानीपुरुषकी जब पहचान होती है तब उस जीवको उसमें परमेश्वरबुद्धि इसलिये आती है, उसके पीछे सीधा-सादा Logic (न्याय) उतना है कि अरे ! इस कालमें तीर्थंकरका मिलनेका काल तो चला गया, २५०० साल हो गये । निग्रंथ मुनियों, सच्चे मुनियों दृष्टिगोचर होने मुश्किल है । श्री टोडरमलजी साहब लिखते हैं (वे मूल दिगम्बर थे) हमारे संप्रदायमें पिछले पाँचसे-छेसो सालसे कोई भावलिंगी मुनि देखने में नहीं आते हैं । अब तिरनेके साधन तीन हैं । तीन प्रकारकी सजीवनमूर्ति हमारे पास है । एक सत्पुरुष, एक निर्गृथ गुरु, व एक सर्वज्ञ परमात्मा केवलज्ञानी । (अभी) दो का तो पत्ता लगना मुश्किल है । और जब तक सत्पुरुषको नहीं

पहचाने तब तक उपरके गुणस्थानकी पहचानकी बात तो विचार करने योग्य भी नहीं है । क्योंकि वहाँ सूक्ष्म स्वभाव प्रगट होता है । केवलीको तो शुक्लध्यान वर्तता है कि जिसका विचार करना भी मुमुक्षुके लिये कठिन पड़े ऐसी बात है । लेकिन अगर सत्पुरुषको पहचानता है तो उसे स्पष्ट अनुभव होता है, भासित होता है कि अब इस पुरुषसे मेरे संसारका नाश हो जायेगा ।

“स्वच्छंद मत आग्रह तजी, वर्ते सदगुरु लक्ष,
समकित तेने भाखियुं, कारण गणी प्रत्यक्ष ॥”

(आत्मासिद्धि शास्त्र - गाथा - १७)

समकिता का उसको प्रत्यक्ष कारण लिया है, इसलिये उसको परमेश्वरबुद्धि आती है । जो काम परमेश्वर कर देनेवाले थे वह काम अगर सत्पुरुष कर देते हैं तो मेरे लिये परमेश्वरसे भी सत्पुरुषकी महिमा ज्यादा हो तो उसमें कुछ भी अनुचित नहीं है ।

कृपालुदेवने पत्रांक - २१३ में लिया है कि हे ! सर्वज्ञ परमात्मा ! तू बुरा मत मानना जो कि मैं तेरी अपेक्षा सत्पुरुषकी भक्ति ज्यादा करता हूँ, क्योंकि व तेरेसे ज्यादा सरल हैं । पुछते हैं तो तुरंत जवाब देते हैं । सर्वज्ञको पुछे तो जवाब नहीं देते हैं वहाँ तो दिव्यध्वनिमें आता हो वह लेना होता है । अनिच्छासे वह वाणी खिरती है, वहाँ सीधी बातचीतका प्रसंग नहीं है । (भगवान) समवसरणमें गंधकुटि पर ५०० धनुष्यकी ऊंचाई पर बिराजमान होते हैं । धर्मसभा नीचे होती है । यहाँ तो सत्पुरुष निष्कारण करुणाशील है । जीवकी उलझन एवं दुःखको समझते हैं । और स्वयंका थोड़ा काम अधूरा छोड़कर, अधूरा क्यों ? कि उतना तो उपयोग बाहरमें जाता है न ! और अपनी साधना में से बाहर निकलकर भी उसे कहते हैं कि देख भाई ! इस तरहसे है, रास्ता तो इस तरहसे है ।

हमें भी रास्ता दिखानेवाले कोई सद्गुरु मिले थे, इसलिये यह करुणा आती है । इसलिये सत्पुरुष जो हैं उनमें परमेश्वर तूल्य बुद्धि होती है । परमेश्वरबुद्धि जो होती है उसके पिछे यह ठौस कारण है ।

दुनियामें, व्यवहारमें भी करोड़पति व अरबपति चाहे कितने भी हो लेकिन किसी लखपतिकी मददसे उसने हमें पूरी दरिद्रतामें से करोड़पति या अरबपति बना दिया हो, तो हमारे लिये वह लखपतिका (मुल्य) ज्यादा है कि दूसरे करोड़पति या अरबपतिका मुल्य ज्यादा ? कहीये तो !! कि मेरे लिये वही दुनियाका अरबपति है । ऐसे जो प्रत्यक्ष उपकारी होते हैं ऐसे सजीवनमूर्ति कोई भी हो उनकी महिमा ज्यादा आती है । उसका कारण यथार्थ है और बलवान भी है, ऐसा ही होता है । स्वाभाविक रुपसे ऐसा ही होता है । यह कुदरती परिणाम है इसलिये उसमें कोई तर्क करने जैसा नहीं है ।

इस तरह मुमुक्षुजीव दर्शन, ज्ञान, चारित्रके परिणाममें विपरीतताको कम करता हुआ अंतमें विपरीतता मिटाता है । और जब अविपरीत दशामें आता है तब सम्यग्दर्शन - ज्ञान - चारित्ररुप मोक्षमार्गको प्राप्त करके (आगे) अपने साधकपनेको वृद्धिगत करके उपरके गुणस्थानसे लेकर निर्वाणपदको बहुत अल्प समयमें नियमसे प्राप्त करता है । सम्यग्दर्शनसे च्युत नहीं हो तो साधकदशाका काल असंख्य समयसे ज्यादा नहीं लिया है । साधकदशामें अनंतकाल नहीं लिया है । मर्यादित समय लिया है, असंख्य समय (लिया है) । आगमोंमें वह बात है ।

अतः एकबार (अगर) सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र प्रगट हो, मुख्यरुपसे हम उसे सम्यग्दर्शन हुआ ऐसा कहते हैं, (तो) कृपालुदेवने (सम्यग्दर्शनको) भाषा दी है कि देख भाई ! एकबार अगर तू मुझे

अंगीकार करेगा तो तुझे खिंचकर, घसीटकर मोक्षमें ले जाऊँगा । क्योंकि वह अनिवार्य परिस्थिति है । और उसके लिये जो Process (कार्य पद्धति) है उसमें ही अनन्तकाल गया है, क्योंकि भूले पड़े हैं ।

मुमुक्षुताके योग्य बहुतबार हमने पुजा, भक्ति, स्वाध्याय आदि कार्य किये हों, व्रतादिका पालन किये हो लेकिन फिरभी ज्ञानीके मार्गका अनुसरण नहीं किया हो, ऐसी भूलमें रह गये, ऐसी भूल करते करते अनन्तकाल गया है । उस भूलका पुनरावर्तन नहीं हो उतना हमें स्वाध्यायमें आकर विशेष विचार करनेका है । पत्रका शेषांश दोपहरकी बैठकमें चालु करेंगे ।



आत्माका (ज्ञानका) कार्य देखनेका है । दिखाई दे उसे पकड़नेका नहीं है । फिर भी आत्मा पकड़नेकी कोशिश करता है, वह विभाव है, अर्थात् मात्र जाननेकी स्वयंकी (स्वभावकी) मर्यादाका उल्लंघन करनेरूप अपराध है । ऐसे अपराधके काल मर्यादाका भान रहना वह ज्ञान है, और भान नहीं रहना वह अज्ञान है, जिससे अज्ञानजनित सर्व दोषोंका जन्म होता है-यह सादी सरल परिणमनकी घटनाका अवलोकन करके, निज मर्यादामें रहना चाहिये ।

(श्रद्धेय पू. भाईश्री)

प्रवचन - ८

दि-३१-७-१९९६ दोपहर

श्रीमद् राजचंद्र वचनामृत । पत्रांक ४९३ चल रहा है । छठे पद पर सुबह चर्चा चली । अंतमें विषय ऐसा चला था कि मोक्षमार्गके जो परिणाम - सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र है वे परिणाम अंतर्मुखी परिणाम है । पदार्थके सभी गुण सदाकाल परिणमनशील होनेसे परिणमन तो कर ही रहे हैं यानी कि दर्शन, ज्ञान, चारित्रके परिणाम परिणमन तो करते ही हैं लेकिन (अज्ञान अवस्थामें) उलटे परिणमन करते हैं । बाहरके पदार्थोंके साथ उनका अनुसंधान है अथवा मनके साथ उनका अनुसंधान है (परन्तु) अपने मूल स्वरूपके साथ जो कि अंतःतत्त्व है, (उसके साथ उस परिणमनका अनुसंधान नहीं है ।) नियमसारमें उसको (मूल आत्मस्वरूपको) अंतःतत्त्व कहा है जो कि अंतःतत्त्वस्वरूप है । ऐसा जो स्वयंका परमात्मपद - परमस्वरूप, उसका अवलंबन लेने, उसका आश्रय करने जब परिणाम अंतर्मुख होते हैं तब (जीवके) सभी गुणोंका परिणमन एक ही साथ अंतर्मुख होते हैं । ऐसा पुरुषार्थ वास्तवमें उत्तम मुमुक्षुजीवका होता है ।

इसके पहले मुमुक्षुकी भूमिकामें परिणाम बहिर्मुख होने पर भी कितनी ही विशुद्धि (वर्तती) है । दर्शन, ज्ञान, चारित्रके परिणामोंमें सुधार होता है जिसका अनुक्रम हम आगे ले चुके हैं । ऐसी पूर्व

भूमिकाकी तैयारीको मुमुक्षुता कहते हैं । और जब (जीव) अंतर्मुख परिणामन करता है - सम्यक्का अर्थ ही आत्माभिमुख है, जब वे परिणाम स्वरूपअभिमुख होते हैं, तब मोक्षमार्ग प्रगट होता है ।

यह विषय रहस्यभूत इसलिये है कि यहाँ तक तो किसी-किसीको समझमें आता है (कि) परिणामको अंतर्मुख करना जरूरी है । बहिर्मुख परिणाम बहिर्मुखताको त्याग कर - छोड़कर अंतर्मुख हो - यह जरूरी है - आवश्यक है और ऐसा हो तो ही धर्म प्रगट होगा - वरना धर्म प्रगट नहीं होता है । भले ही दर्शन-ज्ञान-चारित्रके व्यवहारयुक्त परिणाम हो (लेकिन) वे सब बाह्य परिणाम है, उससे अंतर्मुखता होनी जरूरी है - होनी चाहिये, वहाँ तक तो समझमें आता है परन्तु (अंतर्मुखता) कैसे हो ? वह समझमें नहीं आता है ।

कैसे यह (बहिर्मुख) परिणाम अंतरमें झुके ? (अंतर्मुख हो ?) वह समझमें नहीं आता है । और इसको समझना वही इस मार्गके विषयका रहस्य है । जैनदर्शनका यह Top Secret है (गुप्त रहस्य है) । घूम-फिरके हम पूर्व पर्याय पर आते हैं कि जिसे कृपालुदेवने सम्यग्दर्शनके अंगभूत कहा है ।

स्वरूपनिश्चयके कालमें - स्वरूपकी पहचानके काल ज्ञान लक्षणके द्वारा प्रथम ही ज्ञानस्वभावी आत्माका निश्चय होता है, तब अनुभवांशसे स्वरूपकी प्रतीति आती है । कृपालुदेवके शब्दोंमें कहें तो "परमार्थकी स्पष्ट अनुभवांशसे प्रतीति उसे दूसरा समकित कहते हैं" । "परमार्थकी स्पष्ट अनुभवांशसे प्रतीति" प्रतीति माने विश्वास । चार शब्दोंका इस्तमाल किया है । इन चार शब्दोंमें पूरी गहन बात रख दी है ।

प्रतीति माने यहाँ धूंधलापन नहीं होता, बिलकुल स्पष्ट अपना स्वरूप लक्ष्यगत होता है । (अब) प्रश्न इतना है कि विचारदशामें

भी ऐसा होता है तब थोड़ा भी अंतर्मुखता आती है या नहीं आती है ? कि आंशिक (अंतर्मुखपना) वहाँसे आता है, और विधि वहींसे समझमें आती है; और वहीं से मुमुक्षुका यथार्थ भेदज्ञान शुरु होता है कि जिसकी फलश्रुतिमें शुद्धोपयोग - सम्यग्दर्शन, ज्ञानका परिणमन होता है । वह कैसे होता है ? कि हमारी जो विचारकी परिस्थिती है उसमें "राग वही मैं" ऐसे राग पर आधारित हमारा परिणमन है, भले ही ज्ञान विवेक करता है, देव-गुरु-शास्त्रके स्वरूपको समझता है, जानता है, एवं शास्त्रोंके अनेक विषयोंको भी बुद्धिगम्य करता है लेकिन वह परिणमन अनादिसे रागके साथ एकत्व करता हुआ - रागकी एकता सहितका परिणमन है । और वह परिणमन "ज्ञान वह मैं" ऐसा नहीं है । यहाँ आधारका सवाल है । अंतर्मुख होनेसे आधार बदलता है ।

अंतर विचारकी धारामें जीव "मात्रज्ञान" - "ज्ञानमात्रपनेसे" अपना अवलोकन करके उसके आधारसे ज्ञानस्वभावी आत्माका निश्चय करता है, पहचान करता है तो तब "राग वह मैं" ऐसे परिणमनमें अंशतः फर्क पड़ता है । इसलिये (कृपालुदेवने) "अनुभवांशसे" ऐसा लिया है । अनुभव कहो या वेदन कहो दोनों एकार्थ है । जब वेदन, वेद्य-वेदक भावसे, कैसे भाव से ? कि वेदक भी खुद और वेदनमें आनेवाला भी खुद ही । वेद्य-वेदक भावसे - लक्षणपूर्वक लक्ष्यको, सेम्पल परसे पुरे पदार्थका निश्चय करता है और वह हो सकता है । अनन्त (आत्माओंने) ऐसा किया है । तब सबसे पहले उसका आधारबिंदु बदल जाता है । और जहाँ ज्ञानतत्त्व है वहाँ स्वभाव खुल्ला (प्रगट) है, उसके आधारसे वह नक्की होता है । रागके आधारसे हुआ निश्चय, उसमें बल नहीं होता, - ज्ञानबल नहीं आता क्योंकि आधारशिला गलत है । भले ही स्वरूपका विचार हो लेकिन

उसमें जितना राग है उसका आधार नहीं होना चाहिये । ऐसी एक अन्दरकी हकीकत है उसमें स्वरूप निश्चयके कालमें अंशतः अंतर्मुखतामें आकर स्वरूपका निश्चय होता है, क्योंकि अंतःतत्त्वका निश्चय हुआ । वरना ये तो सभी शास्त्र - पढ़ने - सुननेवालेको मालूम है कि आत्मा द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे, व भावसे कैसा है ? उत्पाद, व्यय, ध्रुवसे कैसा है ? और द्रव्य-गुण-पर्यायसे कैसा है ? लेकिन वह सिर्फ जानकारी वाला ज्ञान हुआ और वह भी राग आधारित हुआ ।

यहाँ पर ज्ञानलक्षणसे ज्ञानस्वभावी आत्माका निश्चय होता है तब जो अंशतः अंतर्मुखता हुई - रागका आधार अंशतः छूटा वहाँसे उसका (स्वरूपका) पता लगा । इस निश्चयको बीजज्ञान इसलिये कहा कि ऐसा जो ज्ञान है वह ज्ञानियोंके पाससे (ही) मिलता है । दूसरे से नहीं मिलता । दूसरेको मालूम ही नहीं है अंदर क्या होता है ? कब उसकी अंगभूत अवस्था हुई । दूसरा समकित हुए बिना तीसरा समकित होता नहीं । यह दूसरा समकित वह बीजज्ञान है । इस बीजज्ञान को ज्ञानीपुरुष अपने साक्षात (प्रत्यक्ष) परिणमनसे, वचन के अलावा चेष्टा व नेत्रोंसे समझाते हैं, और पात्र मुमुक्षुजीवकी समझमें वह आता है अंदरमें ऐसे करनेका है, अंदरमें ज्ञानतत्त्वका आधार इस तरह लेनेका है । यह बात उसको प्रत्यक्ष (परिणमन) देखकर समझमें आता है ।

कोई अगर ऐसा पुछता है कि, ज्ञानी पुरुषके प्रत्यक्ष समागम पर कृपालुदेवका इतना ज्यादा वजन क्यों है, उसके पीछे क्या रहस्य है ? रहस्य यह है कि, वह ज्ञानीपुरुषकी विद्यमानतामें उनका परिणमन देख सकते हैं । (जब कि) पूर्वमें हुए ज्ञानीका वैसा (परिणमन) देख नहीं सकते हैं । अतः उस (परिणमनका) प्रयोग देखनेको कब मिले ?

कि जब सत्पुरुषके चरणमें बैठकर सत्समागम करते हों तब । और यह प्रसंग ज्ञानीपुरुषकी विद्यमानता पूर्वक होता है, इसलिये ही विद्यमान ज्ञानीपुरुष पर कृपालुदेवका वजन है । उसके पीछे पारमार्थिक संकेत भी है कि एकबार अंतर्मुख होनेकी कला जिसे "ज्ञानकला" कहें, वैसी कला हाथ लग गई कि फिर सहजरूपसे भेदज्ञानमें अंतर्मुख होनेका प्रयास चला करता है ।

"राग व शरीर वह मैं" ऐसी जो श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र में स्थापना हुई है उस स्थापनाको Change Of Allignment (स्थिती परिवर्तन) उस स्थापनाको भेदज्ञानके श्रद्धा, ज्ञान, चारित्रके पुरुषार्थसे बदलकर (परिणाम) अपने स्वरूप पर आते हैं - तब स्वरूपभूत ऐसे अंतर्मुखी सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान, चारित्रके परिणाम होते हैं, जिसे मोक्षमार्ग कहते हैं ।

इस तरह अंतर्मुखता का विचार करें तो मोक्षका उपाय काफ़ी रहस्यमय है । इसके लिये वैसी योग्याता व पात्रताकी आवश्यकता रहती है । इतना मोक्षके उपाय सम्बन्धी संक्षेपमें लिया ।

अब पत्रके शेष भागको लें । "श्री ज्ञानी पुरुषों द्वारा सम्यग्दर्शनके मुख्य निवासभूत कहे हुए इन छः पदोंको" पहले (पत्रकी शुरुआतमें कृपालुदेवने छः पदको सम्यग्दर्शनके) निवासके सर्वोत्कृष्ट स्थानक कहे थे । यहाँ मुख्य निवासभूत कहा । इन दोनोंका एक ही अर्थ समझ लेना । "...मुख्य निवासभूत कहे हुए इन छः पदोंको यहाँ संक्षेपमें बताया है ।" एकदम संक्षेपमें यह बात की है । "समीपमुक्तिगामी जीवको सहज विचारमें ये सप्रमाण होने योग्य है ।"

(जीवका) होनहार अच्छा हो व थोड़ा विचार करें तो सप्रमाण माने सम्मत होने योग्य लगेगा । उसका निषेध नहीं करेगा (बल्कि

कृपालुदेव) कहते हैं वह बराबर है (ऐसा लगेगा) ।

“परम निश्चयरूप प्रतीत होने योग्य है,” और यह बराबर है वैसा निश्चितरूपसे जान सकते हैं । “उसका सर्व विभागसे विस्तार होकर उसके आत्मामें विवेक होने योग्य है ।” हमने संक्षेपमें लिखा है लेकिन स्वाध्याय करनेवाले मुमुक्षुओंको आज्ञा करते हैं कि सिर्फ आपलोग इसे पढ़ लें उतना ही नहीं (बल्कि) उसका सर्व विभागसे विस्तार (अर्थात्) हर एक पदके जितने विभाग हो, जितने उसके पहलुं हो, विभाग माने उसके पहेलूं हो, उसका विस्तार करके आत्मामें उसका विवेक करने योग्य है । आत्मामें विवेक करने योग्य है माने मात्र रागकी प्रधानतामें सम्मत करना नहीं है (बल्कि) अनुभवकी कसोटी पर चढ़ाकर उसको सम्मत करना है । (तब) आत्मामें विवेक हुआ ऐसा कह सकते हैं ।

“ये छः पद अत्यंत संदेहरहित हैं, ऐसा परम पुरुषने निरूपण किया है ।” इसमें कहीं भी अपनी मति कल्पनासे चलना या अन्यथा कल्पना करके उसका विचार दूसरी तरहसे करने योग्य नहीं है । परम पुरुषका यह निरूपण है, भगवान तीर्थंकरदेवने यह निरूपण किया है । दिव्यध्वनिसे यह बात परंपरासे ज्ञानियों तक चली आयी है । “इन छः पदोंका विवेक जीवको स्वरूप समझनेके लिये कहा है ।” “जे स्वरूप समज्या विना पाम्यो दुःख अनन्त...” आत्मसिद्धि शास्त्र गाथा - १ । ऐसा जो स्वरूप है उसको समझने के लिये ये छः पदोंकी बात है ।

“अनादि स्वप्नदशाके कारण उत्पन्न हुए जीवको अहंभाव, ममत्वभावके निवृत्त होनेके लिये ज्ञानीपुरुषोंने इन छः पदोंकी देशना प्रकाशित की है ।” क्या कहते हैं ? अनादि भ्रांतदशा, स्वप्नदशा माने भ्रांतदशा । ज्ञानियों यह जो शब्दका प्रयोग करते हैं उसमें

एक मार्मिक बात है ।

एक (गरीब) आदमी भूखा था । पेटमें चूहे दौड़ने लगे थे । गरीब आदमीको चार-पाँच दिनसे भीख मांगने पर भी कुछ मिला नहीं था और भूखके कारण अशक्त हो गया था । किसी पेड़की छाँवमें सो गया । भुख तो बहुत लगी थी उसमें स्वप्न आया कि खुद एक जगह गया है वहाँ गरम-गरम बढीया से बढीया मिठाई उतनी पेट भरके खाई कि आहाहा... ! मज़ा आई ! पेट भर गया । स्वप्नदशामें उठकर देखा तो पेटमें खड्डा सवाया हो गया था । स्वप्नकी सुखड़ीसे (मिठाई) कभी भूख मिटती नहीं, वैसे यह जीव संसारके उदयमें, पाँच इन्द्रियोंके विषयमें भोग-उपभोगसे चाहे कितना खुश हो, (लेकिन उसे कहींसे सुख मिलता नहीं है) ।

जैसे घर-नगर आदिका कर्ता उपचारसे हैं वैसे पर विषयका भोक्ता भी उपचारसे हैं । भोगता है (सिर्फ) अपने परिणामोंको - मलिन परिणामोंको; इसलिये इसके हाथमें कुछ नहीं आता है । किसीको तृप्ति नहीं होती, खाते-खाते पूरी जिन्दगी बिता दे, मर जाये तो भी तृप्ति नहीं होगी । पाँच इन्द्रियोंके विषयमें अतृप्तदशासे जीव रहता है । क्योंकि उसकी आत्मामें कुछ भी नहीं आता । जैसे स्वप्नमें सुखड़ी (मिठाई) पेटमें नहीं आती, वैसे ही है । इसलिये आत्मासिद्धिशारत्रमें कहा कि "सकल जगत छे एठवत्, अथवा स्वप्न समान"

हमलोग भी कोई उदययोगसे इकट्ठे हुए हैं । (यह भी) एक स्वप्न हो जायेगा, थोड़े दिनमें यह स्वप्न भी पुरा हो जायेगा वैसे सभी उदय प्रसंग जैसे स्वप्न पुरा होता है वैसे पुरे होते हैं ।

आत्मा जो शुद्धचैतन्य सहजानंदकी मुर्ति है, ज्ञानानंदकी मुर्ति है वह तो वैसा का वैसा कायम रहता है । उसके आगे पीछेकी

पर्यायें आती है और जाती है और उन सभी उदयभावोंको ज्ञानियों स्वप्नवत् देखते हैं । जैसे स्वप्नकी कोई कीमत नहीं है वैसे, उदयप्रसंगकी भी कोई कीमत नहीं है और इसलिये ही उदयमें प्रवृत्ति करते हुए ज्ञानियोंको उसके साथ कोई लगाव नहीं रहता । क्योंकि वे तो स्वप्न जानकर बैठे हैं, लगाव क्या रखें ? यह स्वप्न भी एक दिन पूरा होगा ।

ऐसी जो भ्रांतदशा है उसमें अनादिसे जीवको परद्रव्य व परभावमें अहंभाव - ममत्वभाव हो रहा है । (उससे) निवृत्त होनेके लिये, उसका नाश करनेके लिये, भ्रांति छोड़नेके हेतु ये छः पदोंकी देशना ज्ञानिपुरुषोंने प्रकाशित की है ।

“**उस स्वप्नदशासे रहित मात्र अपना स्वरूप है,**” ध्रुव वैसा का वैसा (स्वरूप है) । वह स्वप्नदशासे रहित (हैं) । जब कि मूलस्वरूप जो है वह तो तीनों काल वैसा का वैसा ही है । “**...ऐसा यदि जीव परिणाम करे...**” श्रद्धामें, ज्ञानमें, चारित्रमें, लीनतामें, उसमें यदि जीव परिणाम करे “**....तो वह सहज मात्रमें जागृत होकर सम्यग्दर्शनको प्राप्त होता है ।**” इस तरह अगर जीव जागृत हो जाय और अपने स्वरूपमें जागृतिपूर्वक अहंभाव करे, तो वह सम्यग्दर्शनको प्राप्त हो जाय । अतः स्वरूपानुभव वह स्वरूपकी जागृति है, वह स्वरूपकी सावधानी है । “**सम्यग्दर्शनको प्राप्त होकर स्वस्वभावरूप मोक्षको प्राप्त होता है**” और जब ऐसी दशा होती है तब “**किसी विनाशी, अशुद्ध और अन्य ऐसे भावमें उसे हर्ष, शोक, संयोग उत्पन्न नहीं होता ।**” और अपने आगे-पिछेके जो विनाशी पदार्थ है व विनाशी भाव है, अशुद्धभाव है, मलिनभाव है, उसमें अहंमभाव भी नहीं होता और इसके कारण उसका हर्ष-शोक भी नहीं होता । क्योंकि पराये के लिये कोई हर्ष-शोक होने की शक्यता

नहीं है ।

“इस विचार से स्वस्वरूपमें ही शुद्धता सम्पूर्णता अविनाशता अत्यंत आनंदता अंतर रहित उसके अनुभवमें आते हैं ।” यानीकि अभेदभावसे (अनुभवमें आते है) विकल्प साथमें नहीं रहता । मैं आत्मा उसमें भेदभाव होता है । ‘मैं और आत्मा’ ऐसे दो (अलग) नहीं है । मैं और मेरी आत्मा ऐसे दो नहीं है । ज्ञानमयआदि स्वभाव वह स्वयं ही है । उसका स्वानुभव-अभेद अनुभव जब निर्विकल्पदशा होता है तब स्वरूपमें ही शुद्धपना (अनुभव में आता है) यानी कि स्वरूपमें कुछ आया नहीं है, मिलावट हुई नहीं है ऐसे स्वरूपका अनुभव होता है ।

मेरा स्वरूप सर्व-गुणोसे सम्पन्न होनेसे परिपूर्ण है और परिपूर्ण होनेसे मुझे किसीकी अपेक्षा नहीं है । ऐसे ज्ञानका वैराग्य इस प्रकारसे है कि मेरा स्वरूप परिपूर्ण है, अनंत ज्ञान, अनंत आनंद, अनंत सुख-शांतिसे भरपूर है, उसमें कोई कुछ लाकर अंदर रख सके ऐसी जगह ही नहीं है । जैसे एक घड़ा पूरा-पूरा भरा हो कि उसमें एक बुंद पानी डालो तो भी नीचे गिर जाय वैसे स्वरूपका संपूर्णपना है और उसके कारण अपना नीरालम्ब नीरपेक्षपना अनुभव गोचर होता है । परके अवलंबनकी-आधारबुद्धिका वहाँ नाश होता है । परकी अपेक्षावृत्ति छूटती है । यह सहज और यथार्थ सम्यक् वैराग्य है । जो कि संपूर्णपनेके आधारसे है, परिपूर्णपनेके आधारसे है ।

अविनाशीपना अनुभवमें आते ही सब प्रकारका भय गया । मेरे स्वरूपमें जरा भी(घटाव) Depreciation (घटाव) हो सके ऐसी कोइ परिस्थिति नहीं है तो नाश होनेका प्रश्न तो बहुत दुर है काफि दुर है । ऐसा अपने शाश्वतपनेका (अनुभव करता है) । अत्यंत

आनंदपना, परिपूर्ण आनंदपना, परमानंदपना, अंतररहितपने, अभेदभावसे उस जीवके अनुभवमें आता है । वहाँ विकल्प का आड़ नहीं रहती । निर्विकल्प होकर अनुभवगोचर होता है ।

“सर्व विभावपर्यायमें मात्र स्वयंको अध्याससे एकता हुई है । “उससे केवल अपना भिन्नपना है । क्या कहते हैं ? राग, द्वेष, मोह आदि अनेक विभाव पर्यायमें ‘वही मैं’ ऐसा अनुभव होता था । जैसे कि मैंने राग किया, मैंने दोष किया, मैंने ऐसा शुभभाव किया, मैंने ऐसा अशुभभाव किया ऐसे विभाव पर्याय होते थे । और मनुष्यपना आदि वह भी जीवके विभाव पर्याय है । वह उसका मूल स्वरूप नहीं है । मनुष्यपना आदि आत्मा का मूल स्वभाव नहीं है वे नाश हो जाते हैं । आत्मा अविनाशी है । शास्त्रीय परिभाषामें उसका मनुष्याकारको विभाव व्यंजनपर्याय कहते हैं और राग, द्वेष, मोहको विभाव अर्थपर्याय कहते हैं । एकत्वके अध्याससे स्वयंको उसमें एकता हुई थी । अध्याससे ‘यह मैं’ ऐसा अनुभव करता था । राग करनेवाला ‘वह मैं’ ऐसा अनुभव होता था । वह जीवका अध्यास है । “उससे केवल अपनी भिन्नता ही है ।”

अतः ज्ञानदशा, मोक्षमार्गकी दशामें जो कुछ व्यवहार रत्नत्रयके रागके परिणाम होते हैं उनसे भी ज्ञानी अपने स्वरूपमें ऐक्यता करके भिन्नत्वका अनुभव करते हैं । अतः “ते पण क्षण क्षण घटती जाती स्थितिमां” ऐसा होता है । कृपालुदेवने अपूर्व अवसर काव्यमें गाया है कि मुनिदशामें जिन आज्ञा अनुसार मेरा व्यवहार है, लेकिन वह भी प्रति क्षण कम होता जायेगा क्योंकि हमारा स्वरूपके साथ एकत्व है और वह शुद्ध परिणमन स्वरूपभूत बढ़ता जाता है । एक तो उसका भिन्नपनेसे अनुभव है व दूसरा टूटता हुआ जर्जरीत होता हुआ अनुभवगोचर होता है ।

“ऐसा स्पष्ट-प्रत्यक्ष-अत्यंत प्रत्यक्ष-अपरोक्ष उसे अनुभव होता है। एक प्रसंग लेवें / कोई एक ज्ञानीपुरुष है, फिर चाहे वे बहिन हो कि भाई कोई भी हो सकते हैं। उदयभावके कार्य जब करते हैं तब उदय अनुसार रागका अंशभी उनकी दशामें है। उन्हें खुदको भी पता होता है और दूसरेको भी पता लगता है कि ये मेरे साथ बात कर रहे हैं। आमने-सामने बात करते हो व प्रश्नके जवाब देते हो तब उस वख्त बोलनेके संबंधी रागका अंश तो प्रवर्तता है। उससे अत्यंत भिन्नपना, स्पष्ट-प्रत्यक्ष अत्यंत प्रत्यक्ष-अपरोक्षता, परोक्षताका अभाव होकर अनुभव होता है। क्यों ? कि स्वरूपके साथ ऐक्यभाव हुआ, निजपरमात्माके साथ ऐक्यभाव हो गया।

अन्यमत में भी भक्तिमें जब परमात्माके साथ ऐक्य भाव होता है तब उसको जगतकी परवा नहीं रहती। ऐसे कई भक्त हुए (हैं)। वास्तवमें उसमें तो कोई परमात्माके साथ ऐक्यभाव नहीं होता। क्योंकि द्रव्यसे ऐसा कुछ होता नहीं फिरभी भावमें ऐसा होता है।

यहाँ पर तो साक्षात् स्वयं सिद्धपद जो हैं, निज परमात्मापद (जो है) उसमें स्वयंका अस्तित्व है, उस अस्तित्वका ग्रहण करके अनुभव किया, तब अन्य सर्व भावोंसे, सर्व प्रकारके विभावभावसे अपना भिन्नपना है ऐसा अत्यंत प्रत्यक्ष अनुभव होता है। कैसे प्रत्यक्ष अनुभव होता है ? खुदको मालूम पड़ता है कि यह बोलनेका राग है किंतु “मैं ज्ञानस्वरूपी आत्मा हूँ” ज्ञानस्वरूपी मिटकरके बोलनेके रागरूप नहीं हुआ हूँ। “मैं जैसा हूँ वैसा ही हूँ।” इसलिये समयसारको आचार्योंने नाटककी पद्धतिमें लिखा है और रचना की है। और श्री बनारसीदासजीने भी अपने काव्योंमें ‘नाटक समयसार’ लिखा है।

जैसे कोई अभिनेता - एक्टर कोई भी वेश धरता है, स्टेज

पर भिखारी बने तब अच्छे-अच्छे को रुला दे, उसकी दीनता व गरीबी देखकर देखनेवालेको आँखों में आँसू आ जाय, और जब वह अभिनेता हारस्यके रोलमें आता है तब सबको पेट पकड़कर हंसाता है । अब जब उसने गरीब का वेश धरा था तब उसको मालुम था कि यह स्टुडियोके बाहर दरवाजेके पास १०-१५ लाखकी मेरी मर्सिडीझ गाडी खड़ी है । उसको ऐसा अनुभव नहीं होने लगता है कि मैं गरीब हो गया । "मैं जैसा हूँ-वैसा ही हूँ" ऐसा ही अनुभव रहता है । ये तो सब नाटकका रोल (तमाशा) दिखानेकी बात है । ठीक वैसे, ज्ञानीपुरुष भी जुदे ही जुदे, भिन्न ही भिन्न रहते हैं । प्रतिबंधको प्राप्त नहीं होते हैं, ऐसा स्पष्ट अनुभव होता है कि मेरा स्वरूप मिटकर - नाश होकर रागरूप या किसी भी प्रसंगरूप कभी नहीं होता है । मैं तो मूल स्वरूपसे जैसा परमेश्वरपद है वैसा का वैसा ही हूँ । उसमें कोई फर्क नहीं है । ऐसी पकड़ (छूटती नहीं है), श्रद्धा, ज्ञान, आचरणमें, सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्रमें आत्माकी पकड़ रहते हुए फिर उसमेंसे थोड़ा अंश छिटक कर बाहर आता है । उसमें ये सब उदयभाव का रोल (तमाशा) सबको दिखता है ।

श्री समयसारजीके निर्जरा अधिकारमें ऐसी ज्ञानदशाको दिखानेके लिये बहुतसे दृष्टांत लिये हैं । एक धायमाताका दृष्टांत लिया है । धायमाता राजकुमारको चाहे कितना भी लालन-पालन करें लेकिन जन्म देनेवाली माँ जैसा प्रेम उसे नहीं आता क्योंकि उसको स्पष्ट भान वर्तता है कि यह बच्चा मेरा नहीं है । मैं तो सिर्फ नोकरी करती हूँ, ऐसा भान छूटता नहीं है । कुशल बाई हो इतना अच्छा लालन-पालन करें कि किसीको ऐसा लगे कि सगी माँ भी इतना नहीं कर सके, फिरभी मातृप्रेम वह मातृप्रेम है । और परायणपन

वह परायापन है । वैसे ज्ञानी भिन्न पड़ गये हैं ।

बहुतसे दृष्टांत लिये हैं, एक दूसरा दृष्टांत शेट और नौकरका लिया है । नौकर होता है, शेटसे सवाया काम करता है । इसलिये अगर कुछ नुकसान जाता है तो ग्राहकके साथ शेटसे भी ज्यादा झगड़ा करें फिर भी शेटकी एक पाईको भी प्रमाणिकतासे हाथ नहीं लगाता है । शेटके मुनाफे या नुकसानसे मेरेको कोई लेना-देना - सम्बन्ध नहीं है ऐसा (भान होता है) । उसको अंदरमें स्वामित्व नहीं आता । वहाँ समयसारमें स्वामित्व शब्द इस्तेमाल किया है । वह ज्ञानी राग व रागके विषयका स्वामी नहीं होता है ।

ठीक वैसे ही बिल्लीका दृष्टांत है । उसको अपने बच्चेको उठानेके लिये मूँहके सिवा दूसरा हाथ-पैरका कोई साधन नहीं है । और चूहेको पकड़नेके लिये भी वही साधन है । अब कहिये पकड़ - पकड़में फर्क है कि नहीं ? चूहेको पकड़ा है तब भले वह खूनसे लहु-लुहान हो जाय फिर भी छूटना नहीं चाहिये और जब अपने बच्चेको पकड़ती है उसको एक दाँत भी लगाना नहीं चाहिये, अरे ! खराँच भी आनी नहीं चाहिये । है तो दोनों मूँह में ही और दिखाव भी एक सरीखा है । वैसे ज्ञानीका दिखाव बाहरमें अटपटा होनेसे, कोई अटपटी दशा उनकी होनेसे जगतके जीवोंको पहचान होनी दुर्लभ हो पड़ी है । हम लोग की भी यही दशा हुई है । भूतकालमें हम भी (ज्ञानीको) नहीं पहचान सके हैं । इस तरह ज्ञानीको भिन्नपनेका अनुभव होता है ।

“विनाशी अथवा अन्य पदार्थके संयोगमें उसे इष्ट-अनिष्टता प्राप्त नहीं होती ।” कृपालुदेव लिखते हैं कि व्यापार हम हमारे लिये नहीं करते हैं, ये तो कर्ज चूकानेके लिये, ऋण चूकानेके लिये हैं, इसमें ज्यादा कुछ नहीं है । पूर्वके भावोंमें कर्ज किया

था, वह वापिस चूकाते हैं ।

“जन्म, जरा, मरण, रोगादि बाधारहित संपूर्ण माहात्म्यका स्थान, ऐसा निजस्वरूप जानकर, वेदन कर वह कृतार्थ होता है ।” गुणसे, लक्षणसे व स्वभावसे उसका अनुभव करते हैं, वेदन करते हैं । कैसा है स्वरूप ? कि उसमें जन्म, जरा, मरण, रोगादि कुछ भी नहीं है और जिसका माहात्म्य अनन्त है । ज्ञानमें वह आने पर उसका अनन्त माहात्म्य भासित होता है - लगता है, तब उसमें आसक्ति होती है । उसमें भी खास करके अनन्त सुख व अनन्त आनन्द भरा है उसकी आसक्ति बहुत होती है ।

It is the magnetic property of the soul (आत्माका आकर्षक धर्म) आनन्द जो है, सुख है वह एक (आकर्षित करनेवाला गुणधर्म है) । जैसे मेग्नेट खिंचता है वैसे परिणामको वह अन्दर खिंचता है । एक बार स्वाद आ जानेके बाद उसका मजा ही अलग है । अन्दरमें खिंचाव रहा ही करता है । अन्दरका खिंचाव जाता ही नहीं । बाहरमें सब रुखा लगता है, खीर खानेसे जुआर का रोटी रुखी लगती है वैसे । इसलिए उनको सहज वैराग्य रहता है व बाहरमें जो परिणाम सुखबुद्धिसे आसक्त होते थे वे छूटकर अंतरमें जो सुख है वह स्पष्ट-प्रत्यक्ष-अपरोक्ष अनुभवगोचर होनेसे आसक्ति वहाँ होती है । उसे स्वरूपभक्ति कही है । वैसी आसक्ति, संपूर्ण माहात्म्यका स्थान अपना निजस्वरूप होनेसे होती है । (वह जानकर) उसका वेदन करके, वेदन करके माने अनुभव करके वह कृतार्थ होता है ।

“जिन-जिन पुरुषोंको इन छः पदोंसे सप्रमाण ऐसे परम पुरुषके वचनसे आत्माका निश्चय हुआ है...” प्रथम स्वरूपनिश्चय होता है बादमें अनुभव होता है । भावभासन पहले होता है, पहचान पहले होती

है, वह सम्यग्दर्शनकी अंगभूत है । “जिन-जिन पुरुषोंको इन छः पदोंका सप्रमाण ऐसे परमपुरुषके वचनसे आत्माका निश्चय हुआ है...” यथार्थ निश्चय हुआ है, अनुभवांशसे निश्चय हुआ है । “वे सब स्वस्वरूपको प्राप्त हुए हैं;” दूसरा समकित हो तो तीसरा समकित हो ही हो, हुए बिना रहता नहीं ।

श्री सौभाग्यभाईको ईडरसे आनेके बाद (स्वानुभव होनेमें) एक सप्ताह लगा था । ईडरमें कृपालुदेवने बीजज्ञान दिया होगा ऐसा अनुमान कर सकते हैं । कृपालुदेव उन्हें इडर ले गये और (ईडरसे) आनेके बाद एक हफ्तेके बाद (श्री सौभाग्यभाईने) पत्र लिखवाया है कि “आपकी कृपासे देह और आत्मा दोनों भिन्न सहजरूपसे रहते हैं” बहुत ही अल्पकालमें (अनुभव) होता है क्योंकि उसका जो संवेग है वह स्वरूपके माहत्म्यकी (पहचानपूर्वक आया है) । अनादि का सुखसे शुन्य (दरिद्र) ऐसे इस जीवको अनन्त सुखका सागर, तलवे बिना का अन्दर दिखता है, हों ! ये (विश्वके) सभी सागरको तलवा है । पाँच-छः मिल नीचे तलवा है । तलवे बिनाका (सुखका) सागर हाथमें आ जाय (फिर) उसके परिणाम काबुमें रहें कैसे ? ये तो कहिये ? तीव्र प्यास लगी हो तो पानी पीनेके लिये तडफ लगेगी (ही), जोरसे भूख लगी हो तो तेजीसे खाना खायेगा धीरे धीरे नखरे करते करते नहीं खायेगा । खानेमें नखरे नहीं करता क्योंकि जोरसे भूख लगी है । वैसे यह (जीव) अनादिसे सुखका भूखा है और इस जीवने सुख जुटानेके लिये मिथ्या प्रयत्न करनेमें कोई कसर नहीं छोड़ी । ऐसे इस जीवको अन्दरमें उछलता हुआ सुखका समुद्र-अनन्त सुखका समुद्र (दिखता है), उसका निश्चय होता है, अनुभवांशसे निश्चय होता है, तब उसके परिणाममें पुरुषार्थका जो वेग उत्पन्न होता है उसे ज्ञानियोंने स्वरूप सन्मुखताका पुरुषार्थ कहा है । पहली

पहली पुरुषार्थकी दिशा स्वरूपका निश्चय होने पर बदलती है । निश्चय (होने पर) स्वरूप सन्मुखताका पुरुषार्थ (उपड़ता) है । उसकी Degree (मात्रा) किसी एक अवस्थामें आगे बढ़कर निर्विकल्प स्वानुभवमें परिणमित होती है, तब "सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः" प्रगट (होता है) ।

“ऐसे परम पुरुषोंके वचनसे आत्माका निश्चय हुआ है वे सब पुरुष स्वस्वरूपको प्राप्त हुए हैं;” फिर कोई प्राप्त हुए बिना नहीं रहते ।

यहाँ पर कोई ऐसा कहें, तर्क कर सकते हैं कि इस तरफ स्वरूपनिश्चय हुआ, ज्ञानीकी कृपासे बीजज्ञान मिला, उसमें खुदकी योग्यता तो स्वाभाविक होनी ही चाहिये, लेकिन फिर आयुष्य पूर्ण हो जाय स्वानुभव होनेके पहले तो फिर क्या हो ? तो कहते हैं कि चार गतिमें कहीं भी जाय, असंज्ञी पने नहीं जाता । असंज्ञीकी गति एक तिर्यचगतिके अलावा कहीं नहीं है । एक समुर्छन मनुष्यको बाद करके, संज्ञी पंचेन्द्रियपने तिर्यचमें उत्पन्न हो, नारकीमें उत्पन्न हो, देवमें उत्पन्न हो या मनुष्यमें उत्पन्न हो, जिस वक्त स्वरूपनिश्चय हुआ व संपूर्ण माहत्म्य का ठिकाना-अपना अनन्त माहात्म्यवंत - महिमावंत स्वरूपकी महिमा यथातथ्य आयी उसको स्वरूपकी अनन्य रुचि उस वख्त होनेके कारण स्वभावके संस्कार डल जाते हैं, वे संस्कार दूसरे भवमें जागृत हो जाते हैं । तिर्यच भी (ज्ञान दशाको) प्राप्त करता है, उसका कारण क्या ? वहाँ तो किसी ज्ञानीका निमित्त नहीं है, नीचे पहली, दूसरी नारकको छोड़कर फिर कहाँ ज्ञानीका निमित्त है ? फिर भी साँतवी नारकीमें जीव (ज्ञानदशाको) प्राप्त करता है । स्वभावके संस्कार लेकर गये हुए जीव ही उसे प्राप्त करते हैं, चाहे कोई भी प्राप्त कर ले ऐसा नहीं होता ।

उमास्वामीके सुत्रके अनुसार (सम्यग्दर्शन दो तरह से प्रगट होता है) । निसर्गात और अधिगमात (सम्यग्दर्शन) निसर्गसे अथवा अधिगमसे उत्पन्न होता है । अधिगमात माने सजीवनमूर्तिके निमित्तसे होता है व निसर्गात माने कुदरती (सत्पुरुषके योग बिना) । उसमें कुदरती व्यवस्था इस तरह से उद्भवती है । लेकिन उसका स्पष्ट अर्थ यह है कि पूर्वभवमें उसको ज्ञानी मिले हैं, मिले है, और मिले हीं हैं । कृपालुदेवको इस भवमें कोई ज्ञानीपुरुषका योग नहीं हुआ (फिर भी) सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुए कि नहीं हुए ? कि प्राप्त हुए हैं । क्यों प्राप्त हुए ? कृपालुदेवने पत्रांक १९४ में कहा (की) जो निरंतर भाव अप्रतिबद्धतासे विचरते हैं ऐसे ज्ञानीपुरुषके चरणारविंद का सेवन करनेसे हमें भी ज्ञान प्राप्ति हुई थी । उस भुतकालकी बातको जातिस्मरणमें जानकर खुदने कही है, वैसे सभीका समझ लेना । एक बार तो सजीवनमूर्तिके बिना इस ज्ञानका पत्ता लगे ऐसा नहीं है, क्योंकि वह अंतःतत्त्व है । और वह ज्ञान अंतर्मुखी परिणमनका विषय है । और जीव अनादिसे बहिर्मुख भावसे परिणमन करता हुआ इस रास्तेसे बिलकुल अनजान रहा है ।

“वे सब पुरुष स्वस्वरूपको प्राप्त हुए हैं; आधि, व्याधि, और उपाधि और सर्व संगसे रहित हुए हैं; और भविष्यकालमें भी वैसे होंगे” तीनों काल मार्ग इसी प्रकारसे है, दूसरे प्रकारसे मार्ग नहीं है । इसलिये दूसरे प्रकारसे, दूसरी किसी प्रकारकी कल्पना या विकल्प करने जैसा नहीं है । ज्ञानीपुरुषकी आज्ञाको शिरोधार्य करके प्रयास करना । जितनी हमारी शक्ति व योग्यता हो उतना प्रयास करना ।

इतना कहनेके बाद, जिन सत्पुरुषके निमित्तसे, सजीवनमूर्तिके निमित्तसे (स्वानुभव प्रगट हुआ है उन्हें भक्तिभावसे नमस्कार वचन

लिखते हैं) । सुबह बात चली थी कि तीन में से अभी एक ही निमित्त उपलब्ध है और उसे भी ढुंढने जाना पड़ता है ।

इस दुनियामें, पुरे विश्वमें Top Level के (उच्च कक्षाके) Economist (अर्थशास्त्री) नाना पालखीवाला जैसे, उनकी गिनती करें तो देढ-दो दर्जनसे ज्यादा न मिले । छः अरबकी बस्ती है, ५९५ करोड़की करीब इस जगतमें मनुष्योंकी बस्ती है कि जहाँ हम आवागमन करते हैं । कितने मिले ? देढ-दो दर्जनसे ज्यादा नहीं मिले । लेकिन ज्ञानी ? देढ-दो दर्जन नहीं मिलते, ज्ञानी तो कोई एक, दो, तीन, चार मुश्किलसे मिले । इतनी Scarcity (कमी) है । इस कालमें ज्ञानीकी इतनी दुर्लभता है । इसलिये उसका मुल्य और भी बढ़ जाता है । महाविदेहक्षेत्र हो तो बात दूसरी है, चौथा आरा हो तो भी बात दूसरी है । जब कि कृपालुदेव तो लिखते हैं कि चौथे कालमें भी ज्ञानीपुरुष का योग दुर्लभ है तो अभी तो दुर्लभ से दुर्लभ है ही ।

अतः कृपालुदेवने बाकीके पत्रांकमें चार नमस्कार वचन कहे हैं । ये चारों नमस्कार वचन हमारे समुहमें अच्छी तरह प्रसिद्ध है । हम लोगोंको अनेकबार इन वचनोंको बोलनेका प्रसंग बनता है । बहुतोंको कंठस्थ भी है; लेकिन इन (चार नमस्कार) वचनोंमें कृपालुदेव बहुत कुछ कह जाते हैं । जो कि कृपालुदेवकी शैलीकी विचक्षणता - विलक्षणता है । उसमें भी बहुत गुढ बातें उन्होंने की है । सादी भाषामें, गुढ बातें, रहस्यमय बातें, सिद्धांतिक बातें व अध्यात्मके गहरे रहस्योंको प्रतिपादन करनेकी कृपालुदेव की शैली, कोई अलौकिक शैली है । जिसका हम सब रसास्वादन करें ।

“जिन सत्पुरुषोंने जन्म, जरा व मरणका नाश करनेवाले, स्वस्वरूपमें सहज अवस्थान होनेका उपदेश दिया है, उन सत्पुरुषोंको

अत्यंत भक्तिसे नमस्कार है ।" A Great Achievement (सर्वोत्कृष्ट सिद्धि) ! जन्म, जरा, मरणका सर्वकालके लिये नाश हो जाय उसके जैसा दूसरा एचीवमेन्ट (उपलब्धि) दूनियामें कौनसी है ? इसकी कीमत करनेके लिए जगतमें कोई पदार्थ नहीं है । No Terminology (कोई शब्दावली नहीं) किसी भी Term (शर्त) में उसकी कीमत नहीं हो सकती । जिन सत्पुरुषोंने जन्म, जरा, मरणका नाश करनेवाला, स्वस्वरूपमें सहज अवस्थान होनेका (उपदेश कहा है), अस्ति-नास्ति दोनों ले ली है ।

कितने नुकसानसे बचा ? कि अनन्तकालके संसारके सर्व दुःखोंसे व सर्व क्लेशसे बचा । फायदा कितना हुआ ? एक साथ Double Action (दो तरफा फायदा) है । नुकसान नहीं हो और (अकेला फायदा ही हो) जब कि वैसे भी नुकसानमें फायदा नहीं होता और फायदेमें नुकसान नहीं होता । लाभ कितना हुआ ? कि सादी अनन्त, अनन्त काल, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त समाधिसुखमें बिराजमान हो जायेगा, इतना लाभ होगा । ऐसा जो उपदेश जिन्होंने कहा उन सत्पुरुषको अत्यंत भक्तिसे हम सभीका नमस्कार हो ।

इस उपकारबुद्धिसे मुमुक्षुजीव सत्पुरुषके प्रति झुक जाता है कब ? कि (जब) अपनी आत्मा पर यतकिंचित उपकार हुआ हो ऐसा मालुम हो तब । लेकिन खुद कोरा का कोरा रहा हो तो उपकार बुद्धि नहीं आती । जितनी उपकारबुद्धि आनी चाहिये उतनी नहीं आती । फिर सबके साथ हाँ मे हाँ भरना हो वह दूसरी बात है । परन्तु निर्मल चैतन्यके प्रभावशाली वचनोंसे अपनी आत्मा पर कुछ भी असर पहुँची हो और उनके मन, वचन, क्रियाके क्रियाचेष्टितपने के अद्भूत रहस्योंसे अपनी आत्मा पर कुछ भी असर पहुँची हो तो अत्यंत भक्ति आये बिना नहीं रहती । थोड़ी भक्ति नहीं आती, बल्कि अत्यंत

भक्ति आती है । क्योंकि भक्ति, अभक्ति और अत्यंत भक्ति इन तीनोंमें फर्क है । जिसको सत्पुरुषके प्रति भक्ति है ही नहीं उसकी तो हमें चर्चा करनेकी भी जरूरत नहीं है और ऐसा समय भी हमारे पास नहीं है । लेकिन अब भक्ति तो हमें है, परन्तु कितनी है ? यह सवाल है ।

अत्यंत भक्ति कैसी होती है ? (कि) सत्संगकी सर्वार्पणरूपसे उपासना करनेमें आये, क्योंकि इतना लाभ होता हो वहाँ शर्त कैसी ? शर्त कौन रखता है ? (जिसे) सौदाबाजी करनी होती है, वह । ऐसा हो तो ऐसा करु, जैसे कि (सत्संगमें) बारिस नहीं आती हो तो मैं आऊं, ठंड नहीं हो तो मैं आऊं, तबियत अच्छी हो तो मैं स्वाध्याय में बैठुं, वरना नहीं बैठ सकता, अमुक प्रकारकी अनुकूलता हो तो मैं लाभ लूं (ऐसे सौदाबाजी करेगा) । पत्रांक - ६०९ में ११ वे पेराग्राफमें कृपालुदेव कहते हैं कि सत्संगके लिये देहत्याग करनेका योग होता हो तो उसे स्वीकार करना लेकिन सत्संगको गौण नहीं करना, देहत्याग तक माने फिर बात पुरी हो जाती है, फिर इसके आगे कोई शर्त रखनेका प्रश्न ही नहीं रहता ऐसी अत्यंत भक्ति (आनी चाहिये) ।

भक्ति की न्यूनता वह एक धोखेमें रख दे ऐसी दशा है । क्योंकि वह नीचे नीचेकी दशावालेको देखता है कि दूसरे को तो भक्ति नहीं है, मुझे तो भक्ति है और अच्छी खासी भक्ति है, ठीक ठीक भक्ति है । लेकिन पहचान होकर परमेश्वरबुद्धि नहीं हो वहाँ तक अत्यंत भक्ति आती नहीं है । और भक्ति की जो न्यूनता है, उस न्यूनतामें खुद धोखेमें रह जाता (है) वह ऐसे कि, मैं कहाँ अभक्ति करता हूँ, भक्ति तो करता हूँ न ! लेकिन इस तरह आत्माको जो लाभ होना चाहिये वह लाभ होता नहीं है । अत्यंत भक्तिसे

जो लाभ होता है वह अलौकिक लाभ है । वह भक्ति मोक्षमार्गको प्राप्त करा देगी । इस तरह (जो) बहुमान है (वह) भक्ति है । और (मुमुक्षुको) अत्यंत बहुमान आता है । ऐसे (बहुमान-भक्ति) कब आते हैं । ? कि समुद्रमें डुब रहा हो, चारों ओर पानीमें किनारा कहीं दिखता नहीं हो, पानी, पानी और पानी (ही दिखता हो), किनारा किस तरफ है वह कुछ मालुम नहीं हो, उलझन होती हो कि अगर इस तरफ गया तो अन्दर समुद्रके बीचमें डुब जाऊंगा तो ! खुदको मालुम नहीं है कि कहाँ गिरा हूँ ? कितना गभड़ाता है ? ऐसा लगता है कि बस ! मैं अब नहीं बचूंगा, अब मरणके शरण होने के सिवा दूसरा कुछ दिखता नहीं है । अच्छे से अच्छा तिरैया हो तो भी चार-छः-आठ घंटे तैरनेके बाद थक जाय और बादमें डुबे ही डुबे । ऐसी आखरी परिस्थिति हो, डुबनेकी तैयारी हो उसमें कोई उपरसे हेलिकोप्टरमेंसे कुरसी बांधकर रस्सी डाले (और कहे) कि बैठ जा भाई ! मैं तुझे उपर ले लेता हूँ । तब उसे हेलिकोप्टरमें कोई आदमी है या देव है ? कोई ऊँच कुलका है या नीच कुल का है ? कोई स्वरूप है या कुरूप है ? ऐसा देखनेका विकल्प आयेगा क्या ? कि तुम्हारी शक्ल देख लूँ, तुम्हारा मूँह देख लूँ फिर बैठूँगा कहीं बीचमें छोड़ देगा तो ? कोई सवाल ही नहीं उठता । उसको तो ऐसा ही लगता है कि कोई सचमुच परमेश्वर ही मुझे बचानेको आयें है । ऐसी परिस्थितिमेंसे मुझे बचानेवाले भगवानके सिवा दूसरा कोई हो ही (नहीं सकता) । (वे ही) मुझे बचा सकते हैं - ऐसी मेरी स्थिति थी ।

ठीक वैसे ही संसार समुद्रमें खुद डुब रहा है ऐसा भान होता (है), समुद्रके बीचमें हैं और उसमें भी मगरमच्छके मूँहमें है । नियमसारमें ऐसा लिया है कि संसारमें तू मगरमच्छके मूँहमें पड़ा

हो, मूँह बंध करे उतनी देर लगेगी ऐसा भान हो और फिर कोई सत्पुरुष मिले व आत्मा पर असर पहुँचे तब वे सत्पुरुष मात्र सत्पुरुष नहीं दिखते हैं (बल्कि) भगवान दिखते हैं । क्योंकि खुद (पुरा) संसारसे पार हो जाता है ।

“उन सत्पुरुषोंको अत्यंत भक्तिसे नमस्कार है । उनकी निष्कारण क रुणाकी” कैसी क रुणा है ? कोई स्वार्थ नहीं है - निस्पृह है, (उनको) कुछ नहीं चाहिये । “...नित्यप्रति निरंतर स्तुति करनेसे भी आत्मस्वभाव प्रगट होता है ।” देखिये ! ऐसी भक्ति करते करते भी स्वभाव प्रगट होता है । ऐसा कृपालुदेव कहते हैं ।

सुबहके स्वाध्यायमें स्पष्ट बात की थी वह इस प्रकारसे है । सत्पुरुषका स्तवन करनेमें सत्पुरुषका जो निष्कारण करुणाका गुण प्रगट हुआ है न ! उसका स्तवन करनेमें आये, उसकी स्तुति करनेमें आये तो भी इस जीवका दर्शनमोहका अनुभाग कम होकर (व) अनन्तानुबंधीका अनुभाग भी कम होकर स्वभावके प्रगट होनेकी भूमिका आये, जरूर आये, यह निःशंक बात है । कृपालुदेवका यह वचन अटल है ।

“ऐसे सर्व सत्पुरुषोंके चरणारविद सदा ही हृदयमें स्थापित रहे । उनके चरणकमलको मुमुक्षु जीव अपने हृदयमें स्थान देता रहे ।

“ध्यान मूलं गुरु मुर्ति, पुजा मूलं गुरु पदम,

मंत्र मूलं गुरु वाक्यम्, मोक्ष मूलं गुरु कृपा ॥”

एक एक वाक्य मंत्र वाक्य है । संजीवनीका मंत्र है । कैसा मंत्र है ? संजीवनीका मंत्र है । ‘और मोक्ष मूलं गुरु कृपा’ गुरुकी कृपा कब होती है ? जब अपनी लायकात हो तब क्योंकि वह तो निस्पृह हैं । लेकिन मुमुक्षुजीव की यथार्थ योग्यता देखते हैं तो

ज्ञानीपुरुषका चित्त भी प्रसन्नता का अनुभव करता है । जब भी कोई जघन्य मुमुक्षु भी शुद्ध अंतःकरणसे प्रवेश करना चाहता हो, तब ज्ञानीपुरुषको भी चित्त प्रसन्नता होती है । और यह जो चित्तप्रसन्नता है उसको ही गुरुकृपा कहनेमें आती है । चमड़ेका हाथ सर पर फिराते हैं (उसमें) वैसा नहीं है परन्तु उनकी जो चित्तकी प्रसन्नता है - वह जीवको लक्षमें लेते हुए, उनकी योग्यता को देखकर चित्तकी प्रसन्नता आती है । तब ऐसा कह सकते हैं कि इस जीव पर सत्पुरुषकी कृपा वर्तती है । उस कृपाके फलमें जरूर इस जीवका आत्मकल्याण होगा । इस तरह पहला नमस्कार वचन सत्पुरुषकी अत्यंत भक्तिसे व उनके चरणारविंदकी हृदयमें स्थापना करनेकी भावनासे हुआ ।

श्रोता : सत्पुरुषके हाथ को चमड़ेका हाथ कैसे कह सकते हैं ?

पू. भाईश्री : कहना तो नहीं चाहिये लेकिन कइ लोगोंको बाह्य क्रिया का आग्रह होता है । मेरे सर पे (गुरुका) हाथ फिरे और मेरा कल्याण हो जाय; इसके कारण उसका आग्रह करते हैं, जब कि चित्तकी प्रसन्नता वह वास्तवमें सर पर हाथ है । चमड़ेका हाथ तो नहीं कहना चाहिये क्योंकि व पुद्गल के परमाणु जो हैं वे भी निर्मल चैतन्यसे प्रभावित हुए पुद्गलके परमाणु हैं !!

“जिसके वचन अंगीकार करनेपर छः पदोंसे सिद्ध ऐसा आत्मस्वरूप सहजमें प्रगट होता है,” क्या कहते हैं ? कि जो मूल स्वरूप है आत्माका - संपूर्णपना, अविनाशीपना, अत्यंत आनन्दपना, अनन्त ज्ञानपना, अत्यंत शुद्धपना, ऐसा जो आत्मस्वरूपमें सर्वकाल रहा है वह आत्मस्वरूप अनादिसे अप्रगट है । परन्तु “जिनके वचन अंगीकार करने पर ...” क्या कहा ? जिनके वचन अंगीकार करने

पर, जिनके वचनको सुननेसे ऐसा नहीं कहा, धारणामें, ज्ञानमें, स्मृतिमें रख लिया ऐसे नहीं, याददास्तमें रख लिया ऐसे नहीं बल्कि परिणमनमें लाना - ऐसा कहना चाहते हैं । यह उनकी बात मेरे लिये सर्वज्ञ भगवानकी आज्ञाके बराबर है, इसे शिरोधार्य करनेके सिवा दूसरा विकल्प मुझे नहीं हो, अगर शिरोधार्य नहीं करता हूँ तो आज्ञा पर पैर रखकर चलने जैसा बड़ा अपराध हो, इतनी गंभीरता रखते हुए जब कोई मुमुक्षु जीव उनके वचनको अंगीकार करता है तब उसको सहज मात्रमें ही आत्मस्वरूप प्रगट होता है । गुरुआज्ञासे तो अंतर्मुहूर्तमें केवलज्ञान प्रगट होता है, ऐसे अनेक द्रष्टांत पुराणोंमें मौजुद है । और आज्ञा पर सभी शास्त्रकारोंका बहुत जोर रहा है ।

“जिस आत्मस्वरूपके प्रगट होनेसे सर्व काल जीव संपूर्ण आनन्दको प्राप्त होकर ...” “सादि अनन्त अनन्त समाधि सुखमें, अनन्त दर्शन ज्ञान अनन्त सहित जो ...” ऐसी दशाको प्राप्त होकर सर्व कालके लिये **“निर्भय होता है ।”** जब तक प्रत्यक्ष स्वानुभव नहीं होता, तब तक संसारमें जीव सभी प्रकारके भयसे ग्रसित है व दुःखी है । उसे भयका दुःख भी है व सब भयसे ग्रसित है । **“उन वचनोंको कहनेवाले सत्पुरुषके गुणोंकी व्याख्या करनेकी शक्ति नहीं है;”** देखिये ! कृपालुदेव कितनी महिमा करते हैं !! उन सत्पुरुषके गुणकी व्याख्या क्या करें ? वाणीमें इसे कहनेकी शक्ति नहीं है । ज्ञानमें तो सबकुछ है ही । व्याख्या करना माने कहना । क्योंकि वचन-पुद्गल मर्यादित है जब कि वस्तुका स्वरूप व स्वभाव अमर्यादित है इसलिये अल्प वचनगोचर होते हैं ऐसी अशक्ति हैं ।

“क्योंकि जिसका प्रत्युपकार नहीं हो सकता, ऐसा परमात्मस्वभाव मानों कुछ भी इच्छा किये बिना मात्र निष्कारण करुणाशीलतासे दिया; ऐसा होने पर भी जिसने दूसरे जीवको यह मेरा शिष्य है

अथवा मेरी भक्ति करनेवाला है, इसलिये मेरा है, इस प्रकार कभी नहीं देखा, ऐसे सत्पुरुषको अत्यंत भक्तिसे वारंवार नमस्कार हो !” इस वचनामृतमें बहुत गहरी बात लिखी है । उसका विस्तार हम कल सुबहके स्वाध्यायमें करेंगे । अभी समय हो चूका है ।



ज्ञानमें सहज प्रत्यक्षता है, उसे प्रतीतिभावसे बारंबार 'भावमें लेकर' (भावनासे) रस लेना - वेदन करना वह 'स्वानुभव' की विधि है । (श्रद्धेय पू. भाईश्री)



जिसको परम उत्कृष्ट ऐसा जिनदेवका केवल अंतर्मुखताका मार्ग श्रवण प्राप्त भी नहीं हुआ है, वह हीनपुण्य जीव संसारके भयंकर दुःखसे मुक्त न हो सके, यह तो सहज है, परन्तु जिस जीवको परम सत्य लक्ष पर आया है, वह जीव क्षुद्र उदय प्रसंगो और साधारण विकल्पोमें स्वयंके महान स्वरूपको रोके रखता है, वह प्रमादमें रति है । प्रमादमें रति करने योग्य कुछ है ही नहीं । इसलिये हे जीव, त्वरासे स्वयंके महान पदको संभालकर अंतर्मुख हो, अंतर्मुख हो ।

क्षुद्र विकल्पोको सिद्ध करनेमें रुकना वह आत्माको आवरण करनेवाला है, अविवेक है ।

संसारके प्रति तीव्र उदासीनतासे और सत्समागमसे प्राप्त विशुद्ध (निर्मल) मतिसे कुछ एक जीवको केवल अंतर्मुख होनेका वह मार्ग समझमें आता है, जो कि सर्व दुःखक्षयका उपाय है । जिसको समझमें आता है वह निष्प्रमादरूपसे (उस मार्गका) अहर्निश आराधन करता है । (श्रद्धेय पू. भाईश्री)

प्रवचन - ९

दि-२८-७-१९९६ सुबह

श्रीमद् राजचंद्र वचनामृत । पत्रांक - ४९३ चल रहा है । जिन छः पदोंकी संकलना - योजना आत्मसिद्धि शास्त्रमें की है उसका गद्यरूपमें प्रतिपादन इस पत्रमें किया गया है । छः पदोंका विषय समाप्त हुआ है । आगे इन छः पदोंका जिन्होंने निरूपण किया है ऐसे सत्पुरुषोंको चार वचनोसे नमस्कार किया है । कृपालुदेवके यह नमस्कार वचन प्रसिद्ध हैं । लेकिन उसमें (साथमें) अध्यात्म भी भरा है व सिद्धांत भी भरा है । ऐसी गुढ़ व उच्चकक्षाकी बातें नमस्कार मंत्रके अन्दर सहजरूपसे कृपालुदेवकी कलममेंसे आयी हैं । जिसका रसास्वादन करने जैसा विषय है ।

स्वाध्याय हमेंशा भक्ति सहित होता है । स्वाध्याय माने अकेले ज्ञानकी चर्चा ऐसा नहीं होता । जिन महापुरुषके वचनामृत हमारे समक्ष हैं उनके प्रति भक्ति तो व्यक्त हुए बिना रह नहीं सकती । और ऐसा प्रकार सहजरूपसे ही बनता है क्योंकि इन वचनोमें इतना माल भरा है । व स्वयं ही (कृपालुदेव) दूसरे नमस्कार वचनामृतमें यह बात करते हैं ।

“जिनके वचन अंगीकार करने पर छः पदोंसे सिद्ध ऐसा आत्मस्वरूप सहजमें प्रगट होता है” इन छः पदोंसे शुद्ध आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होती है ऐसा कहते हैं । सिद्ध है माने कि प्राप्त है ।

ये छः पदोंको यथार्थरूपसे समझकर आत्मामें परिणमित हो, मात्र समझका धारणामें नहीं बल्कि आत्मामें परिणमित हो तो आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होती है । आत्मस्वरूप कहो या परमात्मस्वरूप कहो । अपने परमस्वरूपकी प्राप्ति होती है । ऐसा जिनके वचन अंगीकार करने पर सहज मात्रमें प्रगट होता है । जो महापुरुषोंके वचनोंको अंगीकार करनेसे यानीकि परिणमन करनेसे (अर्थात्) सुना, समझा और इसके आगे जाकर उसको अंगीकार किया-ग्रहण किया उसका अमलीकरण किया तो सहजमें प्रगट होता है । माने कृत्रिमता से नहीं, बल्कि स्वाभाविकरूपसे ऐसी दशा उत्पन्न होती है ।

“जिस आत्मस्वरूपके प्रगट होनेसे सर्व काल जीव संपूर्ण आनन्दको प्राप्त होकर निर्भय हो जाता है ।” ऐसा जो आत्मस्वरूप जब प्रगट होता है तब आखिरमें जीव सर्वकालके लिये माने सादि अनन्तकाल तक परमानन्द में बिराजमान होता है व संपूर्णरूपसे निर्भय होता है । किंचितमात्र भी उसे अपने शाश्वत व अव्याबाध स्वरूपमें निवास होनेसे भयका कारण नहीं रहता, विकल्पका कारण नहीं रहता ।

“... उन वचनोंके कहनेवाले सत्पुरुषोंके गुणोंकी व्याख्या करनेकी शक्ति नहीं है” खुद तो गुणकी व्याख्या करते जाते हैं । चारों वचनोंमें नमस्कार जो किये हैं वह गुण प्रधानतासे ही किये हैं - व्यक्ति प्रधानतासे नहीं किये हैं - किसी व्यक्ति का नाम नहीं लिया है । जब कि जैन दर्शनतो गुण प्रधान ही है । अनन्त तीर्थकर हुए इसलिये नाम भी अभी कुछ Common (समान) आते हैं क्योंकि नाम अनन्त नहीं है । शब्द अनन्त नहीं हैं संख्यात है इसलिए एक सरीखे नामवाले तीर्थकर भी होते हैं । नमस्कार मंत्रमें “णमो अरिहंताणं” ऐसे ही आता है । नमो: फलाना तीर्थकर ऐसा नहीं

आता । बहुत साल पहले यह बात सुनी थी तब प्रमोद हुआ था - जब जैनदर्शनमें प्रवेश नहीं हुआ था तब । यह बात सुनी थी कि हमारे में तो 'नमोः अरिहंताणं' है उसमें किसी व्यक्ति की पूजा नहीं है । जिन्होंने अन्दरके शत्रुओंको मारा, जीता है, उसका घात किया है उन्हें नमस्कार करते हैं । और कई बार नाम लेकर भी नमस्कार करनेमें आता है तो वह सर्वथा अनुचित नहीं है; क्योंकि प्रत्यक्ष उपकारी हुए हो तो उनका नाम लेनेमें तो बाधा नहीं है । उन्होंने (कृपालुदेवने) कहा कि नाम लेकर भी यहाँ हम नमस्कार करते हैं । वहाँ भी ऐसा ही समझना कि उस व्यक्तिमें जो गुण प्रगट हुए थे, उस ज्ञानीमें, सत्पुरुषमें जो गुण प्रगट हुए थे उन गुणोंका वहाँ नमस्कार-पूजन-वंदन होता है । वह धर्मका पूजन है । वहाँ नाम लिया जाय कि नहीं लिया जाय (परन्तु गुण पूजन हो जाता है) । इसलिये किसी व्यक्तिके नामसे भी पूजा होती है । अपनेमें तीर्थकरोंका नाम लेकर भी पूजा होती है फिर भी वहाँ गुण प्रधानता है - गुणपूजा है । मात्र व्यक्ति पूजा तो तब कह सकते हैं जब तथा प्रकारके गुण नहीं हो फिरभी पूजनेमें आता हो । तब तो मात्र व्यक्तिपूजा हुई । गुण प्रगट होनेके बाद नामसे या बिना नामसे जो कुछ (भी) करनेमें आता है वह गुण प्रधानता से ही करनेमें आता है । और इसलिए यहाँ कहते हैं कि हमारी तो सत्पुरुषके गुणकी व्याख्या करनेकी भी अशक्ति है ।

कृपालुदेवकी लेखनी कितनी समर्थ है !! यह हमें किसीको भी समझानेकी जरूरत नहीं है । अच्छी तरहसे हम प्रभावित हुए हैं । वे खुद जब ऐसा कहते हैं कि मेरेमें शक्ति नहीं है तब उन्हें सत्पुरुषकी महिमा कितनी होगी ? इतना ही विचार करने योग्य है । "क्योंकि जिसका प्रत्यपका नहीं हो सकता, ऐसा

परमात्मभाव मानों कुछ भी इच्छा किये बिना निष्कारण करुणाशीलता से दिया;” क्या कहा ? क्यों अपनी अशक्ति बतायी ? इसका कारण देते हैं कि जो परमात्मभाव दिया वह भी किसी भी प्रकारके बदलेकी इच्छा बिना दिया, और जब उनका उपकार तो अनन्त है, उपकार के आगे कुछ भी लेनेके लिये निस्पृह है, तब उस अनन्त उपकारके लिये, अनन्त उपकार लिखनेके लिये शब्द लाएं कहाँ से ? इसलिये अशक्ति है । क्योंकि जो भी शब्द कहेंगे उसकी मर्यादा आ जाती है ।

इसलिये ऐसा कहते हैं कि (जिसका) प्रत्युपकार नहीं हो सकता, ऐसा जो परमात्मभाव मानों कुछ भी इच्छा किये बिना मात्र निष्कारण करुणाशीलतासे दिया; क्या कहा ? ‘दिया’ ऐसा कहा, ‘समझाया’ ऐसा नहीं कहा । जब किसी जीवको अपने सदगुरुसे आत्मप्राप्ति होती है तब उसे ऐसा अहोभाव आता है, कि वास्तवमें उन्होंने मुझे मेरा परमात्मा दिया, समझाया उसमें थोड़ा कम पडता है । उतनी अलुघता भी नहीं पोसाती है - एकदम पूरी लघुता आजाती है, नम्रता आजाती है कि “ते तो प्रभुए आपियो” आत्मसिद्धिमें भी उन्होंने ऐसी ही पद रचना की है । कि “ते तो प्रभुए आपियो” सिद्धांतिक बात दूसरी है कि एक द्रव्य किसी दूसरे द्रव्यको कुछ दे नहीं सकता । कुछ लेने-देनेका प्रश्न नहीं है । लेकिन यहाँ तो वह सिर्फ जाननेका विषय है । शास्त्रोकी बहुत बातें हैं ।

प्रश्न : भक्ति किस प्रकारका अनुयोग है कि जिसको चारों अनुयोगमें से किसी से भी बाधा नहीं होती ? व चारों अनुयोगमें वह Involved (समाविष्ट) रहती है ?

पू. भाईश्री : भक्ति जो है उस भक्तिको (ही एक) अनुयोग है ऐसा ले लो न ! हमें कहाँ बाधा है ? उसका (चारोंका) Extract

(निचोड़) चारोंका Extract (निचोड़) ले लेना । 'धवला' एकदम Pure (शुद्ध) करणानुयोगका ग्रंथ है । करणानुयोगका शास्त्र है । उसमें वीरसेनस्वामी लिखते लिखते कई जगह अध्यात्ममें आ जाते हैं । धवलाके बहुत अच्छे अभ्यासी हमारे एक मुमुक्षु थे, अभी तो नहीं रहे उनका स्वर्गवास हो गया । (लेकिन) बहुत अच्छे धवलाके अभ्यासी थे । उन्होने पूछा था, ऐसा क्यों होता होगा ? यहाँ विषय तो करणानुयोगका चल रहा है उसमें बीचमें अध्यात्म कहांसे आ गया ? मैंने कहा भाई ! वह उसका Heart (हृदय) है, क्या ? करणानुयोगमें सब कर्मका बंधारण व Construction का विषय आता है । लेकिन उनका Heart (हृदय) तो दूसरी जगह है, और वह बीचमें आये बिना नहीं रहता । जिसको जिसकी महिमा होती है, वह प्रदर्शित हुए बिना नहीं रहती ।

भक्ति भक्तिके तरीकेसे होती है । उसके लिए ध्यानमें रखने योग्य एक बात है कि दो खाते रखना । जो भी बातें शास्त्रसे पढ़ने मिले या श्रवण हो, उसके लिए दो खाता रखना । एक खाता जाननेका व दूसरा आचरणका । खतवणी इस तरह करते जाना । अलग - अलग खाता क रके वहीखातामें हम खतवणी करते हैं न ! यहाँ पर तो दो ही खाता रखना । बहुत सी बातें हैं । वस्तुके स्वरूपमें अन्यथा कल्पना नहीं हो जाय उसके लिए सिद्धांतोको समझ लेना, और फिर मेरी भूमिकामें अब क्या अमल करने योग्य है ? अंगीकार करने योग्य क्या है ? मैं क्या करूं तो मुझे आत्मलाभ हो ? ऐसा एक दृष्टिकोण रखकर अमुक बातें उस खातेमें रख सकते हैं ।

दृष्टांत लें कि कृपालुदेव एक पत्रमें कहते हैं कि चौदह गुणस्थान जाननेका विषय है । क्या लिखा ? कि चौदह गुणस्थान है वे

जाननेका विषय है । क्योंकि वह कर्मकी सिद्धांतिक बात है । करणानुयोगका विषय है ।

पूनः २५४ पत्रांकमें खुदने कहा कि, सत्पुरुषमें परमेश्वरबुद्धि उसे परमधर्म कहा है । कैसा धर्म कहा है ? उसे परमधर्म कहा है । उसे परम धर्म क्यों कहा ? क्योंकि वहाँ मुमुक्षुकी भूमिकाका प्रकरण चलता है । वह मुमुक्षुको अमल करने योग्य बात है, कि अगर इस कालमें भी उसे कोई सत्पुरुष मिले तो उसकी पहचान हो । और अगर कुछ आत्मलाभ होनेका अवकाश दिखें तो उनमें परमेश्वरबुद्धि आये बिना नहीं रहती । (और) उसमें अगर कमी रही तो (स्वरूपकी) प्राप्ति नहीं होती । पदार्थनिर्णय नहीं हो सकता ऐसा कहा । यानी कि स्वरूपकी पहचान नहीं होती । और सत्पुरुषकी पहचान हुए बिना किसीको स्वरूपकी पहचान होती नहीं है । वह पत्रांक २१३ में उन्होंने स्पष्ट किया । अतः कई बाते मात्र जाननेके लिये रखनी व आदर करने योग्य बातोंको मुख्य करके उनका आदर करना । इस प्रकार हमारा आगे बढ़नेका एक नीति-नियमसे बना हुआ कार्य हमें समझना ।

किसी भी काममें कायदे भी होते हैं व नीति भी होती है । हिन्दुस्तानके बंधारणमें कायदे बहुत हैं और उस बंधारणके कायदेका पालन सबको करना पड़ता है (भले ही) राष्ट्रपति हो या सामान्य आदमी हो । जब सरकार बदलती है तब नीति बदलती है । कायदे वही के वही रहते हैं । वैसे विषय सिद्धांतिक है लेकिन भूमिका हर एक की अलग-अलग है । मुनिओंका उपदेश मुनिओंको लागु होता है, भगवान जो उपदेश ज्ञानीयोंको देते हैं वह ज्ञानियोंको लागु होता है व मुमुक्षुको जो उपदेश देते हैं वह मुमुक्षुओंको लागु पड़ता है ।

कृपालुदेव यहाँ कहते हैं कि जिसका प्रत्युपकार नहीं हो सकता ऐसा, परमात्म भाव जिसने दिया था तो सही अन्दरमें (परमात्मा) (लेकिन) खोयी हुई चीज थी । अनन्तकालसे स्वयंकी गुण संपत्ति खो बैठा था, उसका बेभानपना था और इसलिये स्वभाव परिणामसे परिणमन नहीं कर सकता है । पत्रांक - ७१० में कहा कि **“भान होने पर स्वभाव परिणामी है ।”** आत्मा भान होने पर स्वभाव परिणामी होता है । - ऐसा जिसने अपने स्वरूपका भान कराया हो (तो) अति भक्तिभावसे ऐसा कह सकते हैं कि वह तो प्रभुने मुझको दिया । उसको ऐसी लगनी लगती है, ऐसी लगनी लगती है कि ऐसी बात सहजरूपसे भक्तिमे शब्दारुढ़ हो जाता है ।

“ऐसा परमात्मभाव मानों कुछ भी इच्छा किये बिना मात्र निष्कारण करुणाशीलतासे दिया; ऐसा होने पर भी जिसने दूसरे जीवको यह मेरा शिष्य है, अथवा मेरी भक्ति करनेवाला है, इसलिये मेरा है, इस प्रकार कभी नहीं देखा ।” सामान्यरूपसे संप्रदायमें व किसी भी धर्म में गुरु होते हैं, मुख्य होते हैं, नेता के स्थानमें होते हैं, उसे एक पक्षपात रहता है कि जो मेरी भक्ति करता हो वह मेरा और मेरी भक्ति नहीं करता हो वह मेरा नहीं (लेकिन) वीतरागदर्शनमें ऐसा नहीं है । जिसका वीतराग दर्शनमें प्रवेश होता है ऐसे ज्ञानीपुरुषसे लेकर व उपरके किसी भी गुणस्थानवालेको सभी जीवोंके प्रति एक समान समभाव आता है । द्रव्यदृष्टि हुई है न ! आनन्दघनजी महाराजने गाया है,

“प्रभु तुम जाणत रीति, सौ जगत देखता हो लाल,
शुद्ध सत्ताए सौने पेखता हो लाल ॥”

प्रभु ! आपकी तो जगतको जाननेकी रीत ही कोई ओर है किसीको ऊँचा - नीचा देखते ही नहीं हो । सबको शुद्ध सत्तासे

देखते हो । क्योंकि निज शुद्ध सत्ताक १ जिसने देखा वे सभी आत्माओंको वैसे ही देखते हैं । इसलिए यह मेरा है व यह मेरा नहीं है, यह मेरे पास आता है इसलिए मेरा है और यह मेरे पास नहीं आता है इसलिए मेरा नहीं है ऐसा दृष्टिकोण ज्ञानीको कभी होता नहीं है । ऐसा दृष्टिकोण ही छूट गया होता है । कृ.देवने पत्रांक - ४६९ में लिखा है कि जैसी इच्छा इस आत्माके लिये है वैसी सभी आत्माओंके लिए इच्छा रखता हूँ, जैसी इच्छा इस देहके लिए रखता हूँ वैसी ही सबके लिये रखता हूँ । गजबकी बातें आयी हैं !! समभावकी भी बातें गजबकी आयी हैं ।

हाँ । कोई पात्रतावान जीव हो, तो प्रसन्नचित्त होते हैं । चित्तकी प्रसन्नता होती है कि यह जीव आगे बढ़ेगा (व) ज्ञानदशाको प्राप्त होगा । फिर भी कहते हैं कि किसी जीवमें मेरा-तेरापन करते नहीं है । ऐसा कभी नहीं देखते यानी कि निष्कारण करुणाशीलताभाव सभी के लिए सरीखा है, भले ही विरोध करता हो तो भी । (अरे !) अपनी शिरच्छेद करनेवाला हो तो भी उसको सिद्धपद समान ही देखते हैं । तू भले कुछ भी मानता हो । कि मैं उनका विरोधी हूँ । (लेकिन) हमारी नजरमें तुम आत्मा हो, आत्मा हो और आत्मा ही हो उसमें हमें और कुछ देखनेका सवाल ही नहीं रहता । स्वभाविक है कि आप अपने स्वरूपको भूले हो इसलिये गलत भाव हो जाता होगा परन्तु वह क्षम्य है । वह भी प्रभु है, भूला हुआ प्रभु है लेकिन ठिकाने आ जायेगा ऐसा समभाव (उन्हें) रहता है । "ऐसे सत्पुरुषको अत्यंत भक्तिसे वारंवार नमस्कार हो ।" स्वयं ऐसे सत्पुरुषको वारंवार नमस्कार करते हैं ।

अब तीसरा नमस्कार वचन है "सत्पुरुषोंने सदगुरुकी जिस भक्तिका निरुपण किया है, वह भक्ति मात्र शिष्यके कल्याणके लिए

कही है । सभी सत्पुरुष सद्गुरुकी भक्तिका निरुपण करते हैं . जिससे आत्मलाभ हो ऐसे ज्ञानीपुरुषको ज्ञानी भगवंत भी कहते हैं, उन्हें ज्ञानी सद्गुरु भी कहते हैं और सत्पुरुष भी कहते हैं । भक्तिसे जब भी जो कुछ कहनेमें आता है तब उसमें गुणस्थानका सिद्धांत देखनेमें नहीं आता । तब उन्हें सद्गुरु, ही गिननेमें आते हैं (और) उन्हें भगवान भी गिननेमें आते हैं । सत्पुरुषोंने जो सद्गुरुकी भक्तिका निरुपण किया है उसके पीछे हेतु है । और वह हेतु फक्त इतना ही है कि शिष्यका कल्याण हो । वह कैसे ?

बहुत सीधा सादा गणित है इसके पीछे कि जिन्होंने मोहका अभाव किया है ऐसे जो निर्मोही पुरुष वे सद्गुरु है । वैसे निर्मोही पुरुषकी भक्ति माने उसकी (महिमा) । भक्ति माने बहुमान, उनके गुणोंका गुणानुवाद । ऐसी (भक्ति) करनेसे, भक्ति करनेवालेका दर्शनमोह का अनुभाग घटता है इसलिए (निरुपण किया है) । दर्शनमोहके अभावकी ओर उसका प्रयाण चालु होता है । कृपालुदेवने सद्गुरुको विशेषरूपसे आदर करके स्थापित किये हैं उसके पीछे केवल आत्माकल्याण का ही हेतु है ।

एक जगह लिखते हैं, ऐसी बातें हम करते हैं, सत्पुरुष होकर सत्पुरुषकी बात करनी पड़ती है, वह भी काल ऐसा आया है इसलिये करनी पड़ती है । एक जमाना ऐसा होगा कि ऐसी बातें नहीं करनी पड़ती होगी । इसलिए परमागमोंमें इस बातका संक्षेप है बल्कि ज्यादा विस्तार नहीं है । समयसार जैसे महान परमागम शास्त्र है उसमें सत्पुरुषका विषय इतना विस्तारवाला नहीं है । नियमसारमें भी सत्पुरुषका विषय इतना विस्तारवाला नहीं है । अष्टपाहुड़में कोई कोई जगह लिया है । पंचास्तिकायमें भी उतना नहीं लिया है । इसका कारण क्या होगा ? कि उस जमानेमें शायद उतना कहनेकी

आवश्यकता नहीं लगी होगी कि यह भी समझाना पड़े ।

यहाँ ऐसी सूचना कब लिखनी पड़े, कि 'यहाँ धुम्रपान करना मना है' ? कि जब कोई भूलसे धुम्रपान करता हो तब । लेकिन Disciplinary (नियमानुसार) इतनी बात होती है कि यहाँ धुम्रपान हो ही नहीं सकता, ऐसा करनेका विचार भी नहीं हो सकता फिर सूचना लिखनेकी जरूरत नहीं रहती कि यहाँ धुम्रपान करना मना है । उस जमानेमें शायद ऐसा कहनेकी जरूरत महात्माओंको नहीं लगी होगी लेकिन इस जमानेमें तो कृपालुदेवको ज्यादा जरूरत दिखी इसलिये सत्पुरुषका विषय बहुत लिया । बहुत लिया माने पत्रांक - २१३ में तो Fantastic (अजब-गजब की) बातें लिखी है । आत्माको गौण किया है, परमात्माको गौण किया है और सत्पुरुषको मुख्य किया है । इतनी सारी लिखावटके पिछे उसका हेतु है । उसमें उनका हेतु अन्य जीवोंके कल्याणके सिवा और कुछ नहीं है और खुदको ऐसी जरूरत दिखी कि खुदको सत्पुरुषकी बात करनी होगी ।

तब, उन्होंने एक जगह सूचना भी की है कि हम यह बात आपको करते हैं इसलिए आप लोग हमें लक्षमें रखकर हमको बंधन मत करना । और अगर कभी हमारी महिमा करानेके लिए यह बात करते हैं ऐसा विकल्प जब (आपको) आ जाय उस दिन मार्गके (क्रमको) भूले हो ऐसा समझ लेना । बहुत करके २१२ पत्रांकमें कहा है । देखें अपन, २७१ पन्ने पर है । **“आप सब अभी तो हमें एक प्रकारका बंधन करने लगे हैं, इसके लिये हम क्या करें यह कुछ सूझता नहीं है ।”** क्योंकि एक तरफसे हम ही सत्पुरुषकी भक्तिकी स्थापना करते हैं और दूसरी तरफसे हम कहते हैं कि यह सब आप छोड़ो, भाईसाब ! हमें छोड़ दिजिये, दूसरी जगह

जहाँ जो करना हो कीजिये । (उस ही पेरामें आगे कहते हैं) "सजीवनमूर्तिसे मार्ग मिलता है ऐसा उपदेश करते हुए हमने स्वयं अपने आपको बंधनमें डाल लिया है, कि जिस उपदेशका लक्ष्य आप हमको ही बना बैठे हैं । हम तो उस सजीवनमूर्तिके दास हैं, चरणरज हैं । " कितनी नम्रता है !! खुद सत्पुरुष हैं फिर भी कितनी नम्रता है । (पुनः आगे कहते हैं) "हमारी ऐसी अलौकिक दशा भी कहाँ है कि जिस दशामें केवल असंगता ही रहती है ? हमारा उपाधियोग तो आप प्रत्यक्ष देख सके, ऐसा है ।" व्यापारमें बैठे हैं, घर-संसार के बीच बैठे हैं । लेकिन व मुमुक्षुओ कोई ऐसे ही मान जाय ऐसे नहीं थे । खुद तो अपने लिये ऐसा ही लिखें ये स्वाभाविक है । (लिखते हैं) हमारी स्तुति-पूजाके लिए ऐसी बातें की हैं ऐसा जिस दिन लगे उस दिन समझ लेना कि मार्ग का क्रम भूल चूके हो । १७२ के उपरका पत्रांक है, १७१ पत्रमें है कि "पत्र लिखनेका उद्देश्य मेरे प्रति भाव करानेके लिये है, ऐसा जिस दिन मालूम हो... " श्री अंबालालभाई को पत्र लिखते हैं, (एक) भक्तिवंत को पत्र लिखा है, "उस दिनसे मार्गका क्रम भूल गये ऐसा समझ लीजिये । यह एक भविष्यकालमें भी स्मरण करने योग्य कथन है ।" आगेसे चेतावनी दे दी है । भक्तिवंत थे । अंबालालभाई की भक्ति सुप्रसिद्ध है, फिर भी सूचना दी है । क्योंकि जीवको कभी विकल्प आ जाता है कि कई इसके लिये तो ऐसी बातें नहीं करते होंगे न ? (ऐसा जब हो तब) मार्गका क्रम, भूल गये हो । यहाँ पर जो कहा है वह सिर्फ शिष्यके कल्याणके हेतु कहा है ।

"जिस भक्तिको प्राप्त होनेसे सद्गुरुके आत्माकी चेष्टामें वृत्ति रहे, अपूर्व गुण दृष्टिगोचर होकर अन्य स्वच्छन्द मिटे, और सहजमें

आत्मबोध हो, ऐसा जानकर जिस भक्तिका निरुपण किया है, उस भक्तिको और उन सत्पुरुषोंको पुनः पुनः त्रिकाल नमस्कार हो ।" यहाँ बहुत सुन्दर - अच्छी बात की है । कि ऐसी आत्मकल्याणकारी जो भक्ति है, वैसी भक्ति अगर मुमुक्षुको प्राप्त होती है तो उसकी दशा कैसी होती है ? वह बात समझायी है । कि तब सद्गुरुके आत्माकी चेष्टाके प्रति वृत्ति रहती है । उनके निर्मल चैतन्यकी जो जागृति है, उनका जो अंतर्मुखी पुरुषार्थ है, उदयकी कोई भी अवस्थाओं में जिनकी शुद्धात्माकी पकड़ छूटती नहीं है (उसके प्रति वृत्ति रहती है) ।

यह जो कथानुयोग लिखा गया है वह इसलिये ही लिखा गया है । कथानुयोगका रहस्य यही है । भरतजी और बाहुबलिजी लड़े थे, उस लड़ाईको दिखानेके लिये उस प्रसंगका निरुपण नहीं है, बल्कि जब चारित्रमोहका प्रबल व बलवान उदय था तब भी, वे क्षायिक सम्यक्दृष्टि चरमशरीरी थे और उनकी पकड़में शुद्धात्मा जरा भी खिसका नहीं था, श्रद्धा-ज्ञानमेंसे वह विषय छूटता नहीं था, और चारित्रकी आंशिक परिणति भी वहाँ रहती है, दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों साथमें ही रहते हैं, (उसको दिखाने के लिये हैं) । लेकिन बाह्य चारित्रमें तो इतना विपर्यास दिखता (है) ! जगतकी दृष्टिसे तो विपर्यास दिखता है फिर भी अन्दरमें श्रद्धा, ज्ञान, चारित्रमें शुद्धात्माके साथ अभेद परिणति वर्तती है - इसमें कोई फर्क नहीं है । आत्म स्वभाव वैसा का वैसा रहता है । कृपालुदेव कहते हैं कि इतना कुछ करते हैं फिर भी आत्मा तो भिन्न ही वर्तता है । इतना व्यापार चलता है फिर भी आत्मा उससे भिन्न रहता है । सभी ज्ञानीयोंकी यही दशा होती है ।

श्री रामचंद्रजीका वर्णन आता है । जब सीताजीका हरण होता

है (तब) रामचंद्रजीको रोते हुए दिखाते हैं । जैन रामायणमें उन्हें रोते हुए दिखाये हैं । पौधेको, पेड़को रोते-रोते पूछते हैं कि मेरी सीता को कहीं देखा ? लोगोंको ऐसा लगे कि जैसे पत्नीके पीछे पागल हो गये हैं क्या ? बाह्यदृष्टिसे ऐसा लगता है । और लक्ष्मणजीका जब स्वर्गवास होता है तब उसके शरीरको कंधे पर लेकर फिरते हैं, कि मरा ही नहीं, मेरा भाई मरा नहीं, मुझे छोड़कर जा ही नहीं सकता । राजवैद्य ऐसा कहें कि अब लक्ष्मण नहीं रहें तो उनको भी ऐसा कहते हैं कि आपकी समझमें नहीं आयेगा, रावणके साथ लड़ाईमें बेशुद्ध हो गया था, जब बेशुद्धि हो जाती है तब ऐसा ही लगता है, मुरदे जैसा ही लगे, आपका इसमें काम नहीं है, इसमें मेरा काम है ऐसा रामचंद्रजी कहते हैं । इतना विलाप करते हैं पत्निके पीछे व भाईके पीछे - इस विभाव परिणामको दिखानेके लिये बात नहीं की है । आचार्योंका लिखा हुआ ग्रंथ है । श्री रविषेण आचार्यने (लिखा है) । दिगम्बर आचार्योंने जंगलमें रहकर लिखी हुई बातें हैं, वहाँ भी उनकी उस वख्तकी ज्ञानदशाका प्रदर्शन करना है, जिसके कारण जीव भूल नहीं करे, ज्ञानीमें शंका नहीं करे, सत्पुरुषमें शंका नहीं करे । इस तरह कथानुयोगका आशय बहुत गहन है । उसमें किसी ज्ञानीके अवगुण गानेके लिये कथा की है क्या ? नहीं, बल्कि उनके सद्गुणको वहाँ दिखाना है और सद्गुणको देखनेकी दृष्टि प्राप्त कराने के लिये कथानुयोग है । ऐसा अन्दरसे तात्पर्य व रहस्य निकालना चाहिये ।

यहाँ कहते हैं "जिस भक्तिको प्राप्त होने से सद्गुरुके आत्माकी चेष्टामें वृत्ति रहे" उनकी आत्मिक परिणतिमें जो चेष्टा है यानी कि पुरुषार्थ है, प्रयत्न है, अंतर्मुखी पुरुषार्थ है उसमें भक्ति करनेवालेकी वृत्ति रहा करती है । ओहो !

बोलते हैं, चलते हैं, फिरते है, हँसते हैं, या रोते हैं (तब भी) उनकी अंतरंग चेष्टा कुछ और है, आत्माकी चेष्टा कुछ अलग ही है ।

ऐसा "अपूर्वगुण दृष्टिगोचर होकर अन्य स्वच्छन्द मिटे" स्वच्छन्द मिटता है माने क्या ? जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि ! सब अपने हिसाबसे नाप निकालते हैं । यानी कि बाह्य दृष्टिवान जीवों ज्ञानीको भी अपनी कल्पनासे नापते रहते हैं जो कि उनका स्वच्छन्द है । हरएक की एक Pshychology (मानसिक स्थिति) होती है और अपनी उस Pshychology (मानसिक स्थिति) के हिसाबसे ज्ञानीको भी उसी दृष्टिसे देखते हैं । कहते हैं कि वह जीवका स्वच्छन्द है । (लेकिन) जब अपूर्व गुण दृष्टिगोचर होते हैं (यानी) सत्पुरुषमें प्रगट हुए - दर्शन, ज्ञान, चारित्र, आनन्द, शान्ति व निर्लेपता आदि दिव्यगुण जब दृष्टिगोचर होते हैं तब खुदकी लघुता, अपनी कमी दिखे बिना नहीं रहती । इसलिये स्वच्छन्द नहीं होता वरना स्वच्छन्द को मिटाना बहुत कठिन है । "मानादिक शत्रु महा, निज छंदे न मराय" कुछ भी करे लेकिन उसका मान चढ़ जाता है । अभी तो पर्यायबुद्धि है न ! इसलिये ज्ञान बढ़ता है तो ज्ञानका मान चढ़ता है, कषायकी मंदता अगर हो तो उसका मान चढ़ता है, व्रतादि करता है तो उसका मान चढ़ता है, दानादि करता हो तो उसका मान चढ़ता है । ऐसा कब नहीं हो ? "जाता सद्गुरु चरणमां, अल्प प्रयासे जाय" (आत्मसिद्धिशास्त्र गाथा - १८) । जब भक्ति पूर्वक उनकी महानता को देखता है तब पूरा पिघल जाता है । इसमें मेरा कोई क्लास नहीं है । (बल्कि) मैं तो उनकी चरणरज बनके रहूँ उतना ही मेरे लिये योग्य है । इस तरह "अन्य स्वच्छन्द मिटे" और जब यह स्वच्छन्द मिटता है तब "सहजमें आत्मबोध होता

है ।”

आत्मबोध कब होता है ? बोध जो है वह दर्शनमोह का घात करने का साधन है और वीतरागता जो है वह चारित्रमोह का घात करनेका साधन है ।

“कर्म मोहनीय भेद बे, दर्शन-चारित्र नाम,
हणे बोध वीतरागता, अचूक उपाय आम”

(आत्मसिद्धि गाथा - १०३)

क्रमकी बात ली है । बोध जो है दर्शनमोहका घात करता है, व वीतरागता जो है चारित्रमोहका घात करती है । भक्ति यथार्थ हो तो आत्मबोध होता है इससे सहजरूपसे दर्शनमोहका पराभव होता है । कृपालुदेवने तो भक्तिके विषयमें बहुत लिखा है । भक्ति जो है परम पदार्थ है । लेकिन स्वच्छन्द निरोध होनी चाहिये वरना उसका भी मान चढ़ने में देर नहीं लगती है कि मैं भक्तिवाला हूँ, मुझे बहुत (अच्छी) भक्ति आती है ।

“सहजमें आत्मबोध हो, ऐसा जानकर जिस भक्तिका निरुपण किया है, उस भक्तिको और उन सत्पुरुषोंको पूनः पूनः त्रिकाल नमस्कार !” उस भक्तिको भी नमस्कार करते हैं । जिसकी भक्ति करता है उस सत्पुरुषको तो नमस्कार है ही बल्कि उस भक्तिको भी हमारा नमस्कार हो !!

ज्ञानी कभी ऊंच-नीचका भेद नहीं देखते । भक्तिवानको भी नमस्कार करते हैं - और उसका प्रगट पुरावा है श्री सौभाग्य भाई । उनके (भक्तिवान) मुमुक्षुओंके समुहमें अगर कोई उत्कृष्ट थे तो वे सौभाग्यभाई थे कि जिसके सत्संगको स्वयं बारबार चाहते थे और उनको नमस्कार भी किया है । पत्रांक ४५३ में अंतिम वचनोंको देख लेना । ४५३ के अंतिम भाग में यह बात लिखी है ।

शिष्य तो गुरुको नमस्कार करे, लेकिन गुरु शिष्यको नमस्कार करे - ऐसा अजोड़ किस्सा यह है, क्योंकि उन्हें मान-अपमानकी कल्पना खत्म हो चुकी है । मान-अपमानकी कल्पना मिथ्यात्व अवस्थामें होती है । जब कि (ज्ञानदशामें) सबको आत्माके रूपमें देखते हैं । ऐसे ज्ञानदशाके समीप आये हुए मुमुक्षुकी भक्ति को भी नमस्कार करते हैं । और यह बात उन्होंने प्रगटरूपसे यहाँ लिखी है । यहाँ तक रखते हैं । समय समाप्त होता है ।



अभिनिवेशका अर्थ अभिप्राय होता है । विपरीत अभिनिवेश रहित श्रद्धा, ज्ञान, आचरण करनेकी श्री तीर्थकरदेवकी आज्ञा है । इसके बावजूद इस विषयसे अनजान ऐसे जीव, अविपरीत श्रद्धा, ज्ञान, आचरणमें प्रवर्तते प्रवर्तते कहीं न कहीं विपरीततामें दिखाई देते हैं, इसका कारण अभिप्रायकी भूल रह गई होती है । इसलिये सच्चा माननेका, सच्चा समझनेका या सत्संगादिमें प्रवर्तनेका फल जो आत्मलाभ उसकी प्राप्ति नहीं होती है - केवल वैचारिक निश्चयसे वंचनाबुद्धिमें रह जाता है । प्रयोजनका सूक्ष्म और तीक्ष्ण दृष्टिकोण नहीं होने से ऐसा बनता है । (श्रद्धेय पू. भाईश्री)

प्रवचन - १०

दि-१-८-१९९६ दोपहर

श्रीमद राजचंद्र वचनामृत । पत्रांक ४९३ चल रहा है । अंतिम नमस्कार वचन है "यद्यपि वर्तमानकालमें प्रगटरूपसे केवलज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हुई, परन्तु जिसके वचनके विचारयोगसे शक्तिरूपसे केवलज्ञान है, यह स्पष्ट जाना है, श्रद्धारूपसे केवलज्ञान हुआ है, विचारदशामें केवलज्ञान हुआ है, इच्छादशासे केवलज्ञान हुआ है, मुख्य नयके हेतुसे केवलज्ञान रहता है, जिसके योगसे जीव सर्व अब्याबाध सुखके प्रगट करनेवाले उस केवलज्ञानको सहज मात्रमें प्राप्त करने योग्य हुआ, उस सत्पुरुषके उपकारको सर्वोत्कृष्ट भक्तिसे नमस्कार हो । नमस्कार हो !!" यह एक वाक्य पूरा साड़े चार पंक्तिका है लेकिन अन्दर बहुत कस भरा है ।

"यद्यपि वर्तमानमें प्रगटरूपसे केवलज्ञान की उत्पत्ति नहीं हुई... " भगवान महावीरस्वामी हुए २५०० साल हो गये । भगवान महावीरस्वामी के बाद दो अंतिम केवली हुए । एक सुधर्मास्वामी व दूसरे जंबुस्वामी । उनका भी जन्म तो चौथे आरामें हुआ था । इस पंचमकालमें इस (भरत क्षेत्र) क्षेत्रमें जिसका जन्म हो उसे यहाँ के वलज्ञान उत्पन्न हो ऐसा कभी नहीं बन सकता ।

कोई तर्क करें कि क्यों नहीं हो सकता ? ज्ञानी धर्मात्मा स्वरूप लीनतामें तो आते हैं । अब बात तो रही अंतर्मुहूर्त लीन

रहनेकी । अगर अंतर्मुहूर्त लीन रहते हैं तो केवलज्ञान की उत्पत्ति होती है; परन्तु उतना समय लीन रह सके ऐसे परुषार्थका, ऐसा पुरुषार्थ कर सके ऐसी योग्यतावाले जीव यहाँ जन्म नहीं लेते हैं । यह एक भगवानके केवलज्ञानमें दिखी हुई वस्तुस्थिति है । अतः वह सिद्धांतिक बात है । कृपालुदेव अपने लिये लिखते हैं । किसके लिए लिखते हैं ? कि अपने लिए लिखते हैं ।

हमें वर्तमानमें प्रगटरूपसे केवलज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हुई है । आगे के सभी वचनोंमें केवलज्ञान है ऐसा कहेंगे । पूर्वापर वचन-विरोध बिलकुल नहीं है । ज्ञानीकी वाणीका (यह) एक अपूर्व गुण है । यद्यपि यहाँ तो कृपालुदेवने स्पष्ट किया है । अपेक्षाओंको स्पष्ट किया है कि जिस अपेक्षासे मैं केवलज्ञान कहता हूँ वह अपेक्षा दूसरी है और प्रगट रूपसे केवलज्ञानका प्रगट होना वह बात दूसरी है । वह बात कैसे है उसे स्पष्ट करेंगे ।

“वर्तमानमें प्रगटरूपसे केवलज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हुई” लेकिन फिरभी केवलज्ञान सम्बन्धी हमारा परिणमन है वह किस प्रकारसे वर्तता है उसका एक तादृश्य चित्र इस नमस्कार वचनमें उन्होंने रखा है ।

“परन्तु जिसके वचनके विचार योगसे शक्तिरूपसे केवलज्ञान है, यह स्पष्ट जाना है ।” क्या कहा ? शक्ति अपेक्षासे आत्मामें केवलज्ञान है । आत्मामें अनन्त शक्तियाँ हैं, उनमेंसे कुछ एक शक्तिओंका वर्णन -४७ शक्तिओंका वर्णन समयसारजीके परिशिष्टमें श्री अमृतचंद्राचार्य देवने किया है । उसमें एक सर्वज्ञ शक्ति है । ४७ शक्तिओंमें एक सर्वज्ञ शक्ति है । उसे सर्वज्ञ शक्ति कहो या सर्वज्ञशक्तिकी पर्याय कहो, वह केवलज्ञानरूप है । परन्तु हमें अभी वह शक्तिरूपमें है । व्यक्तिरूपमें नहीं है । शक्तिरूपमें है

माने कि व्यक्तिरूपमें नहीं है ऐसा कहना चाहते हैं । व्यक्तिरूपसे नहीं है वह बात उन्होंने पहले रख दी । लेकिन भले ही प्रगटरूपसे - व्यक्तिपने केवलज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हुई, शक्तिरूपसे केवलज्ञान वर्तता है । अब कोई ऐसा विचार करे कि शक्तिरूपसे केवलज्ञान है ऐसा कहा, ऐसा तो सभी आत्मामें है । शक्तिरूपसे सर्वज्ञशक्ति तो सभी आत्माओंमें - भव्य-अभव्य सभी में है । कोई बाकी नहीं है । मूलस्वरूपसे कोई अधूरा नहीं है । अभव्यको कभी सम्यग्दर्शन नहीं होता फिर भी मूल स्वरूपमें ऐसी शक्ति है । Properties (शक्तियाँ) सबमें एक सरीखी है । शक्तियाँ जो है वे Properties है । **“शक्तिरूपसे केवलज्ञान है, यह स्पष्ट जाना है”** यानी कि हमारे ज्ञानमें सर्वज्ञ शक्ति, हमारी सर्वज्ञ शक्ति स्पष्टरूपसे भास्यमान हो रही है । शक्तिरूपसे केवलज्ञान है - ऐसा जानने मात्रसे वैसी दशा नहीं आ जाती । जानना दो तरह से है । एक स्व-आश्रितपने व दूसरा पर-आश्रितपने से । यहाँ स्वआश्रितपनेसे बात है । हमारा जो स्वरूप है उसमें अनन्त गुण है । उसमें शक्तिरूपसे सर्वज्ञशक्ति है ऐसा स्पष्टरूपसे हमें भासित होता है । जाननेमें आता है अर्थात् भास्यमान होता है ।

अभी हम ऐसा विचार तो कर सकते हैं कि शक्तिरूपसे केवलज्ञानकी शक्ति हमारे सबमें भरी है लेकिन इससे कोई विकल्प - विचार मात्रसे उसका भान व उसका आधार नहीं आ जाता । परन्तु जब आत्मा अंतर्मुख होकर अतीन्द्रिय ज्ञानदशामें अपने स्वरूपका अनुभव करता है, तब उसे जैसा केवलज्ञानमें सर्वज्ञ परमात्माने अपने स्वरूपको जाना है वैसा अनुभवमें आता है । अभेद अपेक्षासे (अनुभवमें आता है) । भेदकी अपेक्षासे केवलज्ञानमें सर्व भेद, गुणोंके, धर्मके, पर्यायके सभी भेद जाननेमें आते हैं । लेकिन यहाँ उस अपेक्षासे बात नहीं

है । और अभेदरूपसे स्वरूपानुभवमें पहलेसे अंत तक कोई फर्क नहीं है । Degree का (तारतम्यताका) फर्क है । Quality का (जातिका) फर्क नहीं है । जाति तो एक सम्यक्ज्ञानकी (ही) है । केवलज्ञान की जाति भी सम्यक्ज्ञान का ही है और स्वानुभूति की जाति भी सम्यक्ज्ञानका ही है । स्व-पर प्रकाशक उसकी शक्ति है, मिथ्या व सम्यक् उसकी जाति है और अल्पज्ञत्व व सर्वज्ञता वह उसकी गति है । श्री बनारसीदासजीने अपनी चिट्ठिमें, रहस्यपूर्ण चिट्ठि में - वचनिकामें इस विषयको खोला है । जातिकी अपेक्षासे Quality में फर्क नहीं है लेकिन Quantity (तारतम्यता) में फर्क अवश्य है ।

इसलिए कहा कि शक्ति अपेक्षासे - शक्तिरूपसे केवलज्ञान है ऐसा हमने जाना है । अब कृपालुदेवके जाननेमें और इस वचनको पढ़ने-सुननेके बाद क्या फर्क पड़ता है ? इसका विचार करें कि धर्मात्माको अपना परमात्म स्वरूप प्रगटपनेसे अनुभव गोचर होता है तब संसारके किसी भी पदार्थकी आधारबुद्धि नहीं रहती । देहात्मबुद्धि छूट जाती है और भी सब विपरीत बुद्धियाँ है - अपनत्वकी, अहंपनेकी, कर्ताबुद्धि, भोक्ताबुद्धि, सुखबुद्धि है वे सब छूट जाती है । यानी कि वे स्वरूपका आधार लेकर कहते हैं । क्या फर्क है ? आश्रय लेकर, आधार लेकर कहते हैं । वचन तो वचन हैं लेकिन उसमें प्रभाव किसका है ? (कि) सर्वज्ञशक्तिका प्रभाव है ।

पंडित श्री राजमल्लजीने (समयसार की) दूसरे कलशकी टीका करते हुए सरस्वतीको नमस्कार किया है । जिनवणीका कलश है । वहाँ कहते कि वाणी भी पूज्य है । क्यों पूज्य है ? खुदने प्रश्न उठाया है । इसलिए पूज्य है कि यह वाणी सर्वज्ञ स्वभाव अनुसारिणी है । कैसी है ? अपना जो सर्वज्ञ स्वभाव है उसके अवलंबनपूर्वक, उसका आश्रय करके, उसका आधार लेकर यह वाणी प्रवर्तित हो

रही है । रुखी - सूखी, कोरी वाणी नहीं है ।

Fइसलिए (कुपालुदेवने) कहा कि स्पष्टरूपसे जाना है । जब सम्यग्दर्शन होता है तब मोक्षपदका व केवलज्ञानका श्रद्धान और ज्ञान हो जाता है । नौ तत्त्वका श्रद्धान वह सम्यग्दर्शन है न ! नौ तत्त्वमें मोक्षपद है । ज्ञानीको मालूम होता है कि केवलज्ञान कैसा होता है । जब तक ज्ञानदशा नहीं आती तब तक केवलज्ञानकी जातिकी परख नहीं आती है । यहाँ पर जो परख आती है वह अपने स्वानुभवमें आती है । ऐसा केवलज्ञान स्वभावी, सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा में ही हूँ, ऐसा मैं स्वयं ही हूँ, ऐसा स्पष्टरूपसे जाना है-धुँधलासा नहीं जानते हैं बल्कि अत्यंत स्पष्टरूपसे जाना है । उसका आधार व अवलंबन स्वयं को वर्तता है ।

“**श्रद्धारूपसे केवलज्ञान हुआ है**” ऐसा कहा है । ठीक ! कौनसा शब्द बदला है ? ‘जाना है’ उसकी जगह ‘हुआ है’ ऐसा कहा ? अब श्रद्धारूपसे केवलज्ञान हुआ है उसका अर्थ क्या ?

पहले तो आपने कहा कि प्रगट तो हुआ नहीं है । अब आप हुआ है ऐसा भी कहते हैं ? और ‘नहीं हुआ है’ ऐसा भी कहते हैं, तो उसमें हमें क्या समझना ? (तब कहते हैं कि) जब श्रद्धा हो तब ही समझ में आये ऐसा है । जिसको अपने स्वस्वरूपकी स्वानुभवके कालमें निर्विकल्प प्रतीति होती है तब उसको ऐसा लगता है कि हमें तो अभी केवलज्ञान हो गया है । शक्तिरूपसे है और व्यक्तिरूपसे नहीं है उसकी तो स्पष्टता आ गई । फिर ‘हुआ है’ वह बात कहाँ रहती है ? बात तो थोड़ी स्पष्ट होनी चाहिये । ऐसे ही ऊपर-ऊपरसे पढ़नेका कोई अर्थ नहीं रहता ।

कहते हैं कि श्रद्धाका विषय जो आत्मा है वह त्रिकाल निरावरण पदार्थ है । कैसा है ? त्रिकाल निरावरण पदार्थ है । साधकको

या मिथ्यदृष्टिको जिसको जो भी, जितना भी आवरण है वह उसकी पर्यायमें है । और वह निरावरण हो सकता है । पर्याय आवरणवाली है । अभी वह आवरणवाली पर्याय निरावरण हो सकती है । वह पर्याय धर्म है । आवरण सहितपना व आवरण रहितपना यह पर्यायका धर्म है । शुद्धपना व अशुद्धपना वह पर्याय धर्म है । अनित्यपना वह पर्याय धर्म है । अनेकपना, भिन्न-भिन्न पना वह पर्याय धर्म है ।

ऐसे जो पर्याय धर्म है वह अपने त्रिकाली स्वरूपको लागु नहीं होते । पर्यायके धर्म पर्यायकी मर्यादामें है । उस भावको पर्यायने धारण किया होने से पर्यायधर्म कहते हैं । जब कि द्रव्यने कभी उस भावको धारण नहीं किया है । स्वरूपने कभी धारण नहीं किया इसलिये मूल स्वरूप श्रद्धाका विषय होनेसे उसमें प्रगट-अप्रगट की अपेक्षा लागु नहीं होती है । प्रगट होना भी पर्यायका धर्म है और अप्रगटरूपसे - आवरण सहित रहना - आच्छादित होकर रहना भी पर्यायका धर्म है । हमारी श्रद्धा तो कि जिसे सम्यक् श्रद्धा कहते हैं, सम्यक्दृष्टि कहते हैं, द्रव्यदृष्टि कहते हैं वह तो अपने स्वरूपका जैसा परमात्मा है वैसा ही अनुभव करती है । मैं स्वरूपसे परमात्मा हूँ ऐसी पकड़ श्रद्धामें आती है । आगे लेंगे, ज्ञानमें विचारमें ऐसा करके आगे लेंगे । अभी यह श्रद्धाका बोल चल रहा है ।

कृपालुदेवके वचनामृत भी इस बातकी साक्षी देते हैं । पत्रांक - ६८०, चैत्र शुक्ला - १३, महावीर जयंतिके दिन लिखा गया (पत्र) है । जैन (संप्रदायकी) कोई शोभायात्रा निकली थी और भगवान महावीर को जय-जयकार करते हुए व उल्लासपूर्वक नाचते - कुदते जय-जयकार बुलाते हुए लोगोंको उन्होंने देखा तो उनका अंतरंग - अंतःकरण, वह वेदनासे पीड़ित हो उठा कि अरेरे ! "परमार्थके मार्गको नहीं जाननेवाले बहुत अच्छे शब्द है देखिये पत्रांक - ६८० ।

“कल्याणके मार्गको और परमार्थ स्वरूपको यथार्थतः नहीं समझनेवाले अज्ञानी जीव, अपनी मति-कल्पनासे मोक्षमार्गकी कल्पना करके विविध उपायोंमें प्रवृत्ति करते हैं फिर भी मोक्ष पाने के बदले संसारमें भटकते हैं ।” ऐसा क्यों ? कि धर्म प्रवृत्ति करे और संसार परिभ्रमण बढ़ जाय ऐसा कैसे बनता है ? क्योंकि धर्मप्रवृत्ति जब करता है तो कषायकी मंदता तो होती ही है । वहाँ चारित्रमोहकी मंदता होती है परन्तु उसमें पर्यायदृष्टिके कारण जीव अहंभाव कर बैठता है । इसलिए उसका मिथ्यात्व - मिथ्याश्रद्धा बलवान हो जाती है । अतः “संसारमें भटकते हैं, यह जानकर हमारा, निष्कारण करुणाशील हृदय रोता है” अंतमें क्या कहा कि “अधिक क्या कहें ?” बीचमें बहुतसी बातें हैं उसका विस्तार करने जितना समय हमारे पास नहीं है । “अधिक क्या कहें ? इस विषमकालमें परम शान्तिके धामरूप हम दूसरे श्री राम अथवा श्री महावीर ही हैं” क्यों ? “क्योंकि हम परमात्मस्वरूप हुए हैं” इसलिये ।

इसलिये (ही) धर्मात्माको परमात्मा भी कहनेमें आता है । और ऐसा संदर्भ आचार्योंके ग्रंथमें (भी) मिलता है । अनेक जगह मिलता है । अनेक शास्त्रोंमें मिलता है । समयसारजीकी १४३ वी गाथामें श्री अमृतचंद्राचार्यदेव टीकामें यह बात करते हैं । पक्षांतिक्रांत होकर निर्विकल्प अनुभव जब जो जीव करता है तब वह पूरे विश्वसे उपर तिरता माने भिन्न हो जाता है । पूरे जगतसे वह भिन्न पड़ गया (यानी कि) सभी Connection (जुड़ान) छूट गया । उस वख्त बुद्धिपूर्वक का एक भी तार एक भी डोरी जगतके साथ जुड़ी हुई नहीं रहती । अबुद्धिपूर्वक की अपेक्षा दूसरी है । हम हमारे परमात्मस्वरूपका अनुभव करते हैं । परम-आत्मा, परमात्मा, समयसार हुए हैं । उनको समयसार भी कहा और परमात्मा शब्द भी वहाँ इस्तेमाल किया है ।

कहते हैं कि हम परमात्म स्वरूप हुए हैं, (वह) अपेक्षासे बात है । इस तरह हमें हमारेमें केवलज्ञानकी श्रद्धा है । श्रद्धामें हम एकदम स्पष्टरूपसे केवलज्ञान स्वरूपी हमारे स्वरूपकी श्रद्धा करते हैं । पर्यायकी अपेक्षा यहाँ गौण है । प्रगटरूपसे जो उत्पन्न नहीं हुआ है, उस प्रगटपनेकी अपेक्षा यहाँ गौण है, और श्रद्धाकी अपेक्षा यहाँ मुख्य है ।

अब आप कहते हो कि श्रद्धा तो ठीक है लेकिन ज्ञानमें व चारित्रमें भी आना तो चाहिये कि नहीं ! तब कहते हैं कि आंशिकरूपसे सबमें आता है क्योंकि सभी गुण साथमें चलते हैं, Parallel (साथ साथ) चलते हैं । कोई गुण अकेला परिणमन नहीं करता है ।

“विचारदशासे केवलज्ञान हुआ है” हमारे स्वरूपका जो विचार है उस विचार को देखते हैं तो हमारे स्वरूपमें तो केवलज्ञान वर्त रहा है । अप्रगट नहीं है । स्वरूपमें अप्रगट नहीं है क्योंकि प्रगट-अप्रगट की अपेक्षा वहाँ लागू नहीं होती । वहाँ तो जो-जो है, सो-सो है । अब वे स्वयं जब अपने परमात्म स्वरूपका अनुभव कर रहे हैं और कहते भी हैं कि हम परमात्म स्वरूप हुए हैं, फिर हमें दूसरा कुछ कहनेका अधिकार कहाँ है ? सिद्धांत जो है उसे जान लेना कि गुणस्थान कौनसा है ? लेकिन वह (सिर्फ) जाननेका विषय है, हमें तो आदर करना हो तो वे अंतरंगमें जो परमात्म स्वरूपका अनुभव कर रहे हैं उसकी महिमा करनी, उसकी भक्ति करनी उसका स्वीकार करना, उसका सत्कार करना । कभी भी उसका निषेध नहीं करना चाहिये ।

“विचारदशासे केवलज्ञान हुआ है” उसमें ज्ञानकी पर्यायको ली है । “इच्छादशासे केवलज्ञान हुआ है” क्या ? उसमें चारित्रिका विषय लिया है । इच्छा जो होती है वह चारित्रगुणमें होती है ।

वास्तवमें तो कृपालुदेवने प्रचलित शब्द इस्तेमाल किया है । यहाँ पर इच्छा का अर्थ विकल्प ऐसे नहीं लेना है बल्कि हमारा जो चारित्रगुण है, उस चारित्रगुणकी जो पर्याय है वह स्वरूपमें लीन होती है । अनेक बार वह स्वरूपमें लीन होती है ।

अब ऐसा तो क्या है कि वह स्वरूपमें लीन होती है ? क्योंकि वहाँ केवलज्ञान, सर्वज्ञशक्ति आदि अनन्त गुणोंका भंडार - अनन्त गुणोंका खजाना प्रगटरूपसे दिखनेमें आता है (इसलिये लीन होती है) ।

एक दृष्टांत ले लें । एक जन्मसे ही दरिद्र आदमी था । उतना दरिद्र, उतना दरिद्र की रोटी के टुकड़ेके लिए भी उसे भीख मांगनी पड़ती थी और वह भी उसके पापके उदयके कारण पूरा मिलता नहीं था । मांगने पर मिलती रोटी भी पूरी नहीं मिलती थी और पेट भर नहीं सकता था । जन्मसे इतना दरिद्र की कभी श्रीमंतता देखी नहीं थी ऐसा वह दरिद्र (था) । एकबार क्या बना कि उसके बाप-दादा की एक झोंपड़ी थी, वह भी टूटी-फूटी सी पुरानी हो गई थी । इसलिये उसमें मरम्मत की जरूरत थी । पेट भरनेके लिए जिसके पास पैसे नहीं हो उसके पास मरम्मत के लिए पैसे कहाँ से हो ? पहले तो घरमें गारा (मिट्टी और गोबरका लेप) करते थे । पहलेके जमानेमें टाईल्स या मार्बल नहीं थे । गारा करते थे, उसमें तिराड़ बहुत सी हो गई थी । उसमेंसे एक पपड़ी निकल आई थी । पैरकी ठोकर लगी तो पपड़ी निकल आई और टन सी आवाज आयी । उसको लगा कि अरे ! बरतन की आवाज यहाँ कैसे ? बरतनकी आवाज कैसे ? देखा तो चरु (चौड़े मूँहका बर्तन) के उपरका गोल भागका जरासा हिस्सा दिखा । पपड़ी निकल आई, बरतन तो बड़ा होता है, लेकिन थोड़े हिस्सेसे

कितना बड़ा होगा उसका नाप निकल सकता है कि कितना बड़ा Circumference (गोल घिरावा) होगा । उसने घरका दरवाजा बंद कर दिया और वहाँ खुदाई करने लगा । दरवाजा इसलिए बंद कर लिया कि कोई देख नहीं ले, वरना लूट जानेकी शक्यता रहती ।

वैसे ही ज्ञानी भी जब निज निधिको प्राप्त होते हैं तब उसकी प्रसिद्धि करते हुए नहीं फिरते हैं । कृपालुदेव लिखते हैं कि "हमें सबके बीच अज्ञानी होकर रहना है । हमको हमारे ज्ञानीपनेकी प्रसिद्धि करनेका कोई कारण नहीं है ।(किसीको) करुणासे कह दे वह दूसरी बात है लेकिन ऐसा तो समीप आये हुए जीवको कहते हैं, जिसके पर विश्वास हो उसको ही कहते हैं, सबको कहा नहीं जाता ।

(आजन्म दरिद्र आदमीने) जब देखा कि सोना, हीरा, मोती, रत्नोंसे भरा हुआ ८ से १० फिट Diameter (व्यास) जिसके परसे Circumference (परिधि) समझ लेना कि कितना बड़ा बरतन निकला होगा । अब उस ही समय उस दरिद्री; जन्मसे दरिद्री आदमीकी दरिद्रता रही या उड़ गई ? (उसको ऐसा होगा कि) मैं ढेर सारी सम्पत्तिका मालिक - अरबोपति मैं अभी हूँ । पहले भी था तो सही, लेकिन घरमें जमीनमें गाड़ी हुई थी और बाप-दादा की मृत्यु हो गई । (आखिरमें) बोलना बंद हो गया होगा इसलिये कह नहीं पाये । गाढ़ा हुआ धन घरमें से निकलते ही श्रीमंत हो गया । अभी तो घरमें अनाज लाये नहीं, नये कपड़े भी सिलवाये नहीं है और बुरी हालतमें है, मकान नया बनवाया नहीं है, फर्निचर बनाया नहीं है, जेवर - अलंकार भी कुछ बनवाये नहीं है फिर भी वह (दरिद्र आदमी) उस ही वख्त श्रीमंत हो गया ।

दृष्टांतमें View Point (दृष्टिकोण) क्या है ? वह समझने जैसा है । View Point (दृष्टिकोण) वह है कि जिसको ऐसा मालूम होता है अटूट सम्पत्ति मेरे कब्जेमें है । मैं उसका Possession (मालिकी) धराता हूँ तब भावमें दरिद्रता सर्वांशरूपसे चली जाती है या फिर थोड़ी रह जाती है ? लेकिन आदत हो गई हो, माँगनेकी इसलिये चलो रोटी माँग लाउं । वह माँगने नहीं जायेगा, श्रीमंताईका अनुभव करता है ।

इस तरह जिसको अपने परमात्म स्वरूपका साक्षत्कार होता है, क्या होता है ? साक्षत्कार होता है, अनुमानका विषय नहीं है । लोग जैसे अनुमान करते हैं सो बात यहाँ नहीं है । यहाँ तो अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष (है) । देखिये न ४९३ पत्रांकमें (चलते हुए पत्रमें) वही बात की है न ! स्पष्ट प्रत्यक्ष, अत्यंत प्रत्यक्ष, अपरोक्ष अनुभव उसे होता है । किसका (अनुभव होता है) ? अपने संपूर्ण शुद्धपनेका, अपने संपूर्ण अविनाशीपनेका व परमानन्दका; अत्यंत आनन्दपना माने परमानन्दपनाका स्पष्ट अनुभव होता है । दृष्टांतमें तो दूसरा पदार्थ दिखता है तो भी दीनता चली जाती है जब कि सिद्धांतमें ऐसा नहीं है । अध्यात्मके सिद्धांतमें प्रत्यक्ष अनुभव लिया है । अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष, सभी इन्द्रियोंके उपयोग का व्यापार, बहिर्मुख परिणाम बंद हो जाते हैं और अंतर्मुख परिणामसे अपने परमात्मस्वरूपका अनुभव होता है और तब 'हम परमात्मा हुए हैं' ऐसा अनुभव होता है । जैसे मैं श्रीमंत हुआ हूँ वैसे । विचारदशामें माने इस प्रकारसे "विचारदशासे केवलज्ञान हुआ है ।"

श्रद्धाकी पकड़ तो अनन्त शक्तिपूर्वक है । विचारमें तो बाह्य दशा अर्थात् बाहरमें जो बुद्धिपूर्वक के व अबुद्धिपूर्वकके रागादि होते हैं उसका भी ज्ञान होता है । (लेकिन) श्रद्धाका विषय केवल शुद्ध-

आत्मा - परमात्मा है । इसलिये शक्तिरूपसे केवलज्ञान है ऐसा लिया और 'हुआ है' ऐसा यहाँ लिया । "इच्छादशासे केवलज्ञान हुआ है ।" इच्छा माने यहाँ अभिलाषा । हमारी अभिलाषामें हम केवलज्ञानको अति समीप देखते हैं । इसलिये 'हुआ है' ऐसा कहते हैं । यह (कहनेकी) पद्धति है । निःशंक व निर्विघ्नरूपसे जब कोई होनेवाला हो (तो ऐसे ही कहा जाता है) । जैसे यहाँ से निकलकर कोई बंबई जानेवाला हो, और अभी तो गाड़ी घरसे बाहर निकली हो तब भी कोई पूछे कि कहाँ गये ? तो (कहते हैं कि बंबई गये) । अभी तो अहमदाबाद स्टेशन तक पहुंचनेमें भी पोने घंटेकी देर हो तो भी बोलनेमें ऐसे आता है कि बंबई गये । क्योंकि निर्विघ्नरूपसे पहुंचनेवाले हैं ऐसा निःशंकपनेका Tone टोन है । अंतरध्वनि है । अतः "इच्छादशासे केवलज्ञान हुआ है ।"

धवल शास्त्रजीमें ऐसा एक पाठ आता है कि साधकको बारहवे गुणस्थान तक मतिज्ञान व श्रुतज्ञान होता है किसी जीवको मनःपर्ययज्ञान होता है । वह तो कुछ एक मुनिको ही होता है । मतिसे नीचेकी दशामें वह ज्ञान प्रगट नहीं होता लेकिन किसी लब्धिधारी मुनिको होता है । और इसके अलावा मति, श्रुत व अवधिज्ञान और सुअवधिज्ञान कोई कोई मुनियों को, कोई कोई साधकको होता है (जब कि) मति-श्रुत सबको होता है । पाँच ज्ञानमेंसे ये दो ज्ञान तो शुरुसे ही सबको होता है । मिथ्यादृष्टिको भी होता है और सम्यक्दृष्टिको भी होता है । मिथ्यादृष्टिको मिथ्या जाति होती है और सम्यक्दृष्टिको सम्यक् जाति होती है । मुनिराजका यह जो सम्यक् मति-श्रुत ज्ञान है, जो घरबार छोड़कर, राजपाट छोड़कर, रानियाँ छोड़कर केवलज्ञान लेने निकल पड़े हैं, तो वहाँ वीरसेनस्वामी ऐसा कहते हैं कि "हमारा मति-श्रुतज्ञान केवलज्ञानको बुलाता है ।

क्या लिया है ? केवलज्ञानको बुलाता है यानी कि हमारी दशामें केवलज्ञान अल्पकालमें प्रगट होगा ऐसा उसमें अंतरध्वनि रहा है, और ऐसी ही दशा यहाँ कृपालुदेवकी है । भले ही मुनिदशाका गुणस्थान नहीं हो लेकिन वैसी ही दशा है । उनका मति-श्रुत ज्ञानभी केवलज्ञानको बुला रहा है । अनन्तकालके समुद्रमें महासागरमें, कालके महासागरमें कोई एक-दो, चार भव हो तो उसकी कोई गिनती नहीं है । It is Immatirial - इसकी कोई चर्चा करने जैसी नहीं है । वे अल्पकालमें - असंख्य समयमें केवलज्ञानको पाने वाले हैं ऐसा विश्वास रखना और उनको खुदको भी ऐसा विश्वास है । अति दृढ़ विश्वास हैं कि हम अल्पकालमें केवलज्ञानको प्राप्त होंगे ! होंगे और होंगे ही !! ऐसी अभिलाषा है ।

“मुख्य नयके हेतुसे केवलज्ञान रहता है” कैसे रहता है ? कि मुख्य नयके हेतुसे । नय अनन्त प्रकारके हैं उसमें नयके दो भेद हैं । एक निश्चय नय और एक व्यवहार नय । सभी पेटाभेद ज्यादातर तो व्यवहारनयमें समाते हैं । निश्चयनयके कुछ एक भेद-प्रभेद परमागमोंमें आते हैं । लेकिन यहाँ जो निश्चयनयको हमें समझना है उसे स्पष्ट करते हैं ।

यहाँ निश्चय नय माने मुख्यनय अर्थात् क्या ? पहले तो नयज्ञान माने श्रुतज्ञानका अंश । श्रुतप्रमाण ज्ञान जो है उसके एक अंशको नय कहनेमें आता है । वह क्या काम करता है ? नय वह क्या काम करता है कि वस्तुके स्वरूपमें अनेक गुण, अनेक धर्म, अनेक पर्यायें होती है वे सब भेद-प्रभेद व्यवहारनयमें जाते हैं । आत्मामें गुणोंकी जो सम्पत्ति है उसका भेद-विकल्प उठे कि मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, अविनाशी हूँ, परमात्मस्वरूप हूँ, वे सब विकल्प व्यवहार नयमें जाते हैं । वहाँ नयज्ञान जो है वह शुद्धत्माका उपयोग पूर्वक

अवलंबन नहीं लेता । जो श्रुतज्ञानका अंश केवल शुद्ध आत्माका, केवल परमात्मस्वरूपका अवलंबन लेकर अनुभव करता है उसको मुख्यनय अथवा निश्चयनय कहनेमें आता है ।

वैसे तो दो नयमें मुख्यनयमें तो निश्चयनय ही है लेकिन यहाँ निश्चयस्वरूपके अवलंबनसे उत्पन्न हुए उपयोग को मुख्यनय अथवा निश्चयनय कहनेमें आता है । क्योंकि उस वख्त उस उपयोगका प्रयोजन केवल अपने निश्चय स्वरूपको जाननेका है जो कि त्रिकाल एकरूप है । ऐसे स्वरूपका अवलंबन अथवा जाननेका है । इसलिये उस अंशको शुद्धनय अथवा निश्चयनय कहनेमें आता है । या तो मुख्यनय कहनेमें आता है ।

उस वख्त निर्विकल्प शुद्धोपयोग होता है, और जो स्वानुभूति है वही ज्ञानानुभूति है और वही आत्मानुभूति है ऐसा जानना । इस विषयको समयसारके १३वे नंबरके कलशमें आचार्यश्री अमृतचंद्रदेव कहते हैं "जो स्वानुभूति है वह शुद्ध नयात्मिका है । वह नय की अपेक्षासे शुद्ध नयात्मिक परिणमन है । नय कभी प्रमाण बिना प्रवृत्ति नहीं करता है । इसलिये द्रव्य-पर्यायका युगपत् अनुभव वहाँ रहता है । इसलिये आनन्द आदिका अनुभव भी वहाँ आता है लेकिन उपयोगमें उसका प्रयोजन नहीं है । बहुत सुन्दर बात है थोड़ा और विचार करने जैसी है ।

शुद्धोपयोग अपने स्वरूपके अवलंबन पूर्वक एकाकार हुआ है, स्वरूपाकार हुआ है, निर्विकल्प हुआ है जैसा निर्विकल्प स्वरूप है बिलकुल वैसा सदृश्य हुआ है, तब अपूर्व आनन्द आदि अनन्त गुणोंका प्रवाह-धोध पर्यायमें उभर आता है । आत्माके अनन्त गुण, एक भी बाकी रहे बिना सबके सब (प्रगट होते हैं) । "सर्व गुणांश ते सम्यक्त्व" ऐसा एक क्षणार्ध तक परिणमन होता है । इस क्षणार्ध

परिणमनकी ताकतका अगर विचार किया जाय तो सातवी नारकीकी वेदनाका उल्लंघन करके, Cross करके आनन्दका अनुभव कराता है, और दूसरे प्रकारसे विचार करें तो भवकी अनन्तता का बीज वहाँ जल जाता है ।

ऐसा निर्विकल्प अनुभव एक बार भी अगर किसी जीवको हो, एक बार भी हो, (भले ही फिर च्युत हो जाय) उसको (फिर) अनन्त भव नहीं होते । अर्धपुद्गल परावर्तन बड़ा प्रमाण है फिर भी वह अनन्त में नहीं आता । मिथ्यात्वमें व अनंतानुबंधीमें अनादि मिथ्यादृष्टिको जो अनन्त भवकी योग्यता रहती है, उस योग्यताका उसने नाश किया, जला दिया । बीजको जला दिया; अब नहीं उगेगा । भवकी अनन्तताका बीज अब कभी नहीं उगेगा । ऐसी ताकत अगर एक क्षणार्धके शुद्धोपयोग में है तो त्रिकाली आत्मस्वरूपमें कितनी ताकत होगी ? अनुपात से समझ लेना । पर गिनती नहीं हो सकती क्योंकि अनन्त ताकत है ।

ऐसे स्वरूपकी अपूर्व महिमा, उस अपूर्व महिमा के फलस्वरूप जो निर्विकल्प अनुभव हुआ उसमें उस वख्तकी अपूर्वदशाकी भी महिमा नहीं है, बल्कि स्वरूपकी महिमा है । अगर दशाकी प्रधानता हो गई तो स्वरूपका अवलंबन छूट (जाता है) । एक साथ दो जगह अवलंबन नहीं होता । अध्यात्मका वैज्ञानिक सिद्धांत है कि पर्यायका अवलंबन जिसको होता है उसको द्रव्यका अवलंबन नहीं हो सकता । यहाँ जब द्रव्यका, परमात्मस्वरूपका अवलंबन होता है तब (साथ ही साथ) पर्यायका ज्ञान होता है - वेदन होता है, लेकिन उसका अवलंबन नहीं होता । और पर्यायकी मुख्यतामें जीव पर्यायदृष्टि हो जाता है - यह बात विस्मरण करने योग्य नहीं है ।

यद्यपि आगमोंमें व उपदेशमें मुख्यतः चर्चा पर्यायकी ही चली

है । उपदेश तो पर्यायके लक्ष्यसे है लेकिन Subject To Condition (शर्त - आधीन) है । वह Condition (शर्त) ऐसी है कि (पर्यायकी) प्रधानता - मुख्यता श्रद्धाज्ञानमें नहीं होते हुए स्वरूपको पहचानकर उसकी मुख्यता श्रद्धा - ज्ञानमें हो जानी चाहिए ।

ऐसे मुख्यनयके हेतुसे, उस दृष्टिकोणसे देखनेमें आये तो हमें तो केवलज्ञान वर्तता है, क्योंकि हमारा शुद्धोपयोग उस केवलज्ञानका अनुभव कर रहा है । अर्थात् केवलज्ञान स्वरूपी आत्माका अनुभव कर रहा है । इसलिये वहाँ वर्त रहा है मतलब परिणमन कर रहा ऐसा नहीं, बल्कि वहाँ केवलज्ञान रहा है । (वर्तता है माने है) उसका हम अवलंबनपूर्वक अनुभव करते हैं ।

तीन कालमें वेदन कभी द्रव्यका नहीं होता पर्यायका होता है । फिर वह निगोदकी दशा हो या सिद्ध परमात्माकी दशा हो । सम्यक्त्व होता है तब से अवलंबन बदल जाता है । पर्यायका अवलंबन छूटकर द्रव्यका अवलंबन हो जाता है । उसको द्रव्यदृष्टि या निश्चयनय कहनेमें आता है ।

“जिसके योगसे जीव सर्व अव्याबाध सुखके प्रगट करनवाले उस केवलज्ञानको सहजमात्रमें प्राप्त करने योग्य हुआ ।” क्या कहते हैं ? खुदको भी भूतकालमें, आगेके भवोंमें कहीं पर महापुरुष-सत्पुरुष मिले हैं । इसके पहले भी धर्म साधनकी अनेक प्रकारकी विधि व परिश्रम कर चूके थे, लेकिन पत्ता नहीं लगा था ।

जिसके योगसे अर्थात् जिस पुरुषके समागमसे योग माने समागम । योग माने मात्र संयोग उतना नहीं लेना . योगका संयोग हुआ अर्थात् (जो) समागम है - उसका भावसे योग होना । यानी कि अपने आत्माके परिणाम व श्रीगुरुके आत्माके परिणामका Tally (मिलान) होने लगता (है), तब उसको योग हुआ । उसे Interlink

(अनुसंधान) कहनेमें आता है । जिसके योगमें यह जीव सहजमात्रमें ऐसी दशाको प्राप्त करने योग्य हुआ, तब केवलज्ञान सहजमात्रमें प्राप्त होने योग्य हुआ । कृत्रिम पुरुषार्थ नहीं लिया है । सहज (पुरुषार्थ है) । सम्यक्दर्शनादि भाव भी सहज है । उपदेशात्मक - आदेशात्मक भाषामें कृत्रिमतासे करो ऐसा कहनेमें आता है लेकिन वह सब सहज है, ऐसा समझ लेना ।

क्यों सहज है ? कि वस्तुका जो त्रिकाल स्वरूप है वह सहजात्मस्वरूप है, उस सहजात्मस्वरूपके साथ उसकी अवस्था (भी) सहज होती है । उसका मेल है - सुसंगतता है । कृत्रिमता और उसको (सहजताको) विसंगतता है; सुसंगतता नहीं है ।

अतः स्वरूपका भावभासन हुआ तबसे लेकर अंतरमें अनन्त सुखके सागर की जो आसक्ति होती है इसके कारण सहज ही सहज परिणामका प्रवाह उसकी और ढलता जाता है और जीव अपनी शुद्धि बढ़ाता बढ़ाता मोक्षमार्गमें आगे बढ़कर मोक्षमार्गको प्राप्त करता है ।

भले ही अभी इस कालमें किसीको मोक्षपद या केवलज्ञान प्रगट नहीं होता हो तो भी ऐसी बातें करने के पीछे केवलज्ञानकी और मोक्षपदकी बातें करनेके पीछे परमार्थ छिपा है । क्योंकि ऐसी दशाका Achievement (सिद्धि) अंतिम Achievement (सिद्धि) वह है । और वह प्रारंभमें ही श्रद्धामें, ज्ञानमें अभिलाषामें निश्चित हो जाती है ऐसा यहाँ बतलाना है । जिससे कि उस तरफसे परिणामका प्रवाह सहज - सहज चले बिना रहता नहीं । ऐसे जो सत्पुरुष उनके उपकार को अत्यंत भक्तिसे नमस्कार हो ! नमस्कार हो !

“उस सत्पुरुषके उपकारको सर्वोत्कृष्ट भक्तिसे नमस्कार हो ! नमस्कार हो !” ऐसे जो महापुरुष कि जो मुमुक्षुजीवको केवलज्ञान

प्राप्त करनेके योग्य परिस्थिति तक पहुँचा दे उनके उपकारको कैसे व्यक्त कर सकते हैं ? उसके लिये कोई Term (शब्द) नहीं है । उनका अनन्त उपकार होता है इसलिए श्रीगुरुकी, सत्पुरुषकी महिमा भी अनन्त आती है, और ऐसा होना यथास्थानमें है । उपकार अनन्त हो और भक्ति अल्प आती हो, उसको मालूम ही नहीं है कि मेरे पर उपकार हुआ है कि नहीं हुआ है । अतः जिसके उपर उपकार होता है उसको केवलज्ञानके और मोक्षके भनकार अन्दरसे आने लगते हैं । और उसको अनन्त महिमा आये बिना रहती नहीं ।

इस तरह यहाँ यह पत्र (छः पदका पत्र - ४९३) संक्षेपमें पुरा होता है । विषय तो बहुत गहन है किन्तु समयकी मर्यादा है ।

ॐ शांति



श्री वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट

उपलब्ध प्रकाशन (हिन्दी)

ग्रंथ का नाम एवं विवरण	मूल्य
०१ अनुभव प्रकाश (ले. दीपचंदजी कासलीवाल)	-
०२ आत्मयोग (श्रीमद् राजचंद पत्रांक-४६९, ४९९, ६०९ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२०-००
०३ अनुभव संजीवनी (पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा लिखे गये वचनामृतोंका संकलन)	१५०-००
०४ आत्मसिद्धि शास्त्र पर प्रवचन (पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा)	५०-००
०५ आत्मअवलोकन	-
०६ बृहद द्रव्यसंग्रह	अनुपलब्ध
०७ द्रव्यदृष्टिप्रकाश (तीनों भाग-पूज्य श्री निहालचंदजी सोगानीजीके पत्र एवं तत्वचर्चा)	३०-००
०८ दूसरा कुछ न खोज (प्रत्यक्ष सत्पुरुष विषयक वचनामृतोंका संकलन)	०६-००
०९ दंसगमूलो धम्मा (सम्यक्त्व महिमा विषयक आगमोंके आधार)	०६-००
१० धन्य आराधना (श्रीमद् राजचंद्रजीकी अंतरंग अध्यात्म दशा पर १ पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा विवेचन)	-
११ दिशा बोध (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-१६६, ४४९, ५७२ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२५-००
१२ धन्य पुरुषार्थी	-
१३ धन्य अवतार	-
१४ गुरु गुण संभारणा (पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन द्वारा गुरु भक्ति)	१५-००
१५ गुरु गिरा गौरव	-
१६ जिणसासनं सव्वं (ज्ञानीपुरुष विषयक वचनामृतोंका संकलन)	०८-००
१७ कुटुम्ब प्रतिबंध (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-१०३, ३३२, ५१०, ५२८, ५३७ एवं ३७४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२५-००
१८ कहान रत्न सरिता (परमागमसारके विभिन्न वचनामृतों पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	३०-००
१९ मूलमें भूल (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके विविध प्रवचन)	०८-००
२० मुमुक्षुता आरोहण क्रम (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-२५४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	-

२१	मुक्तिका मार्ग (सत्ता स्वरूप ग्रन्थ पर पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन)	१०-००
२२	निर्भ्रात दर्शनकी पगडंडी (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	१०-००
२३	परमागमसार (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके १००८ वचनामृत)	-
२४	प्रयोजन सिद्धि (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	०४-००
२५	परिभ्रमणके प्रत्याख्यान (श्रीमद राजचंद्र पत्रांक-१९५, १२८, २६४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२०-००
२६	प्रवचन नवनीत (भाग-१) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके खास प्रवचन)	२०-००
२७	प्रवचन नवनीत (भाग-२) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके खास प्रवचन)	२०-००
२८	प्रवचन नवनीत (भाग-३) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके ४७ नय के खास प्रवचन)	२०-००
२९	प्रवचन नवनीत (भाग-४) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके ४७ शक्ति के खास प्रवचन)	२०-००
३०	प्रवचन सुधा (भाग-१) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके प्रवचनसार परमागम पर धारावाही प्रवचन)	२०-००
३१	प्रवचन सुधा (भाग-२) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके प्रवचनसार परमागम पर धारावाही प्रवचन)	२०-००
३२	प्रवचनसार	अनुपलब्ध
३३	प्रंचास्तिकाय संग्रह	अनुपलब्ध
३४	सम्यक्ज्ञानदीपिका (ले. श्री धर्मदासजी क्षुल्लक)	१५-००
३५	ज्ञानामृत (श्रीमद राजचंद्र ग्रंथमें से चयन किये गये वचनामृत)	-
३६	सम्यग्दर्शनके सर्वोत्कृष्ट निवासभूत छ पदोंका अमृत पत्र (श्रीमद रादचंद्र पत्रांक-४९३ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	१८-००
३७	सिद्धिपका सर्वश्रेष्ठ उपाय (श्रीमद राजचंद्र ग्रंथमें से पत्रांक-१४७, १९४, २००, ५११, ५६० एवं ८१९ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२५-००
३८	सुविधि दर्शन (सुविधि लेख पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	४०-००
३९	समयसार नाटक	अनुपलब्ध
४०	समयसार कलस टीका	अनुपलब्ध
४१	समयसार	अनुपलब्ध
४२	तत्त्वानुशीलन (भाग-१,२,३) (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	२०-००
४३	तत्थ्य	अनुपलब्ध
४४	विधि विज्ञान (विधि विषयक वचनामृतोंका संकलन)	१०-००
४५	वचनामृत रहस्य (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके नार्शरीबीमें हुए प्रवचन)	२०-००

વીતરાગ સત્સાહિત્ય પ્રસારક ટ્રસ્ટ
ઉપલબ્ધ પ્રકાશન (ગુજરાતી)

ગ્રંથનું નામ તેમજ વિવરણ	મૂલ્ય
૦૧ અધ્યાત્મિકપત્ર (પૂજ્ય શ્રી નિહાલચંદ્રજી સોગાનીજીના પત્રો)	૦૨-૦૦
૦૨ અધ્યાત્મ સંદેશ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના વિવિધ પ્રવચનો)	અનુપલબ્ધ
૦૩ આત્મયોગ (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૫૯૬, ૪૯૧, ૬૦૯ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૦૪ અનુભવ સંજીવની (પૂજ્ય ભાઈશ્રી દ્વારા લિખિત વચનામૃતોનું સંકલન)	૧૫૦-૦૦
૦૫ અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૧) બહેનશ્રીના વચનામૃત ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સર્ગગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૦૬ અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૨) બહેનશ્રીના વચનામૃત ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સર્ગગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૦૭ અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૩) બહેનશ્રીના વચનામૃત ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સર્ગગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૦૮ અધ્યાત્મ પરાગ	-
૦૯ બીજું કાંઈ શોધમા (પ્રત્યક્ષ સત્યરુષ વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન)	-
૧૦ બૃહદ્ દ્રવ્યસંગ્રહ પ્રવચન (ભાગ-૧) (દ્રવ્યસંગ્રહ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સર્ગગ પ્રવચનો)	-
૧૧ બૃહદ્ દ્રવ્યસંગ્રહ પ્રવચન (ભાગ-૨) (દ્રવ્યસંગ્રહ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સર્ગગ પ્રવચનો)	-
૧૨ ભગવાન આત્મા (દ્રષ્ટિ વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન)	-
૧૩ દ્વાદશ અનુપ્રેક્ષા (શ્રીમદ્ ભગવત્ કુંદકુંદાચાર્યદેવ વિરચિત	૦૨-૦૦
૧૪ દ્રવ્યદષ્ટિ પ્રકાશ (ભાગ-૩) (પૂજ્ય શ્રી નિહાલચંદ્રજી સોગાની તત્ત્વચર્યા)	૦૪-૦૦
૧૫ દસ લક્ષણ ધર્મ (ઉત્તમ ક્ષમાદિ દસ ધર્મો પર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીનાં પ્રવચનો)	૦૬-૦૦
૧૬ ધન્ય આરાધના (શ્રીમદ્ રાજચંદ્રજીની અંતરંગ અધ્યાત્મ દશા ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ દ્વારા વિવેચન)	૧૦-૦૦
૧૭ દિશા બોધ (શ્રીમદ્ રાજચંદ્રજી પત્રાંક-૧૬૬, ૪૪૯, અને ૫૭૨ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ દ્વારા પ્રવચનો)	૧૦-૦૦
૧૮ ગુરુ ગુણ સંભારણા (પૂજ્ય બહેનશ્રીના શ્રીમુખેથી સ્ફુરિત ગુરુભક્તિ)	૦૫-૦૦
૧૯ ગુરુ ગિરા ગૌરવ (પૂજ્ય સૌગાનીજીની અંગત દશા ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૨૦ ગુરુ ગિરા ગૌરવ (ભાગ-૧) (દ્રવ્યદષ્ટિ પ્રકાશ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પત્રો પર સર્ગગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૨૧ ગુરુ ગિરા ગૌરવ (ભાગ-૨) (દ્રવ્યદષ્ટિ પ્રકાશ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પત્રો પર સર્ગગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦

૨૨	જિજ્ઞાસાસહ્યં સર્વં (જ્ઞાનીપુરુષ વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન)	૦૮-૦૦
૨૩	કુટુંબ પ્રતિબંધ (શ્રીમદ રાજવંદ પત્રાંક-૧૦૩, ૩૩૨, ૫૧૦, ૫૨૮, ૫૩૭ તથા ૩૭૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૨૩	કહાન રત્ન સરિતા (ભાગ-૧) (પરમાગમસારમાંથી ચૂંટેલા કેટલાક વચનામૃતો ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈનાં પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૨૪	કહાન રત્ન સરિતા (ભાગ-૨) (પરમાગમસારમાંથી કમબદ્ધ પર્યાય વિષયક ચૂંટેલા કેટલાક વચનામૃતો ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈનાં પ્રવચનો)	૩૦-૦૦
૨૫	કાર્તિકિયાનુપ્રેક્ષા પ્રવચન (ભાગ-૧) કાર્તિકિયાનુપ્રેક્ષા ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સર્ળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૨૬	કાર્તિકિયાનુપ્રેક્ષા પ્રવચન (ભાગ-૨) કાર્તિકિયાનુપ્રેક્ષા ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સર્ળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૨૭	કમબદ્ધપર્યાય	-
૨૮	મુમુક્ષતા આરોહણ ક્રમ (શ્રીમદ રાજવંદ પત્રાંક-૨૫૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૧૫-૦૦
૨૯	નિર્ભાત દર્શનની કેડીએ (લે. પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ)	૧૦-૦૦
૩૦	પરમાત્માપ્રકાશ (શ્રીમદ્ યોગીન્દ્રદેવ વિરચિત)	૧૫-૦૦
૩૧	પરમાગમસાર (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના ૧૦૦૮ વચનામૃત)	૧૧-૨૫
૩૨	પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૧) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ખાસ પ્રવચનો)	અનુપલબ્ધ
૩૩	પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૨) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ખાસ પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૩૪	પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૩) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ૪૭ નવ ઉપર ખાસ પ્રવચનો)	૩૫-૦૦
૩૫	પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૪) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ૪૭ નવ શક્તિઓ ઉપર ખાસ પ્રવચનો)	૭૫-૦૦
૩૬	પ્રવચન પ્રસાદ (ભાગ-૧) (પંચાસ્તિકાયસંગ્રહ પર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના પ્રવચનો)	૬૫-૦૦
૩૭	પ્રવચન પ્રસાદ (ભાગ-૨) (પંચાસ્તિકાયસંગ્રહ પર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના પ્રવચનો)	-
૩૮	પ્રયોજન સિદ્ધિ (લે. પૂજ્યભાઈશ્રી શશીભાઈ)	૦૩-૦૦
૩૯	પથ પ્રકાશ (માર્ગદર્શન વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન)	૦૬-૦૦
૪૦	પરિભ્રમણના પ્રત્યાખ્યાન (શ્રીમદ રાજવંદ પત્રાંક-૧૮૫, ૧૨૮ તથા ૨૬૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૪૧	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૧) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સર્ળંગ પ્રવચનો	૪૦-૦૦
૪૨	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૨) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સર્ળંગ પ્રવચનો	૮૫-૦૦
૪૩	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૩) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સર્ળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૪૪	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૪) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સર્ળંગ પ્રવચનો	૪૦-૦૦
૪૫	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૫) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સર્ળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૪૬	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૬) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સર્ળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૪૭	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૭) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સર્ળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦
૪૮	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૮) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સર્ળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦

૪૮	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૯) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સર્ગગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦
૫૦	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૧૦) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સર્ગગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦
૫૧	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૧૧) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સર્ગગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦
૫૨	પ્રવચનસાર	અનુપલબ્ધ
૫૩	પ્રચારિસ્તકાય સંગ્રહ	અનુપલબ્ધ
૫૪	પદ્મનંદીપંચવિશતી	-
૫૫	પુરુષાર્થ સિદ્ધિ ઉપાય	અનુપલબ્ધ
૫૬	રાજ હૃદય (ભાગ-૧) (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સર્ગગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૫૭	રાજ હૃદય (ભાગ-૨) (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સર્ગગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૫૮	રાજ હૃદય (ભાગ-૩) (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સર્ગગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૫૯	સમ્યક્જ્ઞાનદીપિકા (લે. શ્રી ધર્મદાસજી કુલ્લક)	૧૫-૦૦
૬૦	જ્ઞાનામૃત (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથમાંથી ચૂંટેલા વચનામૃતો)	૦૬-૦૦
૬૧	સમ્યગ્દર્શનના નિવાસના સર્વોત્કૃષ્ટ નિવાસભૂત છ પદનો પત્ર (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૪૯૩ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૬૨	સિદ્ધપદનો સર્વશ્રેષ્ઠ ઉપાય (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૪૭, ૧૯૪, ૨૦૦, ૫૧૧, ૫૬૦ તથા ૮૧૯ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૬૩	સમયસાર દોહન (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજી સ્વામીના નાઈરોબીમાં સમયસાર પરમાગમ ઉપર થયેલાં પ્રવચનો)	૩૫-૦૦
૬૪	સુવિધિદર્શન (પૂજ્ય ભાઈશ્રી દ્વારા લિખિત સુવિધિ લેખ ઉપર તેમનાં પ્રવચન)	૨૫-૦૦
૬૫	સ્વરૂપભાવના (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૯૧૩, ૭૧૦ અને ૮૩૩ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૬૬	સમક્તિનું બીજ (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથમાંથી સત્પુરુષની ઓળખાણ વિષયક પત્રાંક-ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૩૦-૦૦
૬૭	તત્વાનુશીલન (પૂજ્ય ભાઈશ્રી દ્વારા લિખિત વિવિધ લેખ)	-
૬૮	વિધિ વિજ્ઞાન (વિધિ વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન)	૦૭-૦૦
૬૯	વચનામૃત રહસ્ય (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના નાઈરોબીમાં બહેનશ્રીના વચનામૃત પર થયેલાં પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૭૦	વચનામૃત પ્રવચન (ભાગ-૧)	-
૭૧	વચનામૃત પ્રવચન (ભાગ-૨)	-
૭૨	વચનામૃત પ્રવચન (ભાગ-૩)	-
૭૩	વચનામૃત પ્રવચન (ભાગ-૪)	-
૭૪	યોગસાર	અનુપલબ્ધ
૭૫	ધન્ય આરાધક	-

वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्टमें से प्रकाशित हुई पुस्तकोंकी प्रत संख्या

०१	प्रवचनसार (गुजराती)	१५००
०२	प्रवचनसार (हिन्दी)	४२००
०३	पंचास्तिकायसंग्रह (गुजराती)	१०००
०४	पंचास्तिकाय संग्रह (हिन्दी)	२५००
०५	समयसार नाटक (हिन्दी)	३०००
०६	अष्टपाहुड (हिन्दी)	२०००
०७	अनुभव प्रकाश	२१००
०८	परमात्मप्रकाश	४१००
०९	समयसार कलश टीका (हिन्दी)	२०००
१०	आत्मअवलोकन	२०००
११	समाधितंत्र (गुजराती)	२०००
१२	बृहद द्रव्यसंग्रह (हिन्दी)	३०००
१३	ज्ञानामृत (गुजराती)	१०,०००
१४	योगसार	२०००
१५	अध्यात्मसंदेश	२०००
१६	पद्मनंदीपंचविंशती	३०००
१७	समयसार	३१००
१८	समयसार (हिन्दी)	२५००
१९	अध्यात्मिक पत्रो (पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी द्वारा लिखित)	३०००
२०	द्रव्यदृष्टि प्रकाश (गुजराती)	१०,०००
२१	द्रव्यदृष्टि प्रकाश (हिन्दी)	६६००
२२	पुरुषार्थसिद्धिउपाय (गुजराती)	६१००
२३	क्रमबद्धपर्याय (गुजराती)	८०००
२४	अध्यात्मपराग (गुजराती)	३०००
२५	धन्य अवतार (गुजराती)	३७००
२६	धन्य अवतार (हिन्दी)	८०००
२७	परमामगसार (गुजराती)	५०००
२८	परमामगसरा (हिन्दी)	४०००
२९	वचनामृत प्रवचन भाग-१-२	५०००
३०	निर्भूत दर्शननी केडीए (गुजराती)	४५००
३१	निर्भूत दर्शनकी पगडंडी (हिन्दी)	७०००

३२	अनुभव प्रकाश (हिन्दी)	२०००
३३	गुरुगुण संभारणा (गुजराती)	३०००
३४	जिण सासणं सव्वं (गुजराती)	२०००
३५	जिण सासणं सव्वं (हिन्दी)	२०००
३६	द्वादश अनुप्रेक्षा (गुजराती)	२०००
३७	दस लक्षण धर्म (गुजराती)	२०००
३८	धन्य आराधना (गुजराती)	१०००
३९	धन्य आराधना (हिन्दी)	१५००
४०	प्रवचन नवनीत भाग-१-४	५८५०
४१	प्रवचन प्रसाद भाग-१-२	१५००
४२	पथ प्रकाश (गुजराती)	२०००
४३	प्रयोजन सिद्धि (गुजराती)	३५००
४४	प्रयोजन सिद्धि (हिन्दी)	२५००
४५	विधि विज्ञान (गुजराती)	२०००
४६	विधि विज्ञान (हिन्दी)	२०००
४७	भगवान आत्मा (गुजराती)	२०००
४८	सम्यक्ज्ञानदीपिका (गुजराती)	१०००
४९	सम्यक्ज्ञानदीपिका (हिन्दी)	१५००
५०	तत्त्वानुशीलन (गुजराती)	४०००
५१	तत्त्वानुशीलन (हिन्दी)	२०००
५२	बीजुं काई शोध मा (गुजराती)	४०००
५३	दूसरा कुछ न खोज (हिन्दी)	२०००
५४	मुमुक्षुता आरोहण क्रम (गुजराती)	२५००
५५	मुमुक्षुता आरोहण क्रम (हिन्दी)	३५००
५६	अमृत पत्र (गुजराती)	२०००
५७	अमृत पत्र (हिन्दी)	२०००
५८	परिभ्रमणना प्रत्याख्यान (गुजराती)	१५००
५९	परिभ्रमणके प्रत्याख्यान (हिन्दी)	२०००
६०	आत्मयोग (गुजराती)	१५००
६१	आत्मयोग (हिन्दी)	२०००
६२	अनुभव संजीवनी (गुजराती)	१०००
६३	अनुभव संजीवनी (हिन्दी)	१०००
६४	ज्ञानामृत (हिन्दी)	१५००

पाठकों की नोंध के लिये

पाठकों की नोंध के लिये

पाठकों की नोंध के लिये

पाठकों की नोंध के लिये